CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्भुत संस्कृत रामायण

भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत

अद्भुतरामायण

(मूल संस्कृत पाठ एवं हिन्दी अनुवाद)

अनुवाद

डॉ० श्रीमती उर्वशी जयंतिलाल सूरती

डॉ० श्रीमती जसवंती हसमुख दवे

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चोपटियां रोड, लखनऊ-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥'

प्रथम संस्करण—१९८३-८४ ई०

आकार—१८×२२÷८

पृष्ठसंख्या— २४४

5760
STATE MUSEUM, LUCKNOW

मूल्य— २०·०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ—२२६००३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विश्वनागरी लिपि

।। ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ।।

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता।

संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है। यह कथन बिलकुल ठीक है। परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली, लिखी जानेवाली लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। नियमित स्वरों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। जैसा लिखना वैसा ही बोलना, वैसा ही अक्षर का एकाक्षरी नाम। उच्चारण-संस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि

संस्कृत (देवनागरी) वर्णमाला

अ	आ	इ	ई	उ	
ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	
ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	
च	छ	ज	झ	ञ	
ट	ठ	ड	ढ	ण	
त	थ	द	ध	न	
प	फ	ब	भ	म	
य	र	ल	व	श	
ष	स	ह	ळ	क्ष	
त्र	ज्ञ				

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अतः वे सब नागरी के समान ही 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से हिन्दी का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अतः समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता और प्राचुर्य में लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि अन्य लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरक़रार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अतः अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से अलिप्यन्तरित हमारी समस्त ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली का वाङ्मय रह गया। हमारा प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नहीं करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नहीं होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को भी अवश्य अपनाइए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता युगों की मानव-शृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को नष्ट कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसनेवाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित हैं। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। पेट्रोल अरब का है, अतः हम उसको नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना ज़रूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नहीं है। वे काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज़ को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नहीं रखती। उनको कहाँ तक और कैसे समाविष्ट किया जाय?" यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अल्बत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं— किन्तु अधिक नहीं। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आज़ादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यन्जन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में उन विशिष्ट भाषाई व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अ़रबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अ़रबी' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। "अ़िल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अ़रबी-पोशाक चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अ़रबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरों को भी अ़रबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा में जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लह्जा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ; उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिप्थांग) बनते हैं। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं, प्रयत्न हैं, लह्जा हैं। वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, "एक ही रूप में", अपने निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब ज़गह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी "पहले" का लेखानुरूप शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। उसी भाँति पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेज़ी के उद्भट विद्वान् अंग्रेज़ी में भाषण देते हैं—उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लहजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेज़ी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार की वरीयता।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे ज़रूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुक़ामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी भाषाओं में प्रयुक्त एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ मात्राएँ हम प्रयोग में ला रहे हैं। पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल तक नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् माने। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है— (अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली व उर्दू के अ़ै, औ़र औ़, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती है। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नी ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत क़ायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है? क्या कभी वह पूर्ण होगा? पूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो 'ब्रह्म' ही है। "बेस्ट् इज् द ग्रेटेस्ट् एनिमी ऑफ़् गुड्।" (Best is the greatest enemy of Good.) इसलिए शग़ल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं ?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "संस्कृत" को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने से हमारा अपार ज्ञान-भण्डार सबको सुलभ होता, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। इसलिए कि प्राय: सभी भारतीय लिपियों में संस्कृत भाषा उसी प्रकार अबाध गति से लिखी जाती है जिस प्रकार नागरी लिपि में। संस्कृत ही एक भाषा है जिसकी अनेक लिपियाँ अपनी हैं। किन्तु अब वह बात हाथ से बेहाथ है; अब "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोबेश प्रविष्ट है।

आज क्या करना है ?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— (ही नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता चरितार्थ होगी।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समर्पण

अद्भुतरामायणम्

(मूल संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद)

अपने पति स्व० श्रीविट्ठलदास ठाकरसी के अधूरे कार्य को पूर्ण करने में जीवनांत तक संलग्न ।

स्व० लेडीसाहेबा श्रीमती प्रेमलीलादेवी के प्रीत्यर्थ
सप्रेम अर्पण ।

डॉ० श्रीमती उर्वशी जयंतिलाल सूरती

डॉ० श्रीमती जसवंती हसमुख दवे

श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला विश्वविद्यालय, बंबई ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

		विषय		पृष्ठ
		संस्कृत-देवनागरी लिपि		३-८
		समर्पण		९
		अनुवादकीय प्रस्तावना	उर्वशी—जसवंती	११-१४
		अद्भुतरामायण	जसवंती हसमुखराय दवे	१५-२१
		प्रकाशकीय प्रस्तावना		२२-२७
		श्रीसीतामाहात्म्य	उर्वशी जयंतिलाल सूरती	२८-३९
		श्रीरामपञ्चायतन		४०
सर्ग	१	राम-जानकी का परब्रह्मरूप-प्रतिपादन		४३
,,	२	अम्बरीष राजा को नारायण का वर		४७
,,	३	राजसभा में नारद तथा पर्वत का आगमन		५५
,,	४	रामचन्द्र के जन्म-धारण का कारण		५९
,,	५	जानकी-जन्म का कारण		७१
,,	६	हरिमित्रोपाख्यान		७९
,,	७	नारदजी को गानविद्या की प्राप्ति		९३
,,	८	सीताजी का जन्म		१०३
,,	९	परशुराम द्वारा राम के विश्वरूप का दर्शन		१०९
,,	१०	श्रीराम द्वारा हनुमान को (अपने) चतुर्भुज-रूप का दर्शन कराना		११५
,,	११	श्रीराम द्वारा सांख्य-योग-वर्णन		११९
,,	१२	उपनिषत्-कथन		१२७
,,	१३	राम द्वारा भक्तियोग निरूपण		१३१
,,	१४	श्री रामचन्द्र और महावीर का संवाद		१३५
,,	१५	हनुमान द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति		१४३
,,	१६	श्रीरामचन्द्रजी द्वारा रावण का वध और राज्यप्राप्ति		१४७
,,	१७	जानकी-मुख से सहस्त्रवदन रावण का वृत्तान्त		१५१
,,	१८	रावण की सेना का प्रयाण		१५९
,,	१९	सहस्त्रमुखी रावण के पुत्रों का युद्ध के लिए प्रयाण		१६९
,,	२०	संकुल-युद्ध-वर्णन		१७४
,,	२१	राम की सेना में रावण द्वारा अव्यवस्था फैलाना		१८१
,,	२२	श्रीरामचन्द्रजी का मूर्च्छित होना		१८३
,,	२३	श्रीजानकी जी द्वारा सहस्त्रमुखी रावण का वध		१९१
,,	२४	श्रीरामचन्द्रजी को देवताओं द्वारा आश्वासन		२०१
,,	२५	श्रीरामचन्द्र द्वारा सहस्त्रनाम से जानकी जी की स्तुति		२०७
,,	२६	श्रीराम-विजय-वर्णन		२२९
,,	२७	श्रीराम का अयोध्या में आगमन		२३७
		श्रीजानकी जी की स्तुति		२४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुवादकीय प्रस्तावना

नमोऽस्तु रामाय भवोद्भवाय कालाय सर्वैकहराय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु रामाय कर्पदिने ते नमोऽग्नये दर्शय रूपमग्र्यम् ।।(१५-२२)

'रामायण' "सीता के महान चरित्र की अवतारणा" के रूप में भारतीय संस्कृति के लिए दिव्य आकाशदीप के समान एक ज्वलन्त सत्य है। परन्तु इसके साथ राम का परब्रह्म परमात्मा के रूप में निरूपण और मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में चरित्र-वर्णन अर्थात् 'रामायण' —इस ख्याति को अधिक दृढ़ करने का श्रेय भी सीताजी के चरित्र को मिलता है। 'अद्भुत-रामायण' वास्तव में राम-सीता में अभेद बताने के लिए निर्मित हुआ है। इस विश्वसृष्टि में सब कुछ राम ही राम है, सब परब्रह्म परमात्मा है, ऐसा ज्ञानीजनों का अनुभव सामान्य मनुष्य के मन का समाधान नहीं कर सकता। उनका समाधान तो भगवान की लीला-कथा से ही संभव है। जीव-मात्र पर कृपा करने के लिए उनका लीलावतार होता है। राम और सीता ऐसे दो रूप धारण करके परमात्मा ने राक्षसों का संहार किया।

डॉ उर्वशी जे० सूरती

इस कथा में सीताजी 'सहस्रमुख रावण' का वध करती हैं, राम इस कार्य में असमर्थ बताये गये हैं। 'श्रीसीता-माहात्म्य' शीर्षक लेख में इस विषय की चर्चा की गई है। परन्तु राम की महिमा इससे कम नहीं होती। पुरुष और प्रकृति, निर्गुण-निराकार, अकर्ता-अभोक्ता ब्रह्म और सृष्टि-स्थिति-संहार की शक्ति अभिन्न हैं। जब दो भिन्न रूपों में इनका अवतार होता है, तब दोनों अपना विशिष्ट स्वरूप-परिचय देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परशुराम को राम के विश्वरूप का दर्शन हुआ। यह प्रसंग भी शक्ति को सही दिशा में मोड़ने की प्रेरणा देना है। अभिमानी परशुराम को राम ने कहा— "तुम पितामह के प्रसाद से क्षत्रियों से अधिक स्पर्धा करके उनके बल पर आक्षेप करते हो। तुम मेरा दर्शन करो। मैं तुमको नेत्र प्रदान करता हूँ।" यह कहकर राम ने उनके निमित्त दिव्य नेत्र दिये। परशुराम को श्रीराम में संपूर्ण विश्व का दर्शन हुआ[1]।

श्रीहनुमान जी को श्रीराम के चतुर्भुजस्वरूप के दर्शन हुए। तब वे व्याकुल होकर पूछते हैं— "आप कौन हैं?" उत्तर में श्रीराम हनुमान को परम गोपनीय ब्रह्मज्ञान देते हैं। प्रथम सांख्य-योग की शैली में उपदेश कर अपना ज्ञान कराते हैं— "मैं अन्तर्यामी सनातन हूँ।" पुनः उपनिषद् का तात्पर्य निरूपित करके अपना परमात्म-स्वरूप समझाते हैं— "सो मैं सर्वत्रगामी शान्त ज्ञानात्म परमेश्वर हूँ, मुझसे परे और कुछ नहीं है, मुझे जान कर प्राणी मुक्त हो जाता है। स्थावर-जंगम जगत् में नित्य नहीं रहेंगे। केवल एक आकाश रूप महेश्वर मैं ही स्थित हूँ।" अंत में श्रीराम भक्ति-योग का उपदेश करके कहते हैं— "जो मेरी भक्ति करते हैं, वही मुझको प्राप्त होते हैं।"

इस ज्ञानसंपन्न भक्तियोग के निरूपण में राम ने शक्ति को अपनी माया, अपने से अभिन्न, विद्या, सबके आधार-भूत अमृत का निधान, नारायण, रुद्र बताया है। 'रामचंद्र और महावीर जी का संवाद' में राम विस्तारपूर्वक अपने परमात्मस्वरूप का रहस्य समझा के कहते हैं— "योगमाया (विद्या) मेरी वशवर्तिनी है। बहुत कहने से क्या? यह जगत् मेरी शक्ति का ही प्राकट्य है।" हनुमानजी को इस परम ज्ञान की प्राप्ति हुई। उन्होंने नमस्कारपूर्वक स्तुति की। यह स्तुति राम के परब्रह्म परमात्म-स्वरूप का विवेचन ही है। अंत में वे बोले— "जिसके अंतर में यह सब जगत् प्रकाश करता है, जो अविनाशी, निर्मल, एकरूप है, यह आपका रूप अचिन्त्य तत्त्व वाला है और प्रकाशवान् है[2]।"

जैसा निरूपण राम के परमात्म-स्वरूप का स्वयं राम के श्रीमुख से हुआ और हनुमानजी ने पुनः स्तुति-रूप में उसको दोहराया, 'सीता की स्तुति' में श्रीराम ने स्वमुख से पुनः तत्त्वस्वरूप का निरूपण किया। 'महेश्वर राम' और सीताजी का 'माहेश्वर पद' एक ही वस्तु है। इस

---

१ पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम्।
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै रामो दिव्यां दृशं तदा॥ ६-१७॥

२ यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम्।
किमप्यचिंत्यं तव रूपमेतत्तदंतरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम्॥ १५-१६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार इस रामायण की कथा हमें अभेददर्शी की योग्यता प्रदान करने में प्रवृत्त होती है। इस कथा में दिव्य-चक्षु प्रदान करने की शक्ति है। 'सीता-माहात्म्य' की अभिव्यक्ति परमात्मा श्रीराम की लीला-चेष्टा है।

वर्तमान युग में दर्शन की तात्त्विकता से अधिक महत्त्व-पूर्ण उसकी व्यावहारिक उपयोगिता है। राम और सीता नित्य आधुनिक हैं। स्त्री-पुरुष के समानाधिकार के लिए जो आंदोलन किये जाते हैं, जो कानून बनाये जाते हैं, वह सीता के चरित्र से पूर्ण संगति रखते हैं। परन्तु बिना किसी नारेबाजी, कानून और आंदोलन के सीता ने करके दिखा दिया। यह है नारी के गौरव की प्रतिष्ठा।

भारतीय नारी के लिए सीता का चरित्र एक असाधारण आदर्श है। राम-सीता में स्पर्धा नहीं, प्रेम है; शोषण की वृत्ति नहीं, त्याग और बलिदान की तत्परता हैं। दोनों का स्वतंत्र व्यक्तित्व है। परस्पर में सहयोग और सौहार्द्र है। दोनों निष्काम और कर्तव्यपरायण हैं। सुखी दांपत्य-जीवन का रहस्य ढूंढ़ने के लिए अन्यत्र जाने की ज़रूरत नहीं है। ऐसा सर्व-सुलभ और सुगम मार्ग प्रशस्त करनेवाले राम और सीता को परस्पर से कोई शिकायत नहीं है। परन्तु लोकमानस में शिकायत का संस्कार अवश्य है। 'अद्भुत रामायण' इस संस्कार का निवारण कर देता है।

'दसमुख-रावण' का वध करने के बाद श्रीराम सीताजी सहित अयोध्या लौटे। उसके बाद सीता ने 'सहस्त्रमुख-रावण' का वध किया। यहाँ किसी धोबीं को सीता पर कलंक लगाने का अवसर ही नहीं है। वाल्मीकि रामायण में उत्तर-कांड में वर्णित सीता-त्याग का प्रसंग प्रक्षेप माना जाता है। फिर भी अनेक रामायणों में इसका वर्णन है। इस 'अद्भुत-रामायण' में 'सीता-त्याग' के लिए अवकाश ही नहीं है। युग-युग से लांछित सीता को निर्दोष बताकर लोकमानस के संस्कारदोष का प्रक्षालन तो हो ही जाता है, सीताजी राम के समकक्ष स्थान पाती हैं। आधुनिक नारी-जागरण के युग में सीता-चरित्र का यह संदर्भ पूर्ण व्यावहारिक है। आधुनिक प्रबुद्ध नारी ने अपनी ज्ञान-इच्छा और क्रिया-शक्ति का वास्तविक परिचय देकर 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का प्रमाण दिया है। आधुनिक युवा-पीढी के लिए यह एक चुनौती है। क्या ये युवक-युवती अपना सर्वांगीण विकास करके अपने दांपत्य-जीवन को सुखी बना सकते हैं? इसी सदुद्देश्य से प्रेरित होकर इस ग्रंथ के प्रकाशन को महत्त्वपूर्ण मानकर हमने इस 'विरल' ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद किया। 'अद्भुत-रामायण' शीर्षक लेकर अनेक प्रासंगिक कथाओं एवं इसके प्रतिपाद्य को ध्यान में रख के लिखा गया है। मूल कथा पढ़ने के पूर्व, पाठकों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारा नम्र निवेदन है कि वे प्रारम्भ में संकलित दोनों लेख पढ़ें। हमें आशा है, उन्हें कथा के गूढ़ प्रदेश में प्रवेश के लिए प्रकाश मिलेगा।

हमारे सद्गुरुदेव परमपूज्य श्रीस्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती के सत्संग का यह फल है। आपके आशीर्वाद से यथा-शक्य उसे पूर्णता तक पहुँचाने की भावना हुई। 'अद्भुत रामायण' की अन्य प्रति दुर्लभ थी[1]। इस अभाव की पूर्ति भी आपने सक्रिय सहयोग देकर की। अनेक स्थानों पर भाषा की क्लिष्टता, गूढ़ता, पौराणिकता और अशुद्धियों के कारण बार-बार हमारा अनुवाद-कार्य पूर्ण नहीं हो पाता था। परमपूज्य श्रीस्वामी जी के ये शब्द थे कि "तुम मेरे पास ग्रंथ ले के आ जाना। मैं मूल लेखक से तादात्म्य करके सही रूप बता दूंगा"। आपने जो कुछ बताया, उससे आनंद के साथ हमें अंतर्दृष्टि भी मिली और कई कठिनाइयाँ सुलझती गईं। आपकी अनुपस्थिति में जो थोड़े शब्द सुलझाने शेष रह गये थे, उसके लिए आदरणीय श्रीजयंतकृष्ण दवे जी ने हमारी सहायता की। हम उनका हार्दिक आभार मानती हैं।

परमपूज्य श्रीसद्गुरुदेव का आभार मानने के लिए हमारे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। आपकी कृपा और आशीर्वाद की याचना ही करते हैं कि इसी प्रकार सदा-सर्वदा हमें आपका सत्संग प्राप्त होता रहे। आपके श्रीचरणों में सप्रेम प्रणाम।

आषाढ़ शुक्ल
गुरु पूर्णिमा, २०४० वि०
२४ जुलाई, १९८३

डॉ० उर्वशी जे० सूरती (हिन्दी विभागाध्यक्ष)
डॉ० जसवंती हसमुख दवे (संस्कृत विभागाध्यक्ष)

१ एशियाटिक लायब्रेरी में इसकी हस्तलिखित प्रति खंडित दशा में है। इस अनुवाद का आधार-ग्रंथ वेंकटेश्वर-प्रेस, बंबई द्वारा प्रकाशित (सन् १९५८) अद्भुत-रामायण' है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्‌भुत रामायण

(डॉ० श्रीमती जसवंती हसमुख दवे)

वाल्मीकि कृत आदि रामायण के प्रभाव से धीरे-धीरे राम-कथा अधिक व्यापक एवं लोकप्रिय बनने लगी। विष्णु के अवतार के रूप में राम की प्रतिष्ठा होने के बाद परवर्ती पुराण-उपपुराणों में विशेषकर स्कन्द-पुराण, पद्‌मपुराण तथा महाभागवतपुराण आदि ग्रन्थों में रामकथा विषयक सामग्री उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। स्वतंत्र रूप से भी रामविषयक अनेक कृतियों की, साम्प्रदायिक रामायणों की रचना होने लगी। इस प्रकार के रामविषयक संस्कृत धार्मिक साहित्य में अध्यात्म रामायण, अद्‌भुत रामायण और आनन्द रामायण विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

डॉ० श्रीमती जसवंती हसमुख दवे

समग्र भारत देश में तथा उसके निकटवर्ती देशों में प्रचलित रामकथा का विचार किया जाए तो उसके कई विविध रूप प्राप्त होते हैं। विशेषकर बौद्ध एवं जैन साहित्य में प्रचलित राम-कथा का स्वरूप आदि रामायण की मूल कथा से बिलकुल भिन्न है। इतना ही नहीं उसमें कई नई सामग्रियाँ भी उपलब्ध होती हैं। किन्तुमूल राम कथा में परिवर्तन या परिवर्धन यह सिर्फ़ बौद्ध या जैन साहित्य की ही विशेषता नहीं है। संस्कृत धार्मिक एवं ललित साहित्य में प्रचलित अनेक ग्रन्थों में वर्णित रामकथा की तुलना करने पर भी इसी बात की प्रतीति होती है कि जैसे-जैसे रामकथा का प्रचार और प्रसार होने लगा इसकी मूलकथा में प्रसंगानुकूल एवं समयानुकूल बहुत सी नई बातें जोड़ दी गयीं, कई नये प्रसंगों का वर्णन किया गया, या तो मूल-प्रसंगों का दूसरे ढंग से वर्णन किया गया। राम-विषयक जिन साम्प्रदायिक कृतियों का निर्माण हुआ, उनमें तत्-तत् सम्प्रदायों के मूल सिद्धान्तों का रामकथा द्वारा प्रतिपादन किया गया। इस प्रकार के ग्रन्थों में अद्‌भुत रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्भुत रामायण की कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। किन्तु प्रकाशित संस्करण केवल दो हैं। (१) १८८२ में बनारस से प्रकाशित एवं (२) दूसरा सन् १९५८ में बम्बई वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित। ये दोनों ही संस्करण आज अप्राप्य हैं।

अद्भुत रामायण अध्यात्म रामायण से अधिकांश प्रभावित जान पड़ती है। अध्यात्म रामायण में राम के मूल स्वरूप का तात्विक दृष्टि से वर्णन किया गया है। अद्भुत रामायण में आदिशक्ति के रूप में सीता के मूल-स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि अद्भुत रामायण की रचना अध्यात्म रामायण की रचना के कुछ काल बाद हुई होगी। रामचरितमानस (१५३२ से १६२३ ई० स०) के प्रथम काण्ड में अद्भुत रामायण का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से डॉ० पी० राघवन मानते हैं कि १४वीं या १५वीं शताब्दी में उत्तर भारत में इस ग्रन्थ की रचना हुई होगी।

कुल २७ सर्ग में (कुल श्लोक संख्या १३५३) विभाजित इस छोटी-सी कृति वाल्मीकि-भरद्वाज-संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत कृति में सीता के अद्भुत स्वरूप एवं पराक्रमों का वर्णन किया गया है, इस दृष्टि से इसका 'अद्भुत रामायण' यह शीर्षक यथार्थ जान पड़ता है। विकट रूप धारण करके सीता सहस्रवदन रावण का वध करती हैं, तब राम साक्षात् शक्तिस्वरूपिणी सीता की 'सहस्रनाम' से स्तुति करते हैं। ललिता सहस्रनाम स्तोत्र से इस स्तोत्र की तुलना की जा सकती है। कहा गया है कि 'अद्भुत स्तोत्र' के नाम से निर्दिष्ट इस स्तोत्र का जो कोई पाठ करता है या कराता है उसे परमपद की प्राप्ति होती है।

भरद्वाज महाभाग यश्चैतस्तोत्रमद्भुतम्।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमं पदम्॥

अद्भुत रामायण की कथावस्तु तीन विभागों में विभाजित की जा सकती है। प्रथम सर्ग में पूर्वभूमिका प्रस्तुत की गई है। और सर्ग २ से ८ तक राम तथा सीता के जन्म के कारण बताये गये हैं। नारद एवं पर्वत के शाप के कारण विष्णु को राम-रूप में अवतार लेना पड़ता है। सीता-जन्म के कारण के रूप में एक नई कथा दी गई है। स्वर्ग में अपमानित होने से नारद लक्ष्मी को शाप देते हैं, जिसके कारण वह मन्दोदरी की पुत्री के रूप में पृथ्वी पर जन्म धारण करती है। मूल शिव-पुराण में वर्णित नारद-शाप की यह कथा अद्भुत रामायण एवं रामचरितमानस दोनों ग्रन्थों में प्राप्त होती है, किन्तु रामचरितमानस की कथा शिव-पुराण की कथा से अधिक साम्य रखती है। इसी सन्दर्भ में नारद द्वारा गानविद्या की प्राप्ति की सविस्तार कथा दी गयी है। मूल-कथा से इस प्रसंग का सीधा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध नहीं जान पड़ता किन्तु ईश्वरभक्ति में गानयोग का कितना महत्त्व है, मूर्च्छनायुक्त ताल से जो भगवन्नाम का संकीर्तन करता है उसे सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति होती है, इस तथ्य का प्रतिपादन करने के हेतु से ही इसको यहाँ समाविष्ट किया हुआ जान पड़ता है। इस प्रसंग-वर्णन से आनुषंगिक-रूप से गान-विद्या के बारे में बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। गान-विद्या तप या शक्ति से नहीं आती, उसके लिए अतिदीर्घ काल तक परिश्रम करना पड़ता है—

तपसा नैव शक्त्या वा गानविद्या तपोधन।
तस्माच्छ्रमेण युक्तश्च मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि॥

कुण्ठित स्वर में, आवरणों से गूढ़ होकर, हाथ फैलाकर, जिह्वा भींचकर कभी गाना नहीं चाहिए। एक हाथ से ताल देकर गाना उचित नहीं। अंधकार में गाना भी उचित नहीं है। गानविद्याविशारद अनेक लोगों से शिक्षा प्राप्त करने के बाद गानविद्या में निपुणता प्राप्त की जा सकती है और इस गानविद्या का परमेश्वर के संकीर्तन में विनियोग करने से सर्वयज्ञों के फल तथा सायुज्य की प्राप्ति होती है।

दूसरे विभाग में रामायण की कथा का बहुत ही संक्षेप में निर्देश पाया जाता है। सच कहा जाए तो रामायण के कथा-प्रसंगों का क्रमशः वर्णन करने का अद्भुत रामायणकार का बिलकुल उद्देश्य नहीं है। केवल पुरुष एवं प्रकृति के प्रतीक राम तथा सीता के ऐश्वर्य का गुणानुवाद करने के उद्देश्य से, वे रामायण के कुछ प्रसंगों का आधार लेते हैं तथा उसकी पूर्ति के लिए अपनी ओर से मौलिक रूप से नये प्रसंगों की भी कल्पना करते हैं। उदाहरण— विवाह के बाद जब परिवार-सहित राम अयोध्या लौटते हैं तब मार्ग में परशुराम से उनकी भेंट होती है। परशुराम के घमण्डयुक्त वचन सुनकर उनका दर्प दूर करने के लिए राम उन्हें दिव्यदृष्टि प्रदान करते हैं और अपने विश्वरूप का दर्शन कराते हैं।

पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम्।
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै रामो दिव्यां दृशं वदौ॥

यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर लेकिन बहुत ही संक्षेप में परशुराम द्वारा किये गये विश्वरूपदर्शन का वर्णन है।

ततो रामशरीरे वै रामोऽपश्यत्स भार्गवः।
आदित्यान्सवसून्रुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान्॥

इस प्रकार राम की दिव्यता तथा राम द्वारा परशुराम के तेजोवध का प्रतिपादन करने के लिए अद्भुतरामायणकार ने इस प्रसंग की कल्पना की है। इसी प्रकार वनगमन एवं सीताहरण के बाद में ऋष्यमूक पर्वत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर जब राम महावीर हनुमान से मिलते हैं, तब उन्हें अपने चतुर्भुज-स्वरूप का दर्शन कराते हैं। इस अद्भुत रूप को देखते ही हनुमान आश्चर्य-चकित से रह गये। क्षणमात्र के लिए उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये और अनेक प्रकार से राम की स्तुति करके एवं बार-बार प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजी से पूछने लगे, "बताइये आप कौन हैं ?" इसके प्रत्युत्तर के रूप में श्रीराम सांख्य एवं योगदर्शन के आधार पर जीव, जगत और परमात्मा के तात्त्विक स्वरूप का बयान करते हैं। तथा परमात्मा की प्राप्ति के एकमेव साधन के रूप में भक्तिमार्ग का प्रतिपादन करते हैं।

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥

श्रीराम और महावीर के बीच का यह संवाद श्रीमद्भगवद्गीता के कृष्णार्जुन-संवाद की लघुआवृत्ति-रूप भासित होता है। राम के यथार्थ स्वरूप का परिचय पाकर हनुमान भावार्द्र होकर राम की स्तुति करते हैं।

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं राममनन्तयोगम्।
नमामि सर्वान्तरसन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥
नमोऽस्तु रामाय भवोद्भवाय कालाय सर्वैकहराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रामाय कपर्दिने ते नमोऽग्नये दर्शय रूपमग्र्यम् ॥

परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करने के प्रधान उद्देश्य की इस प्रकार पूर्ति हो जाने के बाद, बाद के कथासूत्र का कवि अत्यन्त संक्षेप में निर्देश कर देते हैं। समुद्रलंघन, लंकादहन, सेतुबंधन या राम-रावण-युद्ध जैसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा रोचक प्रसंगों के वर्णन में कवि को कोई दिलचस्पी नहीं है। हाँ, अपनी कृति में कुछ अद्भुत तत्त्व को सम्मिलित करने के लिए एक नई बात कवि अवश्य कहते हैं। लंका जाने के लिए समुद्र पार करना पड़ेगा, ऐसा जानकर राम ने लक्ष्मण से आवश्यक प्रबन्ध करने की आज्ञा दी। लक्ष्मण ने समुद्र से कहा, "हे सागर ! अपनी आत्मा को स्तंभित कर दो जिससे सारे वानर ऊपर से चले जाएँ।"

सिंधो त्वं स्तम्भयात्मानं यथा यास्यन्ति वानराः।

किन्तु समुद्र ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तब क्रोध से प्रज्वलित लक्ष्मण उसमें कूद पड़े और अपनी देह की ज्वाला से सागर का जल सोखने लगे। सारे जल जीव व्याकुल हो गये और देवता भयभीत होकर चारों ओर पलायन कर गये। सर्वत्र हाहाकार होने लगा। तब राम ने लक्ष्मण से कहा, "यह तुमने अच्छा नहीं किया। अब सीता के विरह से उत्पन्न अश्रुओं से इसे फिर से हम पूर्ण करेंगे।" तथा ऐसा कहकर उन्होंने समुद्र को भर दिया, तब सब लोग राम की शक्ति से बहुत ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभावित हुए तथा आकाश से श्रीरामचन्द्र पर फूलों की वर्षा होने लगी। कवि की कल्पनाशक्ति एवं कवित्वशक्ति का यहाँ अच्छा परिचय मिलता है।

तदनन्तर सेतुबंधन से लेकर रावण-वध, अयोध्या-प्रति गमन तथा रामराज्याभिषेक की कथा केवल चार श्लोकों में कही गयी है।

अद्भुतरामायण की कथावस्तु का तीसरा एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है १९वें सर्ग से लेकर २७वें सर्ग तक का कथानक। प्रस्तुत कृति का विशिष्ट प्रयोजन इसी भाग में सिद्ध किया गया है। कहा जाता है कि वाल्मीकि ने अपने चौबीस सहस्र रामायणों में पुरुष की प्रधानता बताई है। लेकिन अद्भुत रामायण में प्रकृति (शक्ति) का प्रभाव वर्णित किया गया है। जिस प्रकार पुरुष और प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार असुरों का विनाश करके पृथ्वी का भार उतारने का काम भी पुरुष-प्रकृति के प्रतीकस्वरूप राम-सीता ही करते हैं, इस तथ्य का प्रतिपादन करने का कवि का आशय है। अतएव प्रस्तुत कृति में जानकी के महात्म्य को प्राधान्य दिया गया है। यथार्थ में यह संपूर्ण कथा अध्यात्मपरक है, यहाँ राम ब्रह्म और सीता शक्ति का आविष्कार है। अतः सीता का महात्म्य, राम का ही महात्म्य है।

रावण-वध के पश्चात् राम जब अयोध्या के राज्य को स्वीकार करते हैं, तब अनेक ऋषि, महर्षि आकर राम के पराक्रम का गुणगान करते हैं। यह सुनकर सीता हँस पड़ती हैं और कहती हैं कि रावण-वध के लिए की गई यह प्रशंसा परिहास-समान लगती है। मुनिजन विस्मित होकर इसका कारण पूछते हैं तब सीता सहस्रवदन रावण का वृत्तान्त उन्हें सुनाती हैं। सीता जब छोटी थी तब उसके पिता के घर एक ब्राह्मण चौमासे के चार महीने के लिए निवास करने आया था। सीता ने उसकी अच्छी तरह से सेवा-शुश्रूषा की, इसके बदले में ब्राह्मण ने इसे यह वृत्तान्त बताया था। "विश्रवस् मुनि की पत्नी कैकसी के दो पुत्र थे। दोनों का नाम रावण था, बड़ा सहस्रवदन और छोटा दशवदन। सहस्रवदन रावण पुष्कर द्वीप में निवास करता है। वह इन्द्रादि देवताओं, किन्नरों, गंधर्वों, विद्याधरों आदि को पराजित करके उनसे बालक्रीड़ा के समान खेल करता है, मेरु को सरसों के समान, सागर को गोष्पद के समान तथा सारे लोक को तृण के समान मानता है। बड़े-बड़े वीर उसके लिए कोई गिनती में नहीं हैं। छोटा दशवदन लंका में निवास करता है।" आगे चलकर सीता कहती है कि इन दो रावणों में से छोटे रावण आ वध किया गया है, उसमें मुझे कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं होता। सहस्रवदन का वध हो जाए तो सारा जगत स्वस्थ हो जाए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीता से यह वृत्तान्त सुनकर राम उस सहस्रवदन रावण को मारने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। अपनी सारी सेना-सहित, भाइयों के साथ पुष्पक विमान में चढ़कर वे पुष्कर द्वीप पहुँच जाते हैं। दोनों के बीच अतिभीषण युद्ध हुआ। अन्त में राम मूर्च्छित होकर पुष्पक में गिरे। सारी सृष्टि कम्पित हो गई, सब प्राणी हाहाकार करने लगे—

ततो रामो महाबाहुः पपात पुष्पकोपरि।
निःसंज्ञो निश्चलश्वासीद्धाहा भूतानि चक्रिरे ।।

इस प्रकार राम को मूर्च्छित देखकर जनक-नन्दिनी ने अपने पूर्वरूप का त्याग किया और अतिविकट रूप धारण किया, हाथ में खड्ग, खर्पर धारण किये तथा बाघिनी के समान रावण के रथ पर शीघ्र ही टूट पड़ी। एक क्षण मात्र में उसने लीला से रावण के सहस्र शिर खड्ग से काट डाले। और भी असंख्य योद्धाओं का उसने संहार किया, उनके शिरों की माला बनाकर धारण की तथा रावण के शिर लेकर वह मनस्विनी उनसे गेंद का खेल खेलने की इच्छा करने लगी। उस समय सीता के रोमकूप से अनेक विकृत आकारवाली हँसती हुई माताएँ प्राप्त हुईं तथा कन्दुक-क्रीड़ा में जानकी को सहायता देने लगीं। मांस-रुधिर के कीचड़ से युक्त पुर के समान उस रणस्थल में महाकाली, महाबला जानकीदेवी नृत्य करने लगीं। नौका के समान चलायमान पृथ्वी कंपित होने लगी, पर्वत चलायमान और सागर कंपित हो गए। सीता के चरणाग्र से पीड़ित पृथ्वी पाताल में जाने लगी। यह देख देवता लोग महादेव से प्रार्थना करने लगे। तत्काल वे संग्रामस्थल में उपस्थित हुए तथा शव के समान रूप धारण कर, पृथ्वी को थामने के लिए जानकी के नीचे स्थित हुए। क्रोधित सीता को प्रसन्न करने के लिए लोकपाल देवता तथा ब्रह्मा इत्यादि स्तुति करने लगे और अपने हस्तस्पर्श से उन्होंने राम को सचेत किया। मूर्च्छा से उठकर राम रण-भूमि का अतिभीषण और डरावना रूप देखकर बहुत ही विह्वल हुए, उनके हाथ से धनुष-बाण गिर पड़े। ब्रह्माजी ने उन्हें सारा वृत्तान्त बताते हुए कहा कि रावण का वध करके यह सीता मातृकाओं के साथ नृत्य कर रही हैं। हे राम! इसके बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते, यही दिखाने के लिए जानकी ने यह कार्य किया है। यह साक्षात् निर्गुण, सगुण और सत्-असत् व्यक्ति से रहित है। अपने यथार्थ रूप का परिचय देते हुए जानकी स्वयं कहती हैं—

मां विद्धि परमां शक्ति महेश्वरसमाश्रयाम्।
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुझे महेश्वर को आश्रित करनेवाली परमशक्ति जानो। मैं अनन्य अविनाशी एक हूँ। मुमुक्षु जन मुझे देखते हैं ! मैं सब भावों की आत्मा सबके अन्तर् में स्थित शिवा हूँ। मैं ही निरन्तर रहनेवाली हूँ, सब जानती हूँ और सब मूर्ति प्रवृत्त करनेवाली हूँ।

यह सुनते ही राम शोक और भय को छोड़कर सहस्रनाम से सीता की स्तुति करते हैं।

सीता की शक्ति का वर्णन करते हुए राम कहते हैं—

"रूपं तवाशेषकलाविहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात्॥

तुम्हारा रूप सब कला से विहीन अगोचर, निर्मल, एकरूप है, आदि-अन्त-मध्य रहित अनन्त तमस् से परे सबकी आदि तुमको मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवि ! तुम राजाओं में ईशता, युगों में सतयुग, अर्चिरादि सब मार्गों में आदित्य, वाणियों में सरस्वती, सुन्दर रूप वालों में लक्ष्मी, मायावियों में विष्णु, सतियों में अरुन्धती तथा पक्षियों में गरुड़ हो। सबके आश्रय सब जगत के निधान, सब स्थान में जानेवाले जन्म-विनाश से रहित, अणुप्रभेद, आद्य महत्त्व पुरुष अनुरूप तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ।"

सीता द्वारा रावण-वध के समग्र प्रसंग में तथा ब्रह्मादि देवता एवं राम द्वारा की गई सीता की स्तुति में शक्ति-संप्रदाय का प्रभाव पूर्णतया लक्षित होता है। आनन्दरामायण, रामचरितमानस आदि राम-कथा विषयक अन्य ग्रन्थों में शैव-सम्प्रदाय तथा कृष्ण-भक्ति का प्रभाव सुविदित है ही। अद्भुत रामायण एक ऐसी विशिष्ट कृति है जिसमें शक्ति सम्प्रदाय के प्रभाव से रामकथा को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया गया है। सीता के महात्म्य का प्रतिपादन करके राम-सीता में अर्थात् पुरुष-प्रकृति में वास्तविक भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, इसी बात का निरूपण किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय प्रस्तावना

विषय-प्रवेश

'भुवन वाणी ट्रस्ट' का मूल लक्ष्य है 'भाषाई सेतुबन्धन' के द्वारा राष्ट्र का भावात्मक समन्वय; और यदि सम्भव हो तो अखिल 'भुवन' में विश्व-बन्धुत्व का जागरण। देश में प्रचलित विविध लिपियों और भाषाओं में अपरिमित ज्ञान-भण्डार सहस्राब्दियों से सिर्जित और सञ्चित होता आ रहा है। उस विविध भाषाई ज्ञानकोष के पीछे एक निष्ठा, एक संस्कृति और एक आचार-परम्परा वर्तमान है। लिपियाँ भी सब ब्राह्मी लिपि से उद्‌भूत हैं और उनके स्वर-व्यञ्जनों का वर्गीकरण भी समान है। किन्तु कालान्तर में नाना कारणों से अक्षरों की आकृतियों में भेद हो जाने से भाषाएँ एक-दूसरे से अधिक पृथक् हो गईं। इसके फलस्वरूप वे और उनके सद्‌ग्रन्थ अपने-अपने अञ्चलों में सीमित-से होकर रह गये। यद्यपि तीर्थों, सन्तों और मनीषियों ने समस्त राष्ट्र को एक सांस्कृतिक इकाई में सदैव बाँधे रखा; फिर भी जनसाधारण अपने-अपने अञ्चल की भाषा में उपलब्ध साहित्य में ही सीमित होकर रह गया। अलबत्ता नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का विस्तार अपेक्षाकृत कुछ अधिक रहा। वह देश के दूसरे भाषाई अञ्चलों में भी न्यूनाधिक प्रवेश पाती रही।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद

आज़ादी प्राप्त होने के बाद सारे राष्ट्र में एकच्छत्र लोकतन्त्र स्थापित हुआ। राष्ट्र छोटा हो या बड़ा, वह एक भाषा-भाषी हो अथवा अनेक; समग्र राष्ट्र को एकात्म बनाये रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा और एक राष्ट्रलिपि अनिवार्य है। सुतरां यहीं से इन पंक्तियों के लेखक का भाषाई सेतुबन्धन का कार्य आरम्भ हुआ। सन् १९४७ ई० से सन् १९६९ के पूर्वार्ध तक एकाकी कार्य करते हुए, १९६९ ई० के उत्तरार्ध में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना की। ट्रस्ट ने, तब से अब तक, प्रायः सभी भारतीय एवं भारत में स्थायित्व प्राप्त कर लेनेवाली विदेशी भाषाओं के विशाल लोकप्रिय ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण एक विशाल पैमाने पर प्रस्तुत कर दिया है। नागरी लिपि में अनुपलब्ध कतिपय स्वर-व्यञ्जनों को, दूसरी भाषाओं के मूल पाठ के लिप्यन्तरण को शुद्ध प्रस्तुत करने के उद्देश्य से, सिरजा है।

देवनागरी अक्षयवट

भुवन वाणी ट्रस्ट के 'देवनागरी अक्षयवट' की देशी-विदेशी प्रकाण्ड-शाखाओं में, संस्कृत, अ़रबी, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी, कश्मीरी, गुरमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, मलयाळम, तमिळ, कन्नड, तॆलुगु, ओड़िया, बँगला, असमिया, नेपाली, अंग्रेज़ी, हिब्रू, ग्रीक, अरामी आदि के वाङ्मय के अनेक अनुपम ग्रन्थ-प्रसून और किसलय खिल चुके हैं, अथवा खिल रहे हैं। इस नागरी अक्षयवट की कल्पतरुशाखा संस्कृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का, प्रस्तुत 'अद्भुत रामायण' दूसरा सुमन है। इससे पूर्व "मानसभारती" प्रकाशित होकर शासन एवं कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। मानसभारती में तुलसी-रामचरितमानस का मूल पाठ बायीं ओर देते हुए सामने दाहिने पृष्ठ पर जवाबी पंक्ति-अनुपंक्ति सरल संस्कृत पद्यानुवाद देकर एक अद्भुत कृति की रचना हुई है।

देवभाषा संस्कृत का वर्चस्व

विधान-निर्मात्री परिषद् के सम्मुख संस्कृत को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने का भी एक प्रस्ताव आया था। देश के प्रति अनन्य निष्ठावान् उद्भट मनीषियों ने इस पक्ष में बड़ा ज़ोर लगाया। किन्तु वह प्रस्ताव पारित न हो सका। संस्कृत अतिकठिन है, मृतभाषा है, इस प्रकार के कुतर्कों ने भाषा-समस्या के एकमात्र समाधान को निरस्त कर दिया। विश्व में मृतप्राय, निजी क्षेत्रविहीन, और मुड़िया (महाजनी) के समान विना मात्राओं के अभ्यास मात्र से लिखी-पढ़ी जानेवाली इब्रानी (हिब्रू) तो इस्राइल राज्य के बनते ही एक जीती-जागती भाषा के रूप में जम गयी; किन्तु सभी भाषाओं की अपेक्षा आज भी सम्पन्न, नियमानुकूल, युगानुयुग एकरूपा संस्कृत को उसके अपने ही विशाल देश में राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं प्राप्त हो सका। फिर, अन्य सभी भाषाओं की अपनी एक ही लिपि है। किन्तु देवभाषा संस्कृत की तो अनेक लिपियाँ हैं। वह अनेक भारतीय लिपियों में पुरातन से लिखी जाती है। हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत उनके लिए अधिक समीपी है। सबको यह भी संतोष रहता कि राष्ट्रभाषा संस्कृत को सीखने में सबको (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम करना होगा। मातृभाषा होने की सहजसुविधा हिन्दीभाषा-भाषी को मिल जाने की स्पर्धा का अवसर न आता। ज्ञान-विज्ञान के अमित भण्डार संस्कृत के माध्यम से, देश ही नहीं, विश्व के सम्मुख, ज्ञान के कपाट खुल जाते। सदैव नियमानुकूल चलनेवाली संस्कृतभाषा को सीखना जितना सरल है, उतना ही अंग्रेज़ी, हिन्दी आदि को सीखना अन्य भाषाभाषियों के लिए कठिन है। परन्तु अब उस सौभाग्य का द्वार तो बन्द हो चुका है। अब हिन्दी भाषा ही सारे देश की राष्ट्रभाषा है और नागरी ही राष्ट्रलिपि। संस्कृत के बाद, यही दूसरा उचित क़दम था।

सदाबहार संस्कृत : देश-काल-पात्र के भेद से अतीत

प्रत्येक भाषा की एक लिपि होती है। संस्कृत भाषा का यह गौरव है कि वह अनेक लिपियों में यथावत् लिखी जाती है। नागरी लिपि के अलावा, बँगला, असमिया, ओड़िया, नेपाली, तेलुगु, मलयाळम, कन्नड, गुजराती आदि सभी लिपियों में संस्कृत का अपार साहित्य मौजूद है और वह उन लिपियों का साधिकार मौलिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्य कहा जाता है। यह नहीं कहा जाता कि नागरी लिपि से लिप्यन्तरित किया गया हो। तमिळ लिपि वालों ने तो औदार्य की पराकाष्ठा कर दी। अपनी कृश वर्णमाला में १७-१८ अतिरिक्त व्यञ्जनों को जोड़कर एक (परिवर्द्धित) 'ग्रन्थलिपि' की सृष्टि कर दी। उस ग्रन्थलिपि में संस्कृत की अपार ज्ञानराशि छापी गई। इस प्रकार संस्कृत ने एकदेशीय न होकर समग्र राष्ट्र पर आधिपत्य पाया।

संस्कृत सनातन से आज तक एकरूपा है। आदिकवि वाल्मीकि से लेकर कालिदास और आज-पर्यन्त संस्कृत भाषा में कोई परिवर्तन नहीं है। जबकि अन्य सभी भाषाएँ आये दिन बदलती रहती हैं। यह है संस्कृत की काल पर विजय।

संस्कृत का विद्वान, चाहे वह बंगाली हो, दक्षिणी हो अथवा किसी प्रदेश का हो, संस्कृत बोलते समय वह संस्कृत को अपनी ही भाषा समझता है, किसी अन्य क्षेत्रवासी की नहीं। इस प्रकार संस्कृत के प्रति अपनापन देश-काल-पात्र के भेद से रहित है।

अद्भुत रामायण का यह सहस्रकण्ठ रावण कौन ?

"अद्भुत रामायण" का नाम और उसका विषय "सहस्रमुख रावण का सीता द्वारा वध" पढ़ते ही, पाठक विस्फारित नेत्रों से देखता है। उसकी मुद्रा से यह प्रश्न प्रस्फुटित होता है कि यह अनहोनी घटना कैसी ? रूढ़ि और परम्परा का प्रभाव अटूट होता है। सहज-मानव-स्वरूप सकल आचरण करनेवाला दशानन रावण के दश शिर यद्यपि अस्वाभाविक हैं, फिर भी उसने ऐतिहासिक स्थान ग्रहण कर लिया है। रामायण पढ़ते समय कभी यह शंका उत्पन्न नहीं होती कि यह दश शिर का मानवकुल-उत्पन्न ब्राह्मणपुत्र वास्तविक है अथवा कल्पित ? भारतीय-मानव-पटल पर वह दशमुख शाश्वत सत्य के समान विराजमान है। परन्तु भारतीय संस्कृत साहित्य में अन्यत्र वर्णित, शतकण्ठ, सहस्रकण्ठ और लक्षकण्ठ रावण की जब चर्चा आती है तब शंका उत्पन्न हो पड़ती है कि यह अनहोनी कैसी ? दशमुखी मानव-आकृति सत्य, और शत, सहस्र तथा लक्षमुखी असम्भाव्य ! इस विडम्बना के निवारण के लिए "इतिहास" शब्द की परिभाषा का अध्ययन करें।

"इतिहास" क्या है ?

इतिहास का अर्थ है— (१) "परम्परा से प्राप्त उपाख्यान-समूह। ध्यान दीजिए ! किसी विशेष राजवंश या सत्ता का आख्यान नहीं, वरन् समय-विशेष के जन-समाज के नाना उपाख्यान ! सामान्य से सामान्य समाज की झाँकियाँ ! धर्मार्थकाम-मोक्षाणामुपदेशसमन्वितं पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासम्।" (२) जबकि आधुनिक प्रयोग में इतिहास, तवारीख अथवा हिस्ट्री से अभिप्राय है मात्र शासन-परम्परा का देश-काल-पात्र के अनुरूप वर्णन।

प्रथम (१) में, व्यक्ति और समाज को लौकिक एवं पारलौकिक लक्ष्य के हेतु अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों के आचार एवं उपलब्धि, यह प्रधान विषय है। उसमें सम्बन्धित पात्र गौण हैं। अपने प्रतिपाद्य उपर्युक्त चारों विषयों के लिए हम वास्तविक पात्रों के आलावा पशु, पक्षी एवं तरुवरों तक को पात्र बना लेते हैं, फिर भी परम्परा से चल रहा शाश्वत कल्याण-मार्ग हमारे सामने एक रूप में देदीप्यमान रहता है। वस्तुतः यही इतिहास है। उसके आधार पात्रगण गौण हैं। आधुनिक अर्थ (२) में माना जानेवाला 'इतिहास' वस्तुतः असत्य होता है। भय, लोभ, दबाव, पक्षपात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा भ्रान्ति-वश होकर लिखा जाता है। कल का माना जानेवाला 'ग़दर', 'सिपाही-विद्रोह' आज 'स्वतंत्रता-संग्राम का प्रथम चरण' के रूप में प्रतिष्ठित है। कल के ध्रुव सत्य "कलकत्ता की कालकोठरी (ब्लैक होल ऑफ़ कलकटा)" का आज नामो-निशान नहीं है।

आधुनिक अर्थ में इतिहास में किसी समय की शासन-परम्परा का जीवनवृत्त दे देना ही अभीष्ट है। हमारा सारा ध्यान पात्रों के प्रति रहता है, जो वस्तुत: प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हुए भी भस्मीभूत हैं। मात्र उनके जीवनवृत्त को जान लेने से क्या ?

प्राचीन और मौलिक परिभाषा के संदर्भ में नाम, रूप, रंग केवल आधार मात्र रह जाते हैं। फिर भी वह पुराण-साहित्य अनादि से अनन्त तक एक जीता-जागता इतिहास है। रावण के दश मुख हुए तो क्या, और लक्ष हुए तो क्या ? वह इस द्वीप में हुआ तो क्या, और उस द्वीप में हुआ तो क्या ?

शान्तिकाल की सियमाता, संकट में वही भद्रकाली !

शाश्वत सत्य है चराचर में व्याप्त महाशक्ति का प्रादुर्भाव और उसके द्वारा उच्छृंखलता, अन्याय, उत्पीड़न और अत्याचार का दमन एवं शमन। शान्तिकाल की शक्तिरूपिणी सीता ही विपत्तिकाल में प्रचण्ड भद्रकाली का रूप धारण करती हैं। दशानन का जन्म सम्भव है तो सहस्रानन का भी। जिस प्रकार भगवती सीता के सहस्रनाम[1] हैं वैसे ही दुर्दमनीय रावण के भी नाना रूप एवं नाना नाम हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि पुरुषार्थों के लिए "अद्भुत रामायण" में वर्णित वृत्त, शाश्वत सत्य के समान है। सच्चा अविनाशी इतिहास है। सहस्रकण्ठ रावण सत्य है, लक्षकण्ठ भी सत्य है। और आज के समाचार पत्रों में नित्य, कोटि-कोटिकण्ठ रावण की निर्मम राक्षसी लीला की विद्यमान चर्चा भी सत्य है।

अबला में सबला का आवाहन

सहस्रकण्ठ के सम्मुख राम विफल हुए, सीता-शक्ति ने उसका संहार किया। आज रक्षक स्वयं भक्षक है। पुरुष, कापुरुष का रूप धारण कर निरीह अबलाओं पर सर्वतोमुखी अत्याचार कर रहा है। आज एक सीता नहीं, अनन्त नारीशक्ति को कोटि-कोटि मातृकाओं-सहित इस कोटि-कोटिकण्ठ रावण के दमन के लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिए। कालान्तर में यह कोटिकण्ठ रावण भी इतिहास का एक सच्चा पृष्ठ होगा।

अनुवाद— विदुषी-द्वय के हम आभारी

विदुषीद्वय, श्रीमती डॉ० उर्वशी और डॉ० दवे के अनुवादकीय से यह परिलक्षित है कि वे भी नारी के सबला रूप का आवाहन कर रही हैं। जगन्माता शक्तिस्वरूपा सीता का स्मरण वे कर रही हैं कि आज के कोटि-कोटिकण्ठ रावण को पराभूत कर, समाज का परित्राण करें।

उनके इस सदुद्देश्य में योगदान-स्वरूप ही इस "अद्भुत रामायण" का हमने हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशन किया।

---

१ देखिए अद्भुत रामायण सर्ग—२५ (पृष्ठ २०६-२२७)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वबन्धुत्व और राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में लिपि और भाषा

अब हम ट्रस्ट के बुनियादी उद्देश्य पर पुनः विचार करते हैं। भूमण्डल पर देश-काल-पात्र के प्रभाव से मानव जाति, विभिन्न लिपियाँ और भाषाएँ अपनाती रही है। उन सभी भाषाओं में अनेक दिव्य वाणियाँ अवतरित हैं, जो विश्वबन्धुत्व और परमात्मपरायणता का पथ-प्रदर्शन करती हैं, किन्तु उन लिपियों और भाषाओं से अपरिचित होने के कारण हम इस तथ्य को नहीं देख पाते। अपनी निजी लिपि और अपनी निजी भाषा में ही सारा ज्ञान और सारी यथार्थता समाविष्ट मानकर, दूसरे भाषा-भाषियों को उस ज्ञान से रहित समझते हुए हम भेद-विभेद के भ्रमजाल में भ्रमित होते हैं।

भूमण्डल की बात तो दूर, हमारे अपने देश 'भारत' में ही अनेक भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित हैं। एक ब्राह्मी लिपि के मूल से उत्पन्न होने के बावजूद उन सबसे परिचित न होने के कारण हम अपने को परस्पर विघटित समझने लगते हैं। सारी लिपियाँ और भाषाएँ सीखना-समझना सम्भव भी नहीं है।

सुतरां, यथासाध्य विश्व, और अनिवार्यतः स्वराष्ट्र की सभी भाषाओं के दिव्य वाङ्मय को राष्ट्रभाषा हिन्दी और सम्पर्कलिपि नागरी में, सानुवाद लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से बढ़ाकर उसको सारे राष्ट्र को सुलभ कराना, समस्त सदाचार-साहित्य-निधि को सारे देश की सम्पत्ति बनाना, यह संकल्प भगवान की प्रेरणा से सन् १६४७ में मैंने अपनाया, और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु १६६६ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना हुई।

विश्वबन्धुत्व के सम्बन्ध में ट्रस्ट की अपेक्षाएँ

प्रश्न यह उठता है कि विश्ववाङ्मय के परस्पर लिप्यन्तरण और अनुवाद से मानव मात्र में सद्भावना की उपलब्धि क्या सम्भव है ? मेरा नम्र निवेदन है कि यह कठिन है। सृष्टि के आरम्भ से विविध भूखण्डों में समय-समय पर अवतारी पुरुष और आप्त ग्रन्थ प्रकट होते रहे हैं। फिर भी संगठन और विघटन, दोनों ही वर्तमान हैं। उनमें ज़रूर चढ़ाव-उतार होता रहता है। तब हमारे टिट्टिभि-प्रयास की क्या बिसात है ? साथ ही दूसरा प्रश्न हम रखते हैं कि यह मानते हुए कि विश्व का समस्त वाङ्मय मानव मात्र की सम्पत्ति है, क्या वह समग्र मानव की पहुँच में न बनाया जाय ? किसी एक वाङ्मय को यदि हम ग़ैर मानकर उससे विरक्त रहते हैं तो हम अपने को निर्धन बनाते हैं। उसी भाँति यदि कोई समूह किसी वाङ्मय विशेष को अपनी ही पूँजी मानकर शेष मानव समाज को उससे वञ्चित रखता है तो वह व्यक्ति अथवा समूह उस कृपण के सदृश है जो किसी निधि का न स्वयं उपभोग कर पाता है, न किसी अन्य को उपभोग करने देता है।

ट्रस्ट की यह मान्यता है कि धरातल का समस्त वाङ्मय मानवमात्र की सम्पत्ति है। लिपि और भाषा के पट को अनावृत कर उस सबको सर्वसुलभ बनाना चाहिए। भले ही मानव की पार्थक्य-भावना का मूलनाश न हो, परन्तु एकीकरण की ओर कर्त्तव्य करते रहना हमारे लिए श्रेयस्कर है। छोटे से भी छोटा सत्कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता, नष्ट नहीं होता—

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति॥"

—गीता ६ : ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागरी लिपि पर उत्तरदायित्व

नागरी लिपि पर यह उत्तरदायित्व ठीक ही रहा कि राष्ट्र की सभी लिपियों के साहित्य को नागरी जामा पहनाकर उसको राष्ट्र भर में फैलाए। देश का सकल साहित्य देश के कोने-कोने में सुपरिचित हो। नागरी लिपि का ही फैलाव इतना विशाल है कि इस उत्तरदायित्व को वहन कर सके। नागरी लिपि, लिपिमणिमाला में सुमेरु नहीं, वरन् उन लिपि-मणियों को जोड़नेवाला धागा है।

आभार-प्रदर्शन

सदाशय श्रीमानों और उत्तरप्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रंथों का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उसी के फलस्वरूप संस्कृत के लोकोपयोगी "अद्भुत रामायण" का यह सानुवाद संस्करण हम सम्पूर्ण कर सके हैं।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी पट, सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा।।
अमर भारती सलिला की संस्कृत मंदाकिनि धारा।
की नागरी-सुमण्डित छबि से अब जगमग जग सारा।।

नन्दकुमार अवस्थी

२० जून, १९८३ प्रतिष्ठाता, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीसीतामाहात्म्य

(डॉ० श्रीमती उर्वशी जे० सूरती)

सीतायाः चरितं महत्

अद्भुत रामायण की कथा में सीतामाहात्म्य का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। अन्य किसी रामायण में यह उपलब्ध नहीं है। इसे 'गुप्तकथा' बताया गया है।

आश्चर्यमाश्चर्यमिदं गोपितं ब्रह्मणो गृहे।
हिताय प्रियशिष्याय तुभ्यमावेदयामि तत् ।।

[मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि से शिष्यभावापन्न भरद्वाज ने जब प्रश्न किया कि रामायण के सौ करोड़ के विस्तार में कौन-सी कथा गुप्त है, तब मुनि वाल्मीकि ने प्रसन्न होकर कहा— "यह परम आश्चर्यरूप (कथा) ब्रह्माजी के स्थान में गुप्त है। तुम मेरे प्रिय एवं हितकारी शिष्य हो, इसलिए वही गुप्तकथा तुम्हें सुनाता हूँ।"]

'अद्भुत रामायण' की यह प्रस्तावना ऐसी कौतूहल-वर्धक है कि प्रत्येक पाठक भरद्वाज की तरह तन्मय श्रोता-शिष्य का भाव धारण कर लेगा। इस लेख में मुख्य रूप से सीताजी के चरित्रांकन पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है।

सर्वप्रथम मुनि वाल्मीकि सीताजी का परिचय स्तुति के रूप में देकर उनको सृष्टि की प्रकृति-रूप आदिभूत और महागुण-संपन्न बताते हैं। जानकी तप और स्वर्ग की सिद्धि, ऐश्वर्यरूप मूर्तिमान सती हैं। वे गुणमयी, गुणातीत और गुणात्मिका होने से सर्वकारण-कारण प्रकृति-विकृति-स्वरूप चिन्मयी और चिद्विलासिनी हैं। वे महाकुण्डलिनी भी हैं और ब्रह्म भी हैं, अतः वे परब्रह्म परमात्मा राम से अभिन्न हैं। सीताजी और रामचंद्र के तत्त्वस्वरूप के ज्ञान से मनुष्य के हृदय की अज्ञान-ग्रंथि का छेदन हो जाता है। सृष्टि में व्याप्त यह परमतत्त्व जब दो रूप धारण करके, राम और सीता नाम से अवतार लेते हैं तब अधर्म का नाश और सद्धर्म की स्थापना होती है। संक्षेप में, जीव-मात्र के कल्याण के लिए अवतारी परमात्मा साधु-संतों और भक्तों पर विशेष अनुग्रहपूर्वक अपने दर्शन से उनके जन्म को धन्य-धन्य कर देते हैं। यह सब भी उनकी परम रहस्यमयी लीलाएं होती हैं।

श्रीसीता जी के जन्म-विषयक अनेक कथाएँ मिलती हैं। 'अद्भुत रामायण' में यह प्रसंग निराले ढंग से वर्णित हुआ है। रावण ने अपनी कठोर तपश्चर्या के फलस्वरूप अमरता का वरदान ब्रह्माजी से माँगा था, परन्तु उसे अशक्यानुष्ठान जानकर उसने माँगा— "मुझे सुर, असुर, यक्ष, पिशाच, उरग, विद्याधर, किन्नर और अप्सराओं के गण —इनमें से कोई भी किसी प्रकार मुझे मार न सके। जब मैं अज्ञान से ही अपनी कन्या के प्रति कामबासना से प्रेरित होऊँ, तब मेरी मृत्यु हो।" रावण ने सोचा, मनुष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुझे मार ही नहीं सकता। अतः उसका उल्लेख उसने वरदान माँगते समय जान-बूझकर नहीं किया। वास्तव में दस सिर वाला रावण अपने बल का दस गुना अभिमान करता था और इसी मद में वह मारा गया।

वरदान पाकर रावण ने त्रिलोकों पर विजय पाने का अभियान शुरु कर दिया। जब उसने दंडकारण्य के अग्नि के समान कान्तिमान ऋषियों को देखा तो मन ही मन हतप्रभ हो के चिंतामग्न हुआ कि 'ये महात्मा अजेय हैं और इनकी हत्या से तो मेरा अमंगल होगा। मैं उन पर कैसे विजय पाऊँ ?' वह उन महात्माओं के पास गया और उन पर जय पाने के लिए बलपूर्वक उनके शरीर से बाण की नोक द्वारा रुधिर निकाल के एक कलश में उसका संग्रह किया।

रावण ने जब वह कलश लिया था, तब वह खाली न था। उसमें 'गृत्समद नामक एक ब्राह्मण ने लक्ष्मी को अपनी कन्या के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से भगवान से प्रार्थना-पूर्वक दूध रखा था। रावण आया तब वह वन में गया हुआ था। अतः दैवयोग से इसमें ब्राह्मणों का रुधिर एकत्र हो गया। रावण वह कलश अपने घर ले गया, मंदोदरी को उसे सुरक्षित रखने का आदेश दिया और समझाया भी कि मुनियों का यह रुधिर विष से भी अधिक तीक्ष्ण है।

मंदोदरी अपने विलासी, लंपट और कामी पति से स्वयं को तिरस्कृत जानकर आत्महत्या के लिए तत्पर हुई। इसके लिए उसने इस कलश में भरे रुधिर का पान करना ही सर्वोत्तम समझा। परन्तु उसका पान करके भी उसकी मृत्यु न हुई, वह तो तेजस्वी गर्भ से युक्त हो गई थी। एक वर्ष से रावण से उसका समागम नहीं हुआ था। अतः उसने अपने चरित्र की पवित्रता का प्रमाण देने के लिए गर्भपात को श्रेयस्कर उपाय माना। रावण की अनुपस्थिति का लाभ लेकर वह विमान पर चढ़कर कुरुक्षेत्र गई और गर्भ को पृथ्वी में गाड़ दिया।

जब राजा जनक ने कुछ समय के बाद उसी जगह यज्ञ करने के लिए सोने के हल से भूमि खोदी तो उन्हें वहाँ से एक कन्या प्राप्त हुई। कन्या के प्रगट होते ही आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। आकाशवाणी ने राजा जनक को सूचित किया कि "इस कन्या को अपना कर पुत्रीवत् उसका पालन करो। अग्नि के समान तेजस्विनी यह कन्या विश्व के लिए कल्याणी-स्वरूपा है। इसका नाम 'सीता' रखो।"

राजा जनक ने देववाणी के अनुसार सीता को बड़े प्रेम से स्वीकार कर पुत्रीवत् उसका पालन किया।

सीता-विवाह और राम-वनवास के प्रसंगों का इस रामायण में उल्लेख मात्र है। जैसे कि वाल्मीकि मुनि ने स्वयं कहा है, 'रामायण सीता के चरित्र का महान् आख्यान है'— इसके अनुरूप सीता को केन्द्र में रखकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुख्य एवं प्रासंगिक कथाओं का वर्णन किया गया है। रावण ने राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता का हरण किया। हनुमान आदि वानर-श्रेष्ठों की सेना की सहायता से राम ने रावण को मारा और पुन: सीता सहित अयोध्या लौट आये। राम की प्रभुता और परब्रह्म के प्रतिपादन में अनेक प्रसंगों द्वारा रामायणकार ने अद्भुत कथाएँ कही हैं, परन्तु इसके बाद सीताजी की श्रेष्ठता का परम अद्भुत आख्यान प्रस्तुत होता है जो रचना के शीर्षक 'अद्भुत रामायण' को और उसकी गोपनीयता को सार्थक करता है।

वनवास की अवधि पूरी करके अयोध्या लौटे हुए राम का राज्याभिषेक हुआ, सबने उनका अभिनन्दन किया। दरबार में अनेक ऋषि-मुनि भी उपस्थित थे और सीता, लक्ष्मणादि बंधु भी थे। अगस्त्यादि ऋषियों ने जब श्रीरामचंद्र की स्तुति करते हुए कहा— "रावण का वध करके आपने जगत् का उद्धार किया है", तब सीताजी हँस पड़ीं और बोलीं कि 'श्रीराम की यह प्रशंसा परिहासतुल्य है। मैं आप सब मुनियों की इच्छा हो तो आपके चरणों में प्रणामपूर्वक इस रहस्य का उद्घाटन करना चाहती हूँ।'

मुनियों ने उत्सुकतापूर्वक इस गोपनीय सत्य को जानने की इच्छा की। तब श्रीराम आदि मुख्य-मुख्य व्यक्तियों से आज्ञा प्राप्त करके सीताजी ने एक अद्भुत प्रसंग का वर्णन किया। बचपन में पितृगृह में सीताजी ने एक श्रेष्ठ ब्राह्मण-भक्त की तत्परता से सेवा की थी और उनके सत्संग का लाभ भी पाया था। उससे प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण ने विस्तारपूर्वक दो रावण होने की बात कही थी। वह इस प्रकार है—

"सुमाली नामक राक्षसश्रेष्ठ की कन्या कैकसी विश्वश्रवा मुनि की पत्नी थी। उसने दो रावण को जन्म दिया है— एक दसमुख और दूसरा सहस्रमुख। दसमुख का वध तो राम ने किया, परन्तु सहस्रमुख रावण का वध अभी नहीं हुआ है। अलौकिक ऐश्वर्य से संपन्न यह सहस्रमुख पुष्करद्वीप का राजा है। (इस रचना में उसका अद्भुत वर्णन १७वें सर्ग में विस्तारपूर्वक किया गया है।) इस द्वीप में इन्द्रपुरी पर उसने अपना अधिकार स्थापित किया है और जगत् के सार को खींचकर इसका निर्माण किया है। अपने समान बलशाली किसी को भी न देखकर यह मदांध (रावण) राक्षस सबको पीड़ित करता था। तब उसके पितामह पुलस्त्य और पिता विश्वश्रवा ने उसे वात्सल्यपूर्वक इस पाप-प्रवृत्ति से बचाया। तब वह निर्द्वन्द्व भाव से इस द्वीप में विलासपूर्वक रहने लगा।"

सीताजी द्वारा वर्णित यह कथा अकल्पनीय थी। राम द्वारा दसमुख रावण के वध में कोई आश्चर्य नहीं है ऐसी सबको प्रतीति हुई। राम का शौर्य तो मानो यह सुनते ही उत्तेजित हो उठा और तत्काल महायुद्ध के महाअभियान की तैयारियाँ होने लगीं। राम और सीता दलबल-सहित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्करद्वीप में पहुँच गये। वहाँ सहस्रमुख रावण से राम ने युद्ध किया, परन्तु वे पराजित हुए।

किसी भी व्यक्ति को प्रश्न होना स्वाभाविक है कि दसमुख रावण को मार सकनेवाले परमेश्वर राम सहस्रमुख रावण को क्यों नहीं मार सकते? यहाँ पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि राम का निरूपण परब्रह्म परमात्मा के रूप में हुआ है जो निर्गुण, निराकार, निर्धर्मक होने से निष्क्रिय हैं और सीता प्रकृति-स्वरूपा उनकी शक्ति हैं। राम जो कुछ कर सकते हैं, वह सब मात्र शक्ति को धारण करने पर ही संभव होता है। संपूर्ण जगत् में ओतप्रोत परमतत्त्व में अन्यता की कल्पना ही नहीं है। अतः अद्वितीय है तो किससे लड़ना और किसको मारना? साक्षात् परमात्मा धरती पर बिना शक्ति के अवतार भी नहीं ले सकता तो धरती पर किसी प्रकार की लीला अकेले-अकेले कैसे करेंगे?

अकेली शक्ति बिना आधार के प्रयुक्त नहीं हो सकती। दोनों परस्पर से अभिन्न हैं—

रामः साक्षात्परं ज्योतिः परं धाम परः पुमान्।
आकृतौ परमो भेदो न सीतारामयोर्यतः॥

जब दोनों में अभेद है तो जो कुछ कार्य वे करते हैं, उसे दोनों के सहयोग से हुआ समझना चाहिए। उसमें व्यक्ति-अहं का अभिनिवेश इष्ट नहीं है। यदि राम को परब्रह्म परमात्मा जान के भी सीता से वियुक्त-रूप में जाना तो सत्य न जाना और सीता को राम से वियुक्त रूप में जाना तो भी सत्य न जाना। जो भी जाना वह अपूर्ण ही रहा। पूर्ण ज्ञान से ही संसार से मुक्ति मिलती है। इसमें वर्णित सीता-चरित्र हमें राम-विषयक ज्ञान की पूर्णता पर पहुँचाता है। इसीलिए जब सीताजी ने राम के पराक्रम को लघु बताया, तब ऋषि-मुनि शंकित हुए, परन्तु राम निश्चल रहे।

राम का जन्म यदि दसमुख रावण को मारने के लिए हुआ तो सीता का जन्म सहस्रमुख रावण को मारने के लिए। दसमुख रावण के वध में सीता निमित्त बनीं तो सहस्रमुख रावण के वध में राम। सीताहरण के प्रसंग ने सीता को सामान्य नारी का व्यक्तित्व दिया तो सहस्रमुख रावण को मारने में असमर्थ राम को सामान्य पुरुष का व्यक्तित्व मिला। दोनों ने कैसी विचित्र किन्तु लोकोपकारी अगम्य लीला की? मानो, लुकाछिपी का खेल! हरण के पूर्व सीता अग्नि में छिप गईं। अग्नि क्या राम के स्वरूप से भिन्न है? वे तो राम में ही समाई हुई थीं। अन्यथा राम दसमुख रावण का वध न कर पाते। जब तक रावण के हृदयपटल पर सीता की मूर्ति कल्पित थी, राम उसका संहार न कर सके; मानो राम सीता-शक्ति से विच्छिन्न थे। सीता-शक्ति की आंशिक कमी भी राम के पौरुष को असफल कर देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहस्रमुख रावण का वध करनेवाली सीता की महिमा तो अवर्णनीय है, परन्तु वे क्यों दसमुख रावण के आक्रमण से अपनी रक्षा न कर पाईं ? बात स्पष्ट है ! वे राम की स्वरूपभूता शक्ति न थीं, पांचभौतिक रचना थीं। दूसरे, उन्होंने राम को अपने से दूर भेज दिया था। अतः उनमें तो ज्ञान और क्रिया दोनों शक्ति का अभाव था। उनके पांचभौतिक कलेवर में मन क्रियाशील था। अतः वे केवल इच्छा से प्रेरित थीं। उनकी इच्छा ही मृग-मरीचिका बनी और वही पुनः रावण का रूप लेकर आई। मनुष्य इच्छा तो करता है, परन्तु उसमें भी उसकी लाचारी है। इच्छा करते समय विवेक का अभाव क्षम्य माना जाय, परन्तु उसको क्रियान्वित करने में भी यदि वह स्वतन्त्र न हो तो ज्ञानहीन क्रियाशक्ति अमंगल ही करती है।

तांत्रिक लोग जिसको लक्ष्य बनाकर मारण-मोहन-उच्चाटन की साधना करते हैं, उस व्यक्ति को अपने सम्मुख नही रखते, उसकी आकृति को ही रखते हैं। रावण तंत्रविद्या में निष्णात था। जब तब सीता पर वह अपना अधिकार न जमा सका, उसने घड़ी-भर के लिए भी उनका विस्मरण न किया। तंत्रसाधना के फल-स्वरूप जैसे जीता-जागता व्यक्ति, जिसे लक्ष्य किया जाता है वह दुःख पाता है, वैसे सीता ने भी तब तक दुःख पाया जब तक रावण अपने मन में उनको देखता रहा। यह है तंत्र और मनोविज्ञान का गहरा संबंध। तंत्र-साधना के परिणाम को निष्फल करने में ज्ञान, इच्छा और क्रिया तीनों शक्तियों से संपन्न अलौकिक आत्मबल आवश्यक है। रावण जिस क्षण सीता की मानसमूर्ति से विमुख हुआ, राम सर्वशक्तिमान के अद्भुत कौशल से संपन्न हो गये। राम की सच्ची सीता अशोकवाटिका में नहीं, असुर की मानस-चेतना के प्रदेश में छिपी हुई थीं। अशोकवाटिका में रहनेवाली सीता को तो हनुमान भी ले जा सकते थे अपने शरीर-बल से; परन्तु असुर के अधिकार से उन्हें मुक्त करने के लिए तीनों शक्तियों के सहयोग की अपेक्षा है। ऐसी शक्ति केवल राम में है।

सहस्रमुख रावण के संहार में वीरता का परम उत्कर्ष प्रदर्शित करने वाली सीता का वर्णन भी अद्भुत है— "राम तो सहस्रमुख रावण के बाण से घायल होकर मूर्च्छित हो गये। परन्तु ऐसी स्थिति में भी जानकी के मुख पर हास्य था, शोक की रेखा भी न थी। उन्होंने तो ऊँचे स्वर से अट्टहास किया और रावण के वध के लिए कृतसंकल्प होकर महाविकट रूप धारण किया, अपना पूर्व रूप त्याग दिया। मानो अमूर्त संहारशक्ति ने मूर्त रूप धारण कर लिया और निमेषमात्र में ही लीला से रावण के सहस्र शिर खड्ग से काट डाले—

शिरांसि रावणस्याशु निमेषान्तरमात्रतः।
खड्गेन तस्य चिच्छेद सहस्राणीह लीलया॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही नहीं, रावण की संपूर्ण सेना का सीता ने संहार किया। इस संहार-लीला में सीता ने अनेक प्रकार अपनाये और सफलता पाकर ऐसी आनंदित हुईं कि उनके रोमकूप से असंख्य मातृकाएँ प्रगट हो गईं। ये मातृकाएँ कल्याणी थीं; शत्रुओं को भयभीत करनेवाली, कामरूपधारिणी और वायु के समान वेगवाली थीं।

इस वर्णन में ध्यान देने योग्य कई बातें हैं— अकेली सीता ने सारी संहार-लीला की और जिस असुर का जैसे वध हो सकता था, उसी प्रकार किया। मातृकाएँ सीता के अवर्णनीय आनंद की अभिव्यक्ति थीं और आनंदलीला में वे सीता के साथ सम्मिलित हुईं। इस आनंद की चरमसीमा पर संपूर्ण सृष्टि डगमगा गई, देवता नगण्य-से हो गये, तब शव के समान धारण कर शिव पृथ्वी थामने को जानकी के नीचे स्थित हुए और अपने रूप को स्थित किया—

सर्वभारसहो देवः- सीतापादतले स्थितः।
शवरूपो विरूपाक्षः सुस्थिताभूद्धरा तदा।।

अब भी भूर्भुवः, स्वः आदि ऊपर के लोक अस्वस्थ थे। अतः लोकपाल, देवता, पितर तथा ब्रह्माजी सब मिलकर सीताजी को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करने लगे। वे चाहते थे, कार्य पूरा हो गया, अतः सीता रौद्र-रूप से मुक्त होकर पूर्ववत् सौम्यरूप धारण कर लें। जब, जहाँ और जिसके विनाश की आवश्यकता नहीं है, वहाँ यदि शक्ति का प्रयोग हो, तो शक्ति व्यर्थ ही नहीं जाती, वरन् अनिष्ट परिणाम उत्पन्न करती है। अर्थात् जिस प्रकार सीता ने ज्ञान-क्रिया-इच्छा शक्ति के समन्वय से संहार किया, उसी समन्वय के सूत्र द्वारा संहार-कार्य का अंत और सृष्टि-स्थिति का निर्वाह होना चाहिए। ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीराम से कहा—

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम्।
सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मितः।।

तात्पर्य यह कि सीताजी सर्वशक्तिमान हैं। वे सृष्टि-स्थिति-संसार में समान शक्तिशाली हैं।

संहार के देवता शिव को भी इसलिए अपनी स्वरूप-शक्ति से रहित शवमात्र हो के जानकी की शरण में जाना पड़ा। शव की निष्क्रियता ने जानकी के पदतल की सक्रियता को कुंठित कर दिया। कल्याणतत्त्व ही संहार का निवारण कर सकता है।

सीता के मन-बुद्धि की वृत्तियों को ऊर्ध्वलोक की शक्तियों ने नियंत्रित किया। ब्रह्मादि ने उनकी स्तुति की— "शांति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति —ये चार परमेश्वर के ही रूप हैं और इन चारों का ऐक्य है पराशक्ति। वह पराशक्ति आप स्वयं हैं, इसीलिए परमात्मा की प्राप्ति, राम द्वारा आपके संबंध से ही हो सकती है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तुति के उत्तर में निष्प्रभ सीता कहती हैं कि जब राम मृतक के समान सोये हुए हैं तो मैं जगत के हित की इच्छा क्यों करूँ ? मैं तो चराचर जगत् को ग्रस जाऊँगी। वर्तमान युग में 'विज्ञान-शक्ति भगवत्ता-रहित होकर विनाश के लिए ही प्रेरित होती हैं'— यह प्रतीकात्मक अर्थ इस प्रसंग में ध्वनित होता है।

सीताजी की संहार-प्रवृत्ति विषयक उक्ति सुनते ही ब्रह्माजी ने श्रीराम को अपने हाथ से स्पर्श किया। राम होश में आये। उन्होंने सीता के बदले महाकाली की भयंकर मूर्ति देखी तो डर गये। तब ब्रह्माजी ने रावण के वध का सारा प्रसंग उन्हें सुनाया।

सीता की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी ने राम को कहा— "सीता के सहित आप जगत का सृजन और संहार कर सकते हैं। इनके बिना कुछ भी नहीं कर सकते। यह दिखाने के लिए ही जानकी ने यह कार्य किया है। सीता साक्षात् निर्गुण सत्-असत् व्यक्ति से रहित है।"

अब राम को प्रतीति हुई कि ये महाकाली-सी दिखती देवी ही सीता हैं। फिर भी वे भयमुक्त न हो पाये थे। उन्होंने धरती पर अपना सिर झुकाकर सीताजी को प्रणाम किया। वे उनके तेज से अत्यंत विह्वल थे। अतः वे हाथ जोड़कर डरते-डरते बोले— "हे चन्द्रखण्ड से अंकित विशाल-लोचनी ! तुम कौन हो ? हे महादेवी ! मैं आपको नहीं जानता ! आप मुझे अपना परिचय दीजिए।"

राम के वचन सुनकर सीता ने अपना स्वरूप-वर्णन किया— "मुझे महेश्वर के आश्रित परमशक्ति जानो। मैं अनन्य, अविनाशी एक हूँ। मुमुक्षु जन मुझको देखते हैं।" जिस प्रकार गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान कर अपने विराट्स्वरूप का दर्शन कराया था, उसी प्रकार सीता ने श्रीराम को दिव्यचक्षु प्रदान कर अपने गूढ़ स्वरूप में प्रवेश दिया।

अब सीताजी मौन हो गईं। श्रीराम ने देखा कि जिस ईश्वरपद पर सीताजी आसीन थीं, वह करोड़ों सूर्य के प्रकाशपुंज से परिपूर्ण था। यह था दिव्य माहेश्वर पद। यह पद सहस्रों ज्वालासमूहों से व्याप्त था। वह कालानल-सा प्रतीत होता था, क्योंकि सौ-सौ भयंकर दाँतों से भी अधिक भयानक था। उसकी जटा मानो आग की लपटें थीं।

सीताजी के हाथ में त्रिशूल होने के कारण उनका रूप प्रथम दृष्टि में तो घोर भयावना प्रतीत होता था, परन्तु उनके मुख पर सौम्यता और शांति थी। इससे वे अपने अनंत ऐश्वर्य को ही प्रगट करती थीं। उनके सिर पर करोड़ चन्द्रमा के तेज-सा जगमगाता मुकुट था जो बहुमूल्य रत्नों से विजड़ित था। उनके चरण नूपुरों से सुशोभित थे। दिव्य वस्त्र और माला धारण किये, दिव्य गंध का अनुलेपन किये हुए इस समय सीताजी ने हाथ में गदा, शंख और चक्र धारण किये थे। उनको तीन नेत्रों से युक्त

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

और गजचर्म को धारण किये हुए देखकर राम ने शिवास्वरूप जाना। सीताजी मानो बाहर-भीतर के भेद से मुक्त, सर्वाकार, सनातन और सर्व-शक्तिमान स्वरूप में, शांत मुद्रा में ब्रह्मांड में सर्वव्यापक थीं। उनके चरणकमल में ब्रह्मा, इन्द्र, उपेंद्र, योगीन्द्र आदि प्रार्थना के लिए नतशिर थे।

सीताजी को ऐसे दिव्य माहेश्वर पद पर विराजमान देखकर रामचन्द्र का मन उनमें तन्मय हो गया। सीताजी की आत्मा से उनका आत्मैक्य हो गया और ॐकार के स्मरण से उनके हृदय में सीताजी के एक सहस्र आठ नाम स्वयं स्फुरित हुए। उन्होंने इन नामों का स्तुतिपूर्वक उच्चारण करके प्रसन्न चित्त से रोमांचित होकर सीताजी को प्रणाम किया। ये नाम परमपद की सिद्धि देनेवाले और मंगलमय हैं। सीता-सहस्रनाम में सीता-राम के साक्षात्कार कराने की शक्ति है। फिर भी राम अब चाहते थे कि सीताजी अपने पूर्व रूप को धारण कर लें। तब उन्होंने अपना शान्त-सौम्य रूप प्रकट किया।

सीताजी का यह शान्त-सौम्य रूप भी दिव्य था। श्रीराम उनको देखकर आनंदित हुए। इस समय सीताजी सुवर्ण-कमल-सी सुंदर, तेजस्विनी एवं सुगंधित शरीरवाली थीं। उनके नेत्र कमलदल के समान थे। उनकी दोनों भुजाओं पर नीली अलकें बिखरी हुईं शोभा दे रही थीं। उनके चरण और करपल्लव लाल थे। अर्धचन्द्रमा के समान उनके विशाल ललाट पर लक्ष्मी-सा तेज था। उज्ज्वल तिलक से वह और भी अधिक सुन्दर दिख रहा था। उनके गले में सोने की दिव्य माला और अंग-अंग आभूषणों से भूषित थे। उनके बिंबफल-से लाल अधरों पर स्मित था। चरणों में नूपुर थे। दिव्य अम्बर उनकी शोभा के अनुरूप ही था।

श्रीराम ने अपने जीवन में प्रथम बार जानकी जी के रौद्ररूप को और माहेश्वर-पद को देखा। इसलिए वे कहते हैं— "आज मेरा जन्म और तप सफल है जो तुम अव्यक्ता साक्षात् मेरी दृष्टि के सम्मुख हुई हो और प्रसन्न हो।" इस प्रकार धन्यता का अनुभव करनेवाले राम पुनः सीताजी का परब्रह्म परमात्मा के रूप में निरूपण करते हुए स्तुति करते हैं। अट्ठाईस श्लोकों में किया हुआ यह निरूपण ब्रह्मज्ञान देने की योग्यता रखता है। मानो दर्शनशास्त्र का सार ही श्रीराम के मुख से घोषित हुआ है—

त्वमेव परमं व्योम महाज्योतिर्निरंजनम्।
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परंब्रह्म सनातनम्॥

अर्थात्— "तू (सीता) ही परमाकाश महाज्योति निरञ्जन है, (और तू ही) शिव, सर्वगत सूक्ष्म परब्रह्म सनातन है।"

भगवान की सारी विभूतियों का और सृष्टि के सारे तत्त्वों का श्रीसीता के स्वरूप में स्वरूपभूत रूप से दर्शन करके श्रीराम को उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमात्मस्वरूप की पूर्ण प्रतीति हुई। राजा रामचंद्र ने वसिष्ठजी से रामायण सुनकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु सीताहरण और रावण के साथ युद्ध आदि प्रसंगों से कुछ विस्मरण हो जाना संभव है। इस प्रसंग ने राम को उसका पुनः स्मरण करा दिया। अर्जुन को महाभारत के युद्ध के समय श्रीकृष्ण भगवान ने ब्रह्मज्ञान दिया, परन्तु युद्ध, राज्यकार्य आदि कार्यों में अत्यधिक प्रवृत्ति के कारण उसे भी विस्मरण हो गया था। ब्रह्मात्मैक्यानुभव के लिए उन्हें एक बार आत्मस्थ होना पड़ा था।

राम स्वयं परब्रह्म परमात्मा होकर भी मानव-जन्म धारण करके मानवसहज क्रियाकलाप के अभिनय में ऐसे तन्मय हो गये कि उन्होंने अपनी उसी भूमिका में अपनी पूर्णता और सत्यता का अनुभव किया। उसी में परमानन्द का अनुभव किया। परमानंद की मस्ती ही ऐसी है कि व्यक्ति स्वयं को भूल जाता है। श्री सीताजी अन्य होकर भी श्रीराम से अभिन्न हैं। अतः उनके परब्रह्म-स्वरूप का विस्मरण होना आत्मविस्मरण के समान ही है। यदि राम को आत्मविस्मरण न हुआ होता तो वे ही सहस्रवदन रावण को मार डालते! यह विस्मरण अहंशून्यता की चरम-परम स्थिति है।

राम ने लीलावतार धारण करके जैसे अन्य अनेक अभिनय किये, वैसे आत्मविस्मरण और सीता के स्वरूप का विस्मरण हो जाने का एक अभिनय करके जान-बूझकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जिससे संसार में कोई श्रीसीताजी को राम से भिन्न न समझें। सबको ऐसी प्रतीति दी कि जो राम हैं, वही सीता हैं। मात्र लीला के लिए दो शरीर धारण किये हैं। श्रीराम ने श्रीसीताजी की स्तुति में बार-बार उनको नमस्कार भी किया। तात्पर्य यह है कि जहाँ कहीं भी परमात्मा का साक्षात्कार हो, वह वंदनीय है। श्रीराम ने सीताजी को प्रणाम किया और उनके पार्श्वभाग में स्थित हुए।

श्रीराम द्वारा की गई स्तुति को श्रवण करके हँसती हुई वे बोलीं— "मैंने रावण के वध के निमित्त यह जो रूप धारण किया है, इस रूप से मैं मानस के उत्तर भाग में निवास करूँगी।" सीताजी के इस कथन का क्या रहस्य हो सकता है? श्रीराम के सम्मुख वे पत्नी की भूमिका पर ही रहना चाहती हैं। श्रीराम ने उनकी स्तुति की, प्रणाम किया और सहस्र-मुख रावण को मारकर राम से अधिक उन्होंने अपने को शक्तिशाली बताया —इसका भान स्वयं को या अन्य किसी को न होता रहे, अपने पति अपने सामने झुक-झुक के न चले, यही उन्होंने चाहा। सीताजी का वह रूप तो एक आवेशावतार था और मात्र सहस्रमुख रावण के वध के लिए था। अब उसकी आवश्यकता न थी। यह सीताजी की महानता ही है कि उन्होंने अपने ऐसे ऐश्वर्य को भी लोक से दूर फेंक दिया। मानस के उत्तर भाग में तो मात्र शिवजी रहते हैं। शिवजी की संहार-शक्ति का अभिनिवेश-वाला वह रूप उनके समीपवर्ती स्थान में रहे यही उन्होंने उचित माना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोक में स्वयं को पुजवाने की अभिलाषा तो उन्हें बिलकुल न थी। वे चाहती थीं, विश्व में युद्ध का अंत हो, प्रेम और शांति का साम्राज्य हो। अतः वैसा ही रूप लेकर अयोध्या में श्रीराम के साथ रहना उन्होंने पसंद किया। वे कहती हैं— "हे राम! तुम प्रकृति से नीलरूप हो। रावण से अर्दित होने से लोहितवर्ण हुए। सो नीललोहित रूप से तुम्हारे साथ मैं निवास करूँगी।" सीताजी की यह अद्‌भुत अनन्यता है कि राम से तनिक भी विशिष्ट होकर रहना उन्हें पसंद नहीं है। श्रीराम के स्वरूपचिह्न से ही उन्हें सर्वाधिक प्रेम है और राम के शौर्य और शक्ति में ही अपना गौरव पाती हैं। इसलिए अपने शौर्य और शक्ति को तो गौण बना दिया और राम की अर्धांगिनी का पद अपनाया।

सीताजी के समान श्रीराम को भी उनकी शक्ति और शौर्य में गौरव की भावना है, श्रद्धा-निष्ठा है। अतः उन्होंने वरदान माँगा—

देवि सीते महाभागे दर्शितं रूपमैश्वरम्।
हृदयान्नापगच्छेत्तादिति मे दीयतां वरः॥

अर्थात्— "हे महाभागे देवि सीते! तुमने यह जो ईश्वर-संबंधी (अपना) रूप दिखाया है, वह कभी मेरे हृदय से न जाय (विस्मृत न हो), यही वर मुझे दीजिए।" सीताजी ने श्रीराम के द्वारा माँगे गये सब वरदान पूरे किये।

अयोध्या में जाने के बाद सब उनके दर्शन से कृतार्थ हुए। ऋषि-मुनियों ने उनका अभिनंदन किया। उनकी विनम्रता देखकर उन्होंने उन्हें आशीर्वाद भी दिया।

यह अद्‌भुत कथा कहाँ गुप्त थी? वाल्मीकि कहते हैं—

रामायणं महारत्नं ब्राह्महृत्क्षीरधावभूत्।
नारदान्तः समासाद्य क्रमान्मम हृदि स्थितम्॥

अर्थात्— "रामायण रूपी यह महारत्न ब्रह्माजी के हृदय-रूपी क्षीर-समुद्र में स्थित था, फिर वह नारद के अन्तर में प्राप्त हो क्रम से मेरे हृदय में प्राप्त हुआ है।"

इस रामायण का रचयिता असली वाल्मीकि हो, या कल्पित, रामकथा के प्रणयन में वाल्मीकि की प्रतिभा का आवेश विविध रामायणों में व्यक्त हुआ है। जिस प्रकार संत तुलसीदास 'रामचरितमानस' के प्रणेता के रूप में वाल्मीकि के अवतार माने गये, कृष्णभक्त नरसिंह मेहता मुचुकंद के, महात्मा गांधी कबीर के, उसी प्रकार इस 'अद्‌भुत रामायण' के रचयिता में वाल्मीकि की भावना की जा सकती है। विद्वानों के मतानुसार यह रचना प्रायः सत्रहवीं शताब्दी में रचित होनी चाहिए। इस संभावना में सत्य की उपलब्धि होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि भारत का राजनैतिक-धार्मिक इतिहास देखा जाय तो इस रचना को युगानुरूप साहित्य-प्रवृत्ति कहने में तनिक भी संकोच न होगा। धार्मिक क्षेत्र में शक्ति की उपासना प्रबल थी। राजनीतिक क्षेत्र में सहस्रवदन रावण जैसे अनेक क्रूर जुल्मी विधर्मी विदेशी आक्रमणकार राष्ट्र की संपत्ति के साथ भारतीय नारी के सतीत्व को भी लूट ले जाते थे। भारतीय समाज में नारी अतिशय दीन-हीन दशा में अनेक प्रकार के दुःख सह रही थी। पुरुष अपने को महत्त्वपूर्ण, श्रेष्ठ और अधिकारी मानकर स्त्री पर जड़-संपत्ति-सा अधिकार भोगता था, उसे तुच्छ मानता था, उसके विकास और उद्धार की उसे तनिक भी चिंता न थी। संक्षेप में, भारतीय संस्कृति पर बहुत बड़ा ख़तरा था।

रामायण भारतीय-संस्कृति का अमर प्रतिनिधि ग्रंथ है और विश्वसाहित्य में बेजोड़ है। किसी संतहृदय व्यक्ति ने लोककल्याण, संस्कृति की सुरक्षा और नारी के उद्धार की भावना से प्रेरित होकर यह रचना की हो ऐसा संभव है। राम द्वारा सीताजी की स्तुति; उनको अपने समान परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप मानना ही नहीं, अनुभव भी करना और उनके चरणों में झुककर प्रणाम करना; वरदान माँगना और इन सबसे बढ़कर सीताजी के रौद्रस्वरूप से भयभीत हो जाना —ये सारी बातें मानो उन पुरुषों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं जो स्त्री का जगदंबा के रूप में आदर नहीं करते, उसकी शक्ति में श्रद्धा नहीं रखते, उसे अन्याय-अनाचार से पीड़ित करते हैं। जिस देश में स्त्री को दुःखी किया जाता है, वहाँ राष्ट्रलक्ष्मी रूठ जाती है या क्रुद्ध हो जाती है। परिणाम में दीनता, पराधीनता, भ्रष्टता और विनाश का ही मुक़ाबला करना पड़ता है। स्त्री के गौरव की रक्षा, उसके विकास और उद्धार के प्रयत्न, भेदभाव से रहित होकर पुरुष के समान उसके महत्त्व की स्थापना आदि रचनात्मक पवित्र विधान ही सही अर्थ में शक्तिपूजा है, मातृपूजा है।

भारत में प्रचलित शक्तिपूजा का आध्यात्मिक साधना की प्रक्रिया से गहरा संबंध है। इसके वास्तविक रहस्य को न समझनेवाले अपनी-अपनी वासना से प्रेरित होकर इसे विकृत कर देते हैं, परन्तु इससे तो इसका आध्यात्मिक महत्त्व और भी बढ़ जाता है। शिव और शक्ति जगत के माता-पिता हैं। उनकी आराधना से जीव संसार-चक्र से मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार शक्ति और सीता अभिन्न हैं, राम और शिव भी अभिन्न हैं।

आध्यात्मिक साधना का प्रथम सोपान है संयमपूर्वक दसों इन्द्रियों को अंतर्मुख करना। राम द्वारा दसमुख रावण का वध दस इन्द्रियों पर संयम पाना है। इस संयम के बाद सहस्रमुखी वासनाओं का निवारण आवश्यक है और उसके लिए साधना द्वारा कुंडलिनी-शक्ति का जागरण अपेक्षित है। सहस्रमुख रावण के वध के समय राम का बेहोश होना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधक की अंतर्मुखता की स्थिति है और सीता द्वारा की गई संहार-लीला वासनाओं की सभी सूक्ष्म वृत्तियों का निवारण है। प्रथम इन्द्रिय-जय, बाद में मनोजय। मनोजय के बाद सीता-राम का मिलन जीव-ईश्वर की एकता और अभिन्नता का सूचक है। लक्ष्यसिद्धि के बाद साधना करते रहना आवश्यक नहीं है। सीता द्वारा 'माहेश्वर-पद' का त्याग साधना की पूर्णता है। शक्तिपूजा का परम-चरम लक्ष्य साधना की पूर्णता में निहित है।

हमारे पुराणों का परम तात्पर्य लौकिक कथा द्वारा केवल मनोरंजन नहीं है। रोचक कथा में भी उपनिषद् का परम तात्पर्य निहित रहता है। यह परम तात्पर्य साधना की पूर्णता को चरितार्थ कर दिखाता है। राम और सीता के चरित्र साधना को व्यावहारिक अर्थ में घटित करके मनुष्य के लक्ष्य को ध्रुव-तारक के समान निश्चित रूप से और नित्य प्रकाश और प्रेरणा देते रहते हैं। इन भावनाओं, विचारों और निष्कर्षों को अनुभवी संतों का समर्थन युग-युग से प्राप्त है।

"श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीरामचन्द्र का जन्म केवल कौशल्या से ही नहीं होता। कौशल्या शुद्ध बुद्धिरूप है, दशरथ शुद्ध मनरूप हैं और उन दोनों के द्वारा हृदय में भगवत्तत्त्व का आविर्भाव होता है। इस बात को प्रकट करने के लिए भागवतकार ऐसे ढंग से वर्णन करते हैं कि भगवान् श्रीरामचन्द्र के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों रूप सिद्ध हो जायँ।

श्रीशंकराचार्य भगवान श्रीरामचन्द्र की आध्यात्मिक व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

तीर्त्वा मोहार्णवम् हत्वा कामक्रोधादिराक्षसम्।
शान्तिसीतासमायुक्तः आत्मारामो विराजते॥

श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने तो अपने गुरु से अठारह बार वाल्मीकि रामायण का श्रवण किया और उनको अठारह प्रकार के अर्थ ज्ञात हुए (अनुभव में आये)। उनमें से एक अर्थ आध्यात्मिक भी है। इसलिए श्रीरामचरित्र के आध्यात्मिक अर्थ की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।"

सीताजी राम से अभिन्न हैं। वाल्मीकि जी कहते है, ब्रह्मा जी ने श्रीराम को सीताजी के तत्त्वस्वरूप का इस प्रकार परिचय दिया—

नानया रहितो राम किंचित्कर्तुमपिक्षमः।
इति बोधयितुं सीता चकार तदनिंदिता॥ (२४-४२)

तब श्रीराम ने स्तुति-पूर्वक श्रीसीताजी को नमस्कार किया—

प्रधानपुरुषेशाना महापुरुषसाक्षिणी।
सदा शिवा वियन्मूर्तिदेवमूर्तिरमूर्तिका॥ (२५-१५२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीराम-पञ्चायतन

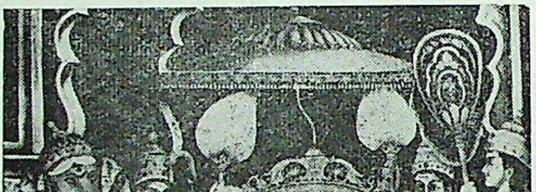

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

अद्भुतरामायणम्

(भाषाटीकासहितम्)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

अद्भुतरामायणम्

प्रथमः सर्गः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।। १ ।।

नमस्तस्मै मुनींद्राय श्रीयुताय यशस्विने ।
शांताय वीतरागाय वाल्मीकाय नमोनमः ।। २ ।।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।। ३ ।।

जयति रघुवंशतिलकः कौशल्यानंदवर्द्धनो रामः ।
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुंडरीकाक्षः ।। ४ ।।

तमसातीरनिलयं निलयं तपसां गुरुम् ।
वचसां प्रथमस्थानं वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् ।। १ ।।

विनयावनतो भूत्वा भरद्वाजो महामुनिः ।
अपृच्छत्संमतः शिष्यः कृतांजलिपुटो वशी ।। २ ।।

रामायणमिति ख्यातं शतकोटिप्रविस्तरम् ।
प्रणीतं भवता यच्च ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ।। ३ ।।

श्रूयते ब्राह्मणैर्नित्यमृषिभिः पितृभिः सुरैः ।
पंचविंशतिसाहस्रं रामायणमिदं भुवि ।। ४ ।।

तदाकर्णितमस्माभिः सविशेषं महामुने ।
शतकोटिप्रविस्तारे रामायणमहार्णवे ।। ५ ।।

किं गीतमिह मुष्णाति तन्मे कथय सुव्रत ! ।
आकर्ण्यादरिणः पृष्टं भरद्वाजस्य वै मुनिः ।। ६ ।।

हस्तामलकवत्सर्वं सस्मार शतकोटिकम् ।
ओमित्युक्त्वा मुनिः शिष्यं प्रोवाच वदतां वरम् ।। ७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

अद्भुतरामायण

प्रथम सर्ग

राम-जानकी का परब्रह्मरूप-प्रतिपादन

नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एवं व्यास जी को प्रणाम करके जय का उच्चारण करना चाहिए ।। १ ।।

लक्ष्मीयुक्त, यशस्वी, शांत, वीतरागी मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि जी के प्रति वंदन ।। २ ।।

रामभद्र, रामचन्द्र विधाता, रघुनाथ, नाथ, सीतापति राम को नमस्कार ।। ३ ।।

रघुवंश (के)-तिलक, कौसल्या के आनंद में अभिवृद्धि करनेवाले, रावण का संहार करनेवाले, कमल के समान नेत्र वाले दशरथ-पुत्र राम की जय हो ।। ४ ।।

तमसा-तीर के निवासी, तप का आश्रयस्थान, गुरु (देव), वाणी के प्रथम स्थान, मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि से विनय से हाथ जोड़कर, जितेन्द्रिय, मुनि द्वारा सम्मति-प्राप्त शिष्य महामुनि भरद्वाज ने प्रश्न किया ।। १-२ ।।

'रामायण' नाम से प्रसिद्ध आपकी रचना, जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकों में किया गया है और जो ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित है ।। ३ ।।

ब्राह्मण, ऋषि, पितर तथा देवता लोग जिसका नित्य श्रवण करते हैं, वह रामायण पृथ्वी पर २५००० श्लोकों में निबद्ध है ।। ४ ।।

हे महामुनि ! इस २५००० श्लोकों वाली रामायण हमने विशेष रूप से सुनी है, किन्तु सौ करोड़ (श्लोकों के) विस्तार वाले रामायण-रूप महासागर में वह गुप्त कथा कौन-सी है ? हे सुव्रत ! आप उसे हमें सुनाइए। इस प्रकार गुरु के प्रति आदर रखनेवाले भरद्वाज का प्रश्न सुनते ही मुनि को सौ करोड़ श्लोकों वाली संपूर्ण रामायण का हस्तामलकवत् स्मरण हो आया। 'अच्छा' ऐसा कहकर मुनि ने बोलनेवालों में श्रेष्ठ (अपने) शिष्य से कहा— ।। ५-७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरद्वाज चिरं जीव साधु स्मारितमद्य नः ।
शतकोटिप्रविस्तारे रामायणमहार्णवे ॥ ८ ॥

रामस्य चरितं सर्वमाश्चर्यं सम्यगीरितम् ।
पंचविंशतिसाहस्रं नृलोके यत्प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥

नृणां हि सदृशं रामचरितं वर्णितं ततः ।
सीतामाहात्म्यसारं यद्विशेषादत्र नोक्तवान् ॥ १० ॥

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन्काकुत्स्थचरितं महत् ।
सीताया मूलभूतायाः प्रकृतेश्चरितं महत् ॥ ११ ॥

आश्चर्यमाश्चर्यमिदं गोपितं ब्रह्मणो गृहे ।
हिताय प्रियशिष्याय तुभ्यमावेदयामि तत् ॥ १२ ॥

जानकी प्रकृतिः सृष्टेरादिभूता महागुणा ।
तपःसिद्धिः स्वर्गसिद्धिर्भूतिर्मूर्तिमती सती ॥ १३ ॥

विद्याविद्या च महती गीयते ब्रह्मवादिभिः ।
ऋद्धिः सिद्धिर्गुणमयी गुणातीता गुणात्मिका ॥ १४ ॥

ब्रह्मब्रह्मांडसंभूता सर्वकारणकारणम् ।
प्रकृतिर्विकृतिर्देवी चिन्मयी चिद्विलासिनी ॥ १५ ॥

महाकुण्डलिनी सर्वानुस्यूता ब्रह्मसंज्ञिता ।
यस्या विलसितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ १६ ॥

यामाधाय हृदि ब्रह्मन्योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ।
विघट्टयंति हृद्ग्रंथिं भवन्ति सुखमूर्तिकाः ॥ १७ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सुव्रतः ! ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा प्रकृतिसंभवः ॥ १८ ॥

रामः साक्षात् परं ज्योतिः परं धाम परः पुमान् ।
आकृतौ परमो भेदो न सीतारामयोर्यतः ॥ १९ ॥

रामः सीता जानकी रामभद्रो नाणुर्भेदो नैतयोरस्ति कश्चित् ।
सन्तो बुद्ध्वा तत्त्वमेतद्विबुद्धाः पारं याताः संसृतेर्मृत्युवक्त्रात् ॥२०॥

रामोऽचिन्त्यो नित्यचित्सर्वसाक्षी सर्वान्तःस्थः सर्वलोकैककर्ता ।
भर्ता हर्तानंदमूर्तिर्विभूमा सीतायोगाच्चिन्त्यते योगिभिः सः ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"भरद्वाज ! दीर्घायु हो ! तुमने आज मुझे अच्छा स्मरण कराया ! सौ करोड़ (श्लोकों) के विस्तारवाले रामायण-महासागर में राम का समग्र आश्चर्यकारक चरित्र अच्छी तरह वर्णित किया गया है, (जो कि) मनुष्य-लोक में २५००० (श्लोक) युक्त रामायण के रूप में प्रतिष्ठित है ।।८-९।।

वहाँ रामचरित्र मनुष्यों के (चरित्र के) समान वर्णित किया गया है । उसमें सीता-माहात्म्य का सार विशेष रूप से नहीं बताया गया ।। १० ।।

हे ब्रह्मन् ! सावधान होकर श्रीराम के महान् चरित को एवं मूलभूत प्रकृतिरूप सीता के महान चरित का (भी) श्रवण कीजिए ।। ११ ।।

यह बहुत बड़ा आश्चर्य ब्रह्माजी के निवास-स्थान में गुप्त रखा गया है । तुम सरीखे हितैषी, प्रिय शिष्य से मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ ।।१२।।

जानकी सृष्टि की मूलभूत महागुणसंपन्न प्रकृति है । (वह) तप की सिद्धि, ऐश्वर्यरूप और मूर्तिमती सती है ।। १३ ।।

ब्रह्मवादी महान् विद्या और अविद्यारूप से (उसका) गान करते हैं । वह ऋद्धि, सिद्धि, गुणमयी, गुणातीत एवं गुणात्मिका है ।। १४ ।।

ब्रह्म-ब्रह्मांड का इसी से संभव है । वही सारे कारणों के कारणरूप है । (यह देवी) प्रकृतिविकृतिरूप, चिन्मयी और चिद्विलासिनी है ।।१५।।

यही महाकुण्डलिनी सर्वव्यापक और ब्रह्मसंज्ञा धारण करनेवाली है । यह संपूर्ण चराचर जगत इसी का विलसित रूप है ।। १६ ।।

हे ब्रह्मन् ! तत्त्वदृष्टा योगी जिसको हृदय में धारण करके हृदय की (अज्ञानरूप) ग्रंथि को नष्ट करते हैं और सुखी हो जाते हैं ।। १७ ।।

हे सुव्रत ! जब-जब धर्म की ग्लानि एवं अधर्म का उदय होता है, तब-तब प्रकृति की उत्पत्ति होती है ।। १८ ।।

राम साक्षात् परंज्योति, परंधाम और परंपुरुष हैं । अतएव सीता और राम की मूर्ति में कोई भेद नहीं है ।। १९ ।।

राम, सीता, जानकी और रामभद्र, इनके बीच अणुमात्र भी भेद नहीं है । सन्त इस तत्त्व को जानकर प्रबुद्ध हो जाते हैं और मृत्यु के मुख से छूटकर इस संसार के आवागमन से मुक्त हो जाते हैं ।। २० ।।

राम अचिन्त्य, नित्य, चित् स्वरूपवाले, सर्व के साक्षी, सब अंतःकरणों में रहनेवाले, सब लोगों के एक मात्र सर्जक-पालक-संहारक और आनंदस्वरूप विभूमा हैं । सीता के योग से योगी लोग जिनका चिन्तन करते हैं ।। २१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२२॥

तयोः परं जन्म उदाहरिष्ये ययोर्यथाकारणदेहधारिणोः ।
अरूपिणो रूपविधारणं पुनर्नृणां महानुग्रह एव केवलम् ॥२३॥

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्क्षत्रान्वयो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयाच्छृण्वन्हि शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥२४॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्‌भुतोत्तरकाण्डे
आदिकाव्ये रामजानकी परब्रह्मरूपप्रतिपादनं
नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

भरद्वाज शृणुष्वाथ रामचन्द्रस्य धीमतः ।
जन्मनः कारणं विप्र इक्ष्वाकुकुलवारिधौ ॥ १ ॥

सीतायाश्च महादेव्याः पृथिव्यां जन्महेतुकम् ।
तत्र रामकथामादौ वक्ष्यामि मुनिपुंगव ॥ २ ॥

श्रूयतां मुनिशार्दूल अंबरीषकथालयम् ।
पुरुषोत्तममाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ॥ ३ ॥

त्रिशंकोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता ।
अंबरीषस्य जननी नित्यं शौचसमन्विता ॥ ४ ॥

योगनिद्रां समारूढं शेषपर्यंकशायिनम् ।
नारायणं महात्मानं ब्रह्मांडकमलोद्भवम् ॥ ५ ॥

तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम् ।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ६ ॥

अर्चयामास सततं वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ।
माल्यदामादिकं सर्वं स्वयमेव व्यचीकरत् ॥ ७ ॥

गंधादिपेषणं चैव धूपद्रव्यादिकं तथा ।
तत्सर्वं कौतुकाविष्टा स्वयमेव चकार सा ॥ ८ ॥

शुभा पद्मावती नित्यं वचो नारायणेति च ।
अनंतेति च सा नित्यं भाषमाणा यतव्रता ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(भौतिक) हाथ-पैर-रहित होकर वे शीघ्रगामी और ग्रहण करने वाले हैं। चक्षुरहित होकर भी वे देखते हैं और कर्णरहित होकर भी वे सुनते हैं। वे विश्व को जानते हैं। उनको जाननेवाला कोई नहीं है। उन्हें प्रथम और पुराणपुरुष कहते हैं ॥ २२ ॥

कारणवशात् देह धारण करनेवाले उन दोनों के परंजन्म का मैं वर्णन करूँगा। उन बिना रूप वालों का रूप (देह) धारण करना भी मनुष्यों के लिए एक बड़ी कृपा ही है ॥ २३ ॥

इसे पढ़नेवाला ब्राह्मण वाणी की श्रेष्ठता को प्राप्त करे, क्षात्रवंश में उत्पन्न होनेवाला पृथ्वीपति हो, वणिक् व्यापार के फल को प्राप्त करे और (इस सीताराम-चरित को) सुननेवाला शूद्र भी महत्त्व को प्राप्त करे ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-
काण्ड में राम-जानकी का परब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादन नाम
प्रथम सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

अम्बरीष राजा को नारायण का वरदान

हे विप्र भरद्वाज ! इक्ष्वाकु-कुलसागर में बुद्धिमान् श्रीरामचंद्रजी के जन्म का कारण सुनो ! ॥ १ ॥

और महादेवी सीता का भी पृथ्वी पर जन्म लेने का (कारण सुनो)। हे मुनिश्रेष्ठ ! उसमें प्रथम मैं रामकथा का वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! अम्बरीष कथा-संबंधी सब पापों का हरण करनेवाला पुरुषोत्तम-माहात्म्य का श्रवण कीजिए ॥ ३ ॥

त्रिशंकु की प्रिय पत्नी सर्व (शुभ) लक्षणों से शोभित थी। अम्बरीष की वह जननी नित्य पवित्रता से युक्त थी ॥ ४ ॥

योगनिद्रा में आरूढ़, शेषशय्या पर शयन करनेवाले महात्मा, नारायण ब्रह्माण्ड के सृष्टा ॥ ५ ॥

तमोगुण से कालरुद्र कहलानेवाले, रजोगुण से ब्रह्मारूप, सत्त्वगुण से सर्वव्यापक और सर्व देवताओं के नमस्कार योग्य विष्णु की मनसा-वाचा-कर्मणा ॥ ६ ॥

सतत अर्चना करती हुई वह स्वयं फूलों की माला आदि की रचना और गंधादि का पेषण, धूप-दीप इत्यादि क्रियाएँ भी कौतुकपूर्वक वह स्वयं अपने हाथ से करती थी ॥ ७-८ ॥

वह शुभा व्रतधारिणी पद्मावती 'नारायण' का और 'अनंत' (शेष) नामों का नित्य उच्चारण करती रहती थी ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशवर्षसहस्राणि तत्परेणांतरात्मना ।
अर्चयामास गोविंदं गंधपुष्पादिभिः शुभैः ॥ १० ॥
विष्णुभक्तान्महाभागान्सर्वपापविवर्जितान् ।
दानमानार्चनैर्नित्यं धनै रत्नैरतोषयत् ॥ ११ ॥
ततः कदाचित्सा देवी द्वादश्यां समुपोष्य वै ।
हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह ॥ १२ ॥
तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः ।
किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तः किं ब्रूहि भामिनि ! ॥ १३ ॥
सा दृष्ट्वा तं वरं वव्रे पुत्रस्त्वद्भक्तिमान्भवेत् ।
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः ॥ १४ ॥
तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः ।
सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं निवेद्य च ॥ १५ ॥
भक्षयामास संदश्य फलं तद्धृष्टमानसा ।
ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्द्धनम् ॥ १६ ॥
असूयत शुभाचारं वासुदेवपरायणम् ।
शुभलक्षणसम्पन्नं चक्रांकितमनुत्तमम् ॥ १७ ॥
जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै ।
अम्बरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः ॥ १८ ॥
पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तो महात्मभिः ।
मंत्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रं चकार सः ॥ १९ ॥
संवत्सरसहस्रं वै जगन्नारायणं प्रभुम् ।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं सूर्यमण्डलमध्यगम् ॥ २० ॥
शंखचक्रगदापद्मं धारयंतं चतुर्भुजम् ।
शुद्धजाम्बूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ २१ ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं प्रभुम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ॥ २२ ॥
ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः ।
आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २३ ॥
ऐरावतमिवाचिंत्यं कृत्वा वै गरुडं हरिः ।
स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम् ॥ २४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Prosevation Foundation, Chandigarh

दस हज़ार वर्ष तक तन्मय चित्त से गन्ध-पुष्पादि से वह गोविन्द की पूजा करती रही ॥ १० ॥

सर्व पापों से रहित महात्मा विष्णुभक्तों को वह दान, मान, पूजा, धन एवं रत्नों से हमेशा तृप्त करती थी ॥ ११ ॥

एक बार द्वादशी के दिन व्रत रखकर वह महाभागा पति के साथ नारायण के सम्मुख सो रही थी ॥ १२ ॥

तब पुरुषोत्तम देव नारायण ने उसे कहा— "हे भद्रे ! तुम मुझसे कौन से वरदान की इच्छा करती हो ? हे भामिनि ! बोलो ! ॥ १३ ॥

उनका दर्शन कर उसने यह वर माँगा कि आपमें भक्तिभाव वाला, सार्वभौम, महातेजस्वी, स्वकर्म-निरत और पवित्र ऐसा पुत्र हो ! ॥ १४ ॥

जनार्दन ने 'तथास्तु' कहकर उसे एक फल दिया। फल को देख कर वह जाग गई और उसने अपने पति को सब कुछ बताया ॥ १५ ॥

प्रसन्न मन वाली उसने वह फल खाया। तब योग्य समय पर उस देवी ने कुल की वृद्धि करनेवाले, सुन्दर आचरणयुक्त, वासुदेव-परायण, शुभ-लक्षण-संपन्न और चक्र-चिह्न से युक्त श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दिया ॥ १६-१७ ॥

पुत्र-जन्म होने पर पिता ने सारी (धार्मिक) क्रियाएँ कीं। वह प्रभु 'अम्बरीष' नाम से (लोक में) विख्यात हुआ ॥ १८ ॥

पिता का निधन होने पर महात्माओं ने उस श्रीमान् का राज्य-अभिषेक किया। मंत्रियों को राज्य सौंपकर उसने उग्र तपश्चर्या की ॥१९॥

सहस्र वर्ष तक उसने (अपने) हृदयकमल के मध्य में स्थित सूर्यमंडल के मध्य में रहे हुए जगत्-प्रभु नारायण शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करनेवाले, चार भुजा वाले शुद्ध सुवर्ण के समान कान्तिवाले, ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपात्मक, सर्व आभूषणों से भूषित, पीतांबरधारी, वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न धारण करनेवाले पुरुषोत्तम देव का जप किया ॥ २०-२२ ॥

जिनकी स्तुति सब देवता करते थे और सारे लोक जिनके चरण-कमलों में नतमस्तक रहते थे, वह विश्वात्मा गरुड़ पर आरूढ़ होकर आये ॥ २३ ॥

अचिंत्य (परमात्मा) गरुड़ को ऐरावत के समान करके और स्वयं इन्द्र के समान (होकर उस पर) बैठकर उस नृपश्रेष्ठ से कहने लगे ॥२४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इंद्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि तवाद्य वै ।
सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः ।। २५ ।।

अम्बरीषस्तु तं दृष्ट्वा शक्रमैरावतस्थितम् ।
उवाच वचनं धीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ।। २६ ।।

नाहं त्वामभिसंधाय तप आस्थितवानिह ।
त्वया दत्तं च नेच्छामि गच्छ शक्र यथासुखम् ।। २७ ।।

मम नारायणो नाथस्त्वां न तोष्येऽमराधिप ।
वृजेन्द्र मा कृथास्त्वत्र ममाश्रमविलोपनम् ।। २८ ।।

ततः प्रहस्य भगवान्स्वरूपमकरोद्धरिः ।
शार्ङ्गचक्रगदापाणिः शंखहस्तो जनार्दनः ।। २९ ।।

गरुडोपरि विश्वात्मा नीलाचल इवापरः ।
देवगंधर्वसंघैश्च स्तूयमानः समंततः ।। ३० ।।

प्रणम्य राजा संतुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम् ।
प्रसीद लोकनाथस्त्वं मम नाथ जनार्दन ।। ३१ ।।

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत ।
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनन्तः पुरुषः प्रभुः ।। ३२ ।।

अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविंदः कमलेक्षणः ।
महेश्वरांशजो मध्यः पुष्करः खगमः खगः ।। ३३ ।।

कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभंजनः ।
आदिदेवः क्रियानन्दः परमात्मनि संस्थितः ।। ३४ ।।

त्वां प्रपन्नोऽस्मि गोविंद पाहि मां पुष्करेक्षण ।
नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वामेव शरणं गतः ।। ३५ ।।

तमाह भगवान्विष्णुः किं ते हृदि चिकीर्षितम् ।
तत्सर्वं संप्रदास्यामि भक्तोऽसि मम सुव्रत ।। ३६ ।।

भक्तप्रियोऽस्मि सततं तस्माद्दातुमिहागतः ।
अंबरीषस्तु तच्छ्रुत्वा हर्षगद्गदया गिरा ।। ३७ ।।

प्रोवाच परमात्मानं नारायणमनामयम् ।
त्वयि विष्णौ परानदे नित्यं मे वर्ततां मतिः ।। ३८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"मैं इन्द्र हूँ। तेरा कल्याण हो! मैं आज तुम्हें क्या (वरदान) दूँ? सर्वलोकेश्वर मैं आज तुम्हारी रक्षा करने आया हूँ" ॥ २५ ॥

ऐरावत पर बैठे हुए इन्द्र को देखकर बुद्धिमान विष्णुभक्ति-परायण अम्बरीष उसे इस प्रकार के वचन कहने लगे ॥ २६ ॥

"मैंने आपके उद्देश से तप नहीं किया है। आपका दिया हुआ मैं कुछ भी नहीं चाहता हूँ! हे इन्द्र! आप यथेच्छ गमन कीजिए ॥ २७ ॥

मेरे स्वामी नारायण हैं। हे देवाधिपति! मैं आपको संतुष्ट नहीं करता। हे इन्द्र, आप जाइए। इस आश्रम में (ठहरकर) आप मेरा समय व्यर्थ मत कीजिए" ॥ २८ ॥

तब हँसकर भगवान विष्णु ने अपना स्वरूप प्रगट कर दिया। जनार्दन ने एकाएक अपने हाथ में शार्ङ्ग, चक्र, गदा और शंख धारण कर लिये ॥ २९ ॥

विश्वात्मा विष्णु गरुड़ के ऊपर दूसरे नीलाचल के समान शोभायमान थे। चारों ओर देवगंधर्वों का समूह उनकी स्तुति कर रहा था ॥ ३० ॥

दर्शन से संतुष्ट राजा प्रणाम करके (गरुड़ध्वज) की स्तुति करने लगे— "हे लोकनाथ! मेरे स्वामी जनार्दन! आप (मुझपर) प्रसन्न होइए" ॥ ३१ ॥

हे कृष्ण! हे कृष्ण!! हे जगन्नाथ!!! सर्वलोक से नमस्कृत 'आदि' भी आप हैं और 'अनादि' भी आप हैं। आप अनन्त, पुरुष और प्रभु भी हैं ॥ ३२ ॥

आप अप्रमेय, विभु, विष्णु, गोविंद, कमललोचन, महेश्वर के अंश से उत्पन्न मध्यपुष्कर तथा आकाश में गमन करनेवाले हैं ॥ ३३ ॥

आप कव्यवाह, कपाली, हव्यवाह और प्रभंजन हैं। आप आदिदेव, क्रियानन्द तथा परमात्मा में स्थित हैं ॥ ३४ ॥

हे गोविन्द! मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे कमलनयन! मेरी रक्षा कीजिए! आपके सिवा मेरी और कोई गति नहीं है। मैं आप ही की शरण में आया हूँ ॥ ३५ ॥

भगवान विष्णु ने उस (राजा) से पूछा— "तुम कौन-सा मनोरथ रखते हो? मैं तुम्हें वह सब दूँगा। (कारण,) हे सुव्रत! तुम मेरे भक्त हो ॥ ३६ ॥

मैं हमेशा भक्तप्रिय हूँ। इसलिए मैं तुम्हें (अपना इच्छित वर) देने यहाँ आया हूँ।" यह सुनकर अम्बरीष हर्ष-गद्गद् वाणी में परमात्मा नारायण से (प्रार्थनापूर्वक) बोला— "हे विष्णु! मेरी मति अनामय हमेशा परम आनन्द-स्वरूप आप में रमा करे" ॥ ३७-३८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भवेयं त्वत्परो नित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत् ।। ३९ ।।

यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पिष्यामि सुरोत्तमान् ।
वैष्णवान्पालयिष्यामि हनिष्यामि च शात्रवान् ।। ४० ।।

एवमुक्तस्य भगवान्प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ।
एवमस्तु तवेच्छा वै चक्रमेतत्सुदर्शनम् ।। ४१ ।।

पुरारुद्रप्रभावेण लब्धं वै दुर्लभं मया ।
ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा ।। ४२ ।।

निहनिष्यति ते दुखःमित्युक्त्वांतरधीयत ।
ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणं प्रभुम् ।। ४३ ।।

प्रविश्य नगरीं दिव्यामयोध्यां पर्यपालयत् ।
ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान्स्वेस्वे कर्मण्ययोजयत् ।। ४४ ।।

नारायणपरो नित्यं विष्णुभक्तानकल्मषान् ।
पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः ।। ४५ ।।

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतानि च ।
पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम् ।। ४६ ।।

गृहे गृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहे गृहे ।
नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च ।। ४७ ।।

अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यं प्रशासति ।
नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता ।। ४८ ।।

रोगहीना प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिता ।
अम्बरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् ।। ४९ ।।

स वै महात्मा सततं च रक्षितः सुदर्शनेनातिसुदर्शनेन ।
शुभां समुद्रावधि संततां महीं सुपालयामास महीमहेन्द्र ।। ५० ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्‌भुतोत्तरकाण्डे
आदिकाव्ये अम्बरीषवरप्रदानं नाम
द्वितीयः सर्गः ।। २ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"मैं हमेशा मनसा-वाचा-कर्मणा आपका सेवापरायण रहूँ। सारे जगत को विष्णु-भक्त बनाकर मैं पृथ्वी का पालन करूँगा" ।। ३९ ।।

"यज्ञ, होम एवं अर्चन द्वारा मैं (श्रेष्ठ) देवताओं को तृप्त करूँगा। मैं वैष्णवों का पालन करूँगा तथा शत्रु के अनुयायियों का नाश करूँगा" ।। ४० ।।

इस प्रकार कहे जाने पर भगवान ने नृपश्रेष्ठ को प्रत्युत्तर दिया (कि), 'अस्तु' ! तुम्हारी इच्छा परिपूर्ण हो ! यह सुदर्शन-चक्र, जो दुर्लभ है, उसे मैंने बहुत पहले रुद्र के प्रभाव से प्राप्त किया था। यह ऋषियों के शाप, शत्रु, रोग आदि से संबंधित तुम्हारे सारे दुःख दूर करेगा। ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये तब प्रसन्न होकर भगवान नारायण को प्रणाम करके राजा (ने) दिव्य अयोध्या नगरी में प्रवेश किया और (अपनी) प्रजा का पालन करने लगा। उसने ब्राह्मणादि (चारों) वर्णों (के लोगों) को अपने-अपने कर्तव्य में नियुक्त किया ।। ४१-४४ ।।

राजा अम्बरीष नित्य नारायण-परायण रहकर पापरहित विष्णुभक्तों का विशेष रूप से आनंदपूर्वक पालन करने लगा ।। ४५ ।।

सौ अश्वमेध-यज्ञ और सौ वाजपेय-यज्ञ करके सागर से घिरी हुई पृथ्वी का राजा पालन करने लगा ।। ४६ ।।

उस (राजा) के राज्यकाल में घर-घर में नारायण का निवास था और घर-घर में वेदघोष होता था। घर-घर में श्रीविष्णु का नामोच्चारण एवं यज्ञ का घोष होता था ।। ४७ ।।

उस नृपश्रेष्ठ के शासन-काल में भूमि अन्नरहित, तृणरहित या अकाल आदि से पीड़ित नहीं थी ।। ४८ ।।

प्रजा नित्य रोगहीन एवं सारे उपद्रवों से मुक्त थी। (इस प्रकार) महातेजस्वी अम्बरीष पृथ्वी का पालन करते थे ।। ४९ ।।

अतिशय शोभायमान सुदर्शनचक्र से सुरक्षित (वह) महात्मा (अम्बरीष) पृथ्वी के इन्द्र के समान समुद्रपर्यन्त फैली हुई संपूर्ण पृथ्वी का भली-भाँति पालन करने लगे ।। ५० ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-
काण्ड में अम्बरीष-वर-प्रदान नाम
द्वितीय सर्ग समाप्त ।। २ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तृतीयः सर्गः

तस्यैवं वर्तमानस्य कन्या कमललोचना ।
श्रीमतीनाम विख्याता सर्वलक्षणशोभिता ।। १ ।।

तस्मिन्काले मुनिः श्रीमान्नारदोऽभ्यागतो गृहम् ।
अम्बरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महाद्युतिः ।। २ ।।

तावुभावागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि ।
अम्बरीषो महातेजाः पूजयामास तौ नृपः ।। ३ ।।

कन्यां तु प्रेक्ष्य भगवान्नारदः प्राह विस्मितः ।
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ।। ४ ।।

ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षणशोभिता ।
निशम्य वचनं तस्य राजा प्राह कृतांजलिः ।। ५ ।।

दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः ।
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभा ।। ६ ।।

इत्युक्तो मुनि शार्दूलस्तामैच्छन्नारदो द्विजः ।
पर्वतोऽपि मुनिस्तां वै चकमे ऋषिसत्तमः ।। ७ ।।

अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ।
रहस्याहूय धर्मात्मा मम देहि सुतामिमाम् ।। ८ ।।

पर्वतोऽपि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुम् ।
तावुभौ प्राह धर्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दितः ।। ९ ।।

उभौ भवंतौ कन्यां मे प्रार्थयानौ कथं त्वहम् ।
करिष्यामि महाप्राज्ञौ शृणु नारद मे वचः ।। १० ।।

त्वं च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो ।
कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेच्छुभा ।। ११ ।।

तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्तिरस्ति मे ।
तथेत्युक्त्वा तु तौ विप्रौ श्व आयास्याव एव हि ।। १२ ।।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतमानसौ ।
वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानवतां वरौ ।। १३ ।।

विष्णुलोकं ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः ।
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।। १४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तृतीय सर्ग

राजसभा में नारद तथा पर्वत का आगमन

इस प्रकार रहनेवाले उस (राजा) की कमल के समान लोचनवाली सर्व लक्षणों से शोभित 'श्रीमती' नाम से विख्यात कन्या (थी) ।। १ ।।

उस समय श्रीमान् नारदमुनि तथा महातेजस्वी (ऋषि) पर्वत राजा अम्बरीष के घर आये ।। २ ।।

उन दोनों को आये हुए देखकर राजा अम्बरीष ने विधिपूर्वक प्रणाम करके (उन) दोनों का पूजन किया ।। ३ ।।

(उस) कन्या को देखकर विस्मित होकर भगवान नारद ने कहा— "हे राजन् ! देवता की कन्या के समान यह महाभाग्यशाली कन्या कौन है ?" ।। ४ ।।

"हे धर्म धारण करनेवालों में श्रेष्ठ ! सर्व लक्षणों से शोभित (यह कौन है ?), बताओ !" उनके वचन सुनकर प्रणामपूर्वक राजा बोले—।।५।।

"हे विभो ! यह 'श्रीमती' नाम की मेरी कन्या है । प्रदान के समय को प्राप्त करनेवाली यह शुभा (कन्या) अपने योग्य वर खोजती है" ।। ६ ।।

(राजा द्वारा) इस प्रकार कहे जाने पर मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मण नारदजी ने उस (कन्या) की इच्छा की और ऋषिश्रेष्ठ पर्वतमुनि ने भी उस (को प्राप्त करने) की कामना की ।। ७ ।।

राजा को एकान्त में बुलाकर अनुज्ञा के स्वर में महात्मा नारदजी बोले— "(आपकी) यह पुत्री मुझे दीजिए" ।। ८ ।।

पर्वत ने भी राजा को एकान्त में (मिलकर) वही कहा । तब भय से व्याकुल उस धर्मात्मा (राजा) ने प्रणाम करके दोनों को कहा—।। ९ ।।

"आप दोनों मेरी इस कन्या (को प्राप्त करने) के लिए प्रार्थना करते हैं, तो हे महाप्राज्ञ ! मैं क्या करूँ ? हे नारद ! मेरे वचन सुनिए ।।१०।।

हे पर्वत ! (हे) प्रभु ! मैं जो वचन कहता हूँ, वह आप भी सुनिए ! यदि यह शुभा कन्या आप दोनों में से जिन (किसी एक) का वरण करेगी ।। ११ ।।

उसे मैं अपनी कन्या प्रदान करूँगा । अन्यथा (उसे देने की) मेरी शक्ति नहीं है ।" 'अच्छा', (ऐसा) कहकर वे दोनों विप्र (बोले—) 'कल आयेंगे' ।। १२ ।।

ऐसा कहकर (दोनों मुनिश्रेष्ठ) प्रसन्न मन से चले गये । (वे) दोनों नित्य वासुदेव-परायण और ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे ।। १३ ।।

तब मुनिपुंगव विष्णुलोक में जाकर नारायण को प्रणाम करके यह वचन बोले— ।। १४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृत्तान्तं सर्वमाख्याय नाथ नारायणाव्यय ।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवनेश्वर ।। १५ ।।
ततः प्रहस्य गोविंदः सर्वात्मा कर्मठं मुनिम् ।
ब्रूहीत्याह स विश्वात्मा मुनिराह च केशवम् ।। १६ ।।
त्वदीयो नृपतिः श्रीमानंबरीषो महामतिः ।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः ।। १७ ।।
परिणेतुमहं तां वा इच्छामि वचनं शृणु ।
पर्वतोऽयं मुनिः श्रीमांस्तव भृत्यस्तपोनिधिः ।। १८ ।।
तामैच्छत्सोऽपि भगवंस्तमाह च जनाधिपः ।
अंबरीषो महातेजाः कन्येयं युवयोर्वरम् ।। १९ ।।
लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम् ।
इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाप्यहं ततः ।। २० ।।
आगमिष्यामि ते राजन् श्वः प्रभाते गृहं प्रति ।
आगतोऽहं जगन्नाथ कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ।। २१ ।।
वानराननवद्भाति पर्वतस्य मुखं यथा ।
तथा कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम् ।। २२ ।।
श्रीमती तु तदा पश्येन्नान्यः पश्येत्तथाविधम् ।
तथेत्युक्त्वा स गोविंदः प्रहस्य मधुसूदनः ।। २३ ।।
त्वयोक्तं तत्करिष्यामि गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।। २४ ।।
मन्यमानः कृतात्मानमयोध्यां वै जगाम सः ।
गते मुनिवरे तस्मिन्पर्वतोऽपि महामुनिः ।। २५ ।।
प्रणम्य माधवं हृष्टो रहस्येनमुवाच ह ।
वृत्तांतं च निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पतेः ।। २६ ।।
गोलांगुलमुखम् यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु ।
श्रीमती तु तथा पश्येन्नान्यः पश्येत्तथाविधम् ।। २७ ।।
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै ।
गच्छ शीघ्रमयोध्यां त्वं मा वादीर्नारदस्य वै ।। २८ ।।
त्वया मे मंत्रितं यच्च तथेत्युक्त्वा जगाम सः ।
ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा ।। २९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(प्रथम सारा वृत्तान्त सुनाकर) "हे नाथ ! हे नारायण ! हे अव्यय ! मैं आपसे एकान्त में (कुछ) कहूँगा । हे भुवनेश्वर ! आपको प्रणाम हो !" ॥ १५ ॥

तब सर्वात्मा विश्वात्मा गोविंद हँसकर उन कर्मपरायण मुनि से बोले—"बोलिये ।" तब मुनि ने केशव से कहा— ॥ १६ ॥

"महाबुद्धिशाली राजा श्रीमान् अम्बरीष आपका एक भक्त है । उसके श्रीमती नाम की विशाल नेत्रोंवाली (एक) कन्या है ॥ १७ ॥

उससे विवाह करने की मेरी इच्छा है । अतः मेरा वचन सुनिए ! मुनि श्रीमान् पर्वत (ये भी) आपके सेवक हैं और बड़े तपस्वी हैं" ॥ १८ ॥

वे भी उसकी कामना करते हैं और महातेजस्वी राजा अम्बरीष ने कहा है— "यदि यह कन्या आप दोनों में से किसी एक को अधिक सौंदर्ययुक्त जानकर वरण करेगी, उसे मैं उसका प्रदान करूँगा ।" राजा ने हम दोनों से इस प्रकार कहा है । तब मैंने भी "बहुत अच्छा", ऐसा कहकर (बताया है कि) "हे राजन् ! कल प्रातःकाल मैं तुम्हारे घर आऊँगा ।" ऐसा कहा है । (और) हे जगन्नाथ ! (मैं) आपके पास आया हूँ ! आपको मेरा प्रिय करना चाहिए ॥ १९-२१ ॥

"आप यदि मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो हे जगन्नाथ ! (आप ऐसा कीजिए कि) पर्वत का मुख वानर के समान हो जाय ॥ २२ ॥

और (वह कन्या) 'श्रीमती' ही (पर्वत के) उस प्रकार के रूप को देखे, और कोई न देखे ।" "ठीक है", ऐसा कहकर (मुस्कुराते हुए) मधुसूदन गोविंद (बोले) ॥ २३ ॥

"तुम्हारे कहे अनुसार मैं करूँगा । हे सौम्य ! सुखपूर्वक जाइए ।" इस प्रकार (के वचन) सुनकर मुनि ने प्रसन्न होकर जनार्दन को प्रणाम किया (और) अपने को कृतार्थ मानकर अयोध्या गये । उनके चले जाने के बाद महामुनि पर्वत जगत्पति माधव को प्रसन्न मन से प्रणाम करके एकान्त में (मिले और) नारद का वृत्तान्त बताया । फिर बोले (कि आप ऐसी युक्ति कीजिए जिससे) नारद का मुख गोलांगूल (बन्दर) के समान हो जाय, परन्तु केवल श्रीमती ही उस प्रकार का (मुख) देखे, दूसरा कोई नहीं ॥ २४-२७ ॥

यह सुन भगवान विष्णु बोले— "तुम्हारे कहे अनुसार मैं करूँगा । तुम शीघ्र अयोध्या जाओ, परन्तु नारद से मत कहना ॥ २८ ॥

कि मेरे साथ तुम्हारी (यह) मंत्रणा हुई है ।" (यह सुनकर) "ठीक है" —ऐसा कहकर मुनि चले गये । दोनों मुनिवरों को आये हुए जानकर राजा ने ॥ २९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मङ्गलैर्विविधैर्भद्रैरयोध्यां ध्वजमालिनीम् ।
मंडयामास लाजैश्च पुष्पैश्चैव समन्ततः ।। ३० ।।

अभिषिक्तगृहद्वारां सिक्तांगणमहापथाम् ।
दिव्यगंधरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः ।। ३१ ।।

कृत्वा च नगरीं राजा मंडयामास तां सभाम् ।
दिव्यगंधैस्तथा धूपै रत्नैश्च विविधैस्तथा ।। ३२ ।।

अलंकृतां मणिस्तंभैर्नानामाल्योपशोभितैः ।
पराध्र्यास्तरणोपेतैर्दिव्यभद्रासनैर्वृताम् ।। ३३ ।।

नानाजनसमावेशैर्नरेन्द्रैरभिसंवृताम् ।
कृत्वा नृपेंद्रस्तां कन्यामादाय प्रविवेश ह ।। ३४ ।।

सर्वाभरणसंपन्ना श्रीरिवायतलोचना ।
करसंमितमध्यांगी पंचस्निग्धा शुभानना ।
स्त्रीभिः परिवृता दिव्या श्रीमती संस्थिता सती ।। ३५ ।।

सभा तु सा भूमिपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासना माल्यवती सुगंधा तामन्वयुस्ते सुरराजवर्याः ।। ३६ ।।

अथाययौ ब्रह्मवरात्मजो महांस्त्रैविद्यवृद्धो भगवान्महात्मा ।
सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो महामुनिर्नारद आजगाम ।। ३७ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकांडे
आदिकाव्ये नारदपर्वतसभाप्रवेशो नाम
तृतीयः सर्गः ।। ३ ।।

चतुर्थः सर्गः

तावागतौ समीक्ष्याथ राजा संभ्रांतमानसः ।
दिव्यमासनमादिश्य पूजयामास तावुभौ ।। १ ।।

उभौ देवऋषी दिव्यौ नित्यज्ञानवतां वरौ ।
समासीनौ महात्मानौ कन्यार्थे मुनिसत्तमौ ।। २ ।।

तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम् ।
स्थितां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम् ।। ३ ।।

ध्वजाओं की माला वाली अयोध्या नगरी को अनेक प्रकार के शुभ मंगल (द्रव्यों) से तथा लाज और पुष्पों से चारों ओर से सजाया ।। ३० ।।

घर के दरवाज़ों को अभिषिक्त किया गया । घर-घर के आँगन एवं राजमार्ग (में) सुगंधित जल से छिड़काव किया गया । नगरी को दिव्य गन्ध और रस से युक्त तथा दिव्य धूपों से धूपित किया गया ।। ३१ ।।

(इस प्रकार) नगरी को सजाकर राजा ने उस सभा को भी सुशोभित किया । दिव्य गंध, धूप तथा विविध प्रकार के रत्नों से तथा नाना प्रकार की मालाओं से शोभित मणिमय स्तंभों से (उसे) अलंकृत किया । महामूल्य बिछौनों से संपन्न, दिव्य भद्रासनों से युक्त, अनेक प्रकार के लोग क़ालीनों एवं राजाओं से ठसाठस भरी हुई उस राजसभा को सजाकर राजा ने कन्या-सहित (उसमें) प्रवेश किया ।। ३२-३४ ।।

सर्व आभूषणों से सुसज्ज, लक्ष्मी के समान दीर्घ लोचन वाली, मुट्ठी भर कमर वाली, पाँच चिकने अंगों वाली, शुभवदन वाली, स्त्रियों से घिरी हुई दिव्या सती 'श्रीमती' वहाँ पधारीं ।। ३५ ।।

राजा की वह समृद्ध सभा अनेक मणिरत्नों से शोभायमान थी। वह (हाथ में) सुगंधी माला धारण किये हुए (उस राजसभा में) आसन पर बैठी हुई थी । (वहाँ उपस्थित) देवराज के समान श्रेष्ठ सब (राजा लोग) उसका अनुसरण करने लगे ।। ३६ ।।

उस समय ब्रह्मवरात्मज, महान् त्रिविद्यावृद्ध, ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ, भगवान् महात्मा महामुनि नारद पर्वत के साथ (वहाँ पधारे) ।। ३७ ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-काण्ड में 'राजसभा में नारद तथा पर्वत का आगमन' नाम तृतीय सर्ग समाप्त ।। ३ ।।

चतुर्थ सर्ग

रामचन्द्र के जन्म-धारण का कारण

उन दोनों को आये हुए देखकर राजा का चित्त संभ्रान्त हो गया । (राजा ने) उन्हें दिव्य आसन देकर उन दोनों की पूजा की ।। १ ।।

वे दोनों देवर्षि दिव्य थे और ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे । दोनों मुनिवर्य कन्या के कारण (आसन पर) बैठे ।। २ ।।

उन दोनों को प्रथम प्रणाम करके राजा (अपनी) कमलदल के समान लोचन वाली, शुभा, यशस्विनी कन्या 'श्रीमती' से कहने लगे— ।।३।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनयोर्यं वरं भद्रे ! मनसा त्वमिहेच्छसि ।
तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथाविधि ॥ ४ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या स्त्रीभिः परिवृता तदा ।
मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना ॥ ५ ॥

तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ॥ ६ ॥

अनयोरेकमुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे ।
सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तु वानराननौ ॥ ७ ॥

मुनिश्रेष्ठौ न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा ।
अनयोर्मध्यतस्त्वेकं वरं षोडशवार्षिकम् ॥ ८ ॥

सर्वाभरणसंयुक्तमतसीपुष्पसंनिभम् ।
दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुंगोरःस्थलमुत्तमम् ॥ ९ ॥

चामीकरान्धकरणंपटयुग्मकशोभितम् ।
विभक्तत्रिवलीयुक्तनाभि व्यक्तकृशोदरम् ॥ १० ॥

हिरण्याभरणोपेतं सुरंगकनखं शुभम् ।
पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम् ॥ ११ ॥

पद्मांघ्रि पद्महृदयं पद्मनाभं श्रियावृतम् ।
दंतपंक्तिभिरत्यर्थं कुन्दकुड्मलसन्निभम् ॥ १२ ॥

हसन्तं मां समालोक्य दक्षिणं च प्रसार्य वै ।
पाणिं स्थितमिमं छन्नं पश्यामि शुभमूर्धजम् ॥ १३ ॥

एवमुक्ते मुनिः प्राहः नारदः संशयं गतः ।
कियंतो बाहवस्तस्य कन्ये वद यथातथम् ॥ १४ ॥

बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या सुविस्मिता ।
प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्य वक्षःस्थले शुभे ॥ १५ ॥

किंच पश्यसि मे ब्रूहि करे किं धारयत्यपि ।
कन्या तमाह मालां वै चंचद्रूपामनुत्तमाम् ॥ १६ ॥

वक्षःस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकौ ।
एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ ॥ १७ ॥

मनसा चिंतयंतौ तौ मायेयं कस्यचिद्भवेत् ।
मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दनः ॥ १८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"हे भद्रे ! इन दोनों में से जिस वर की तुम मन से इच्छा करती हो, उसी को यथाविधि प्रणाम करके यह (वर) माला पहनाओ" ॥ ४ ॥

इस प्रकार के वचन जिसे कहे गये उस कन्या को उस समय स्त्रियों ने घेर लिया। तब वह शुभलोचना दिव्य सुवर्ण की माला लेकर खड़ी हुई। राजा ने उसे कहा— "हे वत्से ! तू क्या करेगी ?" ॥ ५-६ ॥

"हे शुभे ! इन दोनों में से एक को तू (वर) माला अर्पण कर।" (तब) वह त्रस्त होकर बोली— "ये दोनों तो बंदर के मुख वाले हैं" ॥ ७ ॥

"मैं मुनिश्रेष्ठ नारद तथा पर्वत को नहीं देख पाती हूँ। किन्तु इन दोनों के बीच एक सोलह वर्ष के वर को देख रही हूँ, जो (अलसी के पुष्प के समान) सारे आभूषणों से युक्त (है, जिसके) बाहु दीर्घ हैं, जो विशाल और उभरे हुए वक्षःस्थल वाले, ऊँचे और पुष्ट उरःस्थल वाले, सुवर्ण के समान कान्ति वाले दो वस्त्रों से सुशोभित, विभक्त त्रिवली से युक्त नाभि वाले, स्पष्ट रूप से कृश उदर वाले, सुवर्णालंकारो से सुशोभित सुन्दर रंगीन नख वाले, कमल के समान हाथ वाले, कमल-वदन, कमलनयन, कमल के-से चरण वाले, कमलहृदय, पद्मनाभ, शोभासंपन्न, कुन्द पुष्प की कली के समान दंतपंक्ति से अतिशय रमणीय दिख रहे हैं" ॥ ८-१२ ॥

"मुझे देखकर हँसते हुए, दाहिने हाथ को फैलाकर खड़े हुए, सुंदर बाल वाले छिपे हुए (वर) को मैं देख रही हूँ" ॥ १३ ॥

इस प्रकार कन्या के द्वारा निवेदन किये जाने पर द्विधाग्रस्त (होकर) नारद मुनि बोले— "हे कन्या ! सच बताओ, उसकी भुजाएँ कितनी हैं ?" ॥ १४ ॥

अत्यन्त विस्मित होकर कन्या बोली— "मैं दो भुजाएँ देखती हूँ।" तब पर्वत ने उससे पूछा— "हे शुभे ! (उसके) वक्ष.स्थल पर तुम क्या देख रही हो ? उसने अपने हाथ में क्या धारण किया है ? मुझे बताओ।" कन्या बोली— "(मैं) उसके वक्षःस्थल पर चमकती हुई सर्वश्रेष्ठ माला देख रही हूँ (तथा उसके), हाथ में धनुष और बाण हैं।" जब ऐसा वर्णन किया गया, तब वे दोनों मुनिश्रेष्ठ मन ही मन सोचने लगे, "यह किसी की माया होगी। यह मायावी चोर अवश्य श्रीकृष्ण स्वयं ही होंगे" ॥ १५-१८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगतो नान्यथा कुर्यात्कथं मेऽन्यो मुखं त्विदम् ।
गोलांगूलीयमित्येवं चिंतयामास नारदः ।। १९ ।।
पर्वतोऽपि तथैवैतद्वानरत्वं कथं मया ।
प्राप्तमित्येव सहसा चिंतामापेदिवांस्तथा ।। २० ।।
ततो राजा प्रणम्यासौ नारदं पर्वतं तथा ।
भवद्भ्यां किमिदं भद्रौ कृतं बुद्धिविमोहनम् ।। २१ ।।
स्वस्थौ भवंतौ तिष्ठेतां यदि कन्यार्थमुद्यतौ ।
एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्बणौ ।। २२ ।।
त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथंचन ।
आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव भामिनी ।। २३ ।।
ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्य च देवताम् ।
पित्रा नियुक्ता सहसा मुनिशापभयाद् द्विज ।। २४ ।।
मालामादाय तिष्ठन्ती तयोर्मध्ये समाहिता ।
पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा माल्यं तस्मै ददौ हि सा ।। २५ ।।
अनंतरं च सा कन्या दृष्टा न मनुजैः पुरः ।
ततो नादः समभवत्किमेतदिति विस्मयात् ।। २६ ।।
तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः ।
पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वरांगना ।। २७ ।।
श्रीमतीयं समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम् ।
तावुभौ मुनिशार्दूलौ धिक्त्वामित्येव दुःखितौ ।। २८ ।।
वासुदेवं प्रति तदा जग्मतुर्भवनं हरेः ।
तावागतौ समीक्ष्याह श्रीमतीं भगवान्हरिः ।। २९ ।।
मुनिश्रेष्ठौ समायातौ गूढस्वात्मानमत्र वै ।
तथेत्युक्ता च सा देवी प्रहसंती चकार ह ।। ३० ।।
नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम् ।
किमिदं कृतवानद्य मम त्वं पर्वतस्य च ।। ३१ ।।
त्वमेव नूनं गोविंद कन्यां तां हृतवानसि ।
तच्छ्रुत्वा पुरुषो विष्णुः पिधाय श्रोत्रमच्युतः ।। ३२ ।।
पाणिभ्यां प्राह भगवन्भवता किमुदीरितम् ।
कामवादो न भावोऽयं मुनिवृत्तेरहो किल ।। ३३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारदजी सोचने लगे— "वही आये हुए हैं ! अन्यथा, दूसरा कोई मेरे मुख को बंदर-सा कैसे बना सकता है ?" ॥ १९ ॥

पर्वत भी उसी प्रकार चिन्ता करने लगे कि "सहसा मुझे वानरत्व कैसे प्राप्त हो गया ?" ॥ २० ॥

तब वह राजा प्रणाम करके नारद और पर्वत से बोला— "हे भद्र ! आप दोनों की बुद्धि में यह मोह कैसे उदित हो गया ? ॥ २१ ॥

यदि कन्या (को वरण करने) के लिए आप उत्सुक हैं, तो आप दोनों स्वस्थ खड़े रहिए।" यह सुनकर दोनों मुनिश्रेष्ठ राजा से कहने लगे— ॥ २२ ॥

"तुम्हीं ने मोह किया है। हम दोनों ने यहाँ किसी प्रकार का मोह नहीं किया है। यह तेरी कन्या हम दोनों में से (किसी) एक को वरण करे" ॥ २३ ॥

तब शाप के डर से वह कन्या पिता द्वारा नियुक्त की गई देवता को प्रणाम करके हे द्विज ! सहसा माला लेकर दोनों के बीच सावधान होकर खड़ी रही (और) पहले के समान पुनः उसी पुरुष को देखकर उसी के गले में उसने वरमाला अर्पण कर दी ॥ २४-२५ ॥

बाद में मनुष्यों ने उस कन्या को वहाँ न देखा, तब (वहाँ) आश्चर्य से 'यह क्या है', —'यह क्या हो गया' —ऐसा शोर मच गया ॥ २६ ॥

उसे लेकर पुरुषोत्तम विष्णु अपने स्थान में गये। प्राचीन काल में उस भगवान की कृपाप्राप्ति के कारण अहर्निश तप करने से इस सुन्दर स्त्री 'श्रीमती' का जन्म हुआ था और इस प्रकार अब वह हरि के पास गई। वे दोनों मुनिश्रेष्ठ परस्पर वार्त्तालाप करते हुए कहने लगे कि 'तुमको धिक्कार हो' और वे अत्यन्त दुःखी हुए ॥ २७-२८ ॥

तब फिर से वे दोनों वासुदेव के भवन को गये। उन दोनों को आये हुए देखकर भगवान विष्णु ने 'श्रीमती' से कहा— ॥ २९ ॥

"दोनों मुनिवर्य आ रहे हैं। तू अपने-आप को छिपा ले।" "अच्छा" कहकर हँसती हुई उस देवी ने वैसा किया ॥ ३० ॥

पहले नारदजी ने प्रणाम करके दामोदर विष्णु से कहा— "आपने आज मेरी और पर्वत की यह क्या दुर्दशा कर दी ?" ॥ ३१ ॥

"हे गोविंद ! आप ही ने अवश्य उस कन्या का हरण किया है।" यह सुनकर पुरुषोत्तम अच्युत विष्णु अपने दोनों कानों पर दोनों हाथ रखते हुए बोले— "हे भगवान ! आप यह कसी बात कह रहे हैं ? यह क्या आपका कामवाद नहीं है ? क्या यही आपकी मुनिवृत्ति है ?" ॥३२-३३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः ।
कर्णमूले मम कथं गोलांगूलमुखं त्विति ।। ३४ ।।

तदाकर्ण्य महाबुद्धिर्देवो नारायणो हरिः ।
कर्णमूले तमाहेदं वानरास्यं कृतं मया ।। ३५ ।।

पर्वतस्य तथा विप्र गोलांगूलमुखम् तव ।
यथा भवांस्तथा सोऽपि प्रार्थयामास निर्जने ।। ३६ ।।

मामेव भक्तिवशगस्तथास्म्यकरवं मुने ।
न स्वेच्छया कृतं तद्वां प्रियार्थं नान्यथात्विति ।। ३७ ।।

याचते यच्च यश्चैव तच्च तस्य ददाम्यहम् ।
न दोषोऽत्र गुणो वापि युवयोर्मम वा द्विज ।। ३८ ।।

पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः ।
शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दासोदरो वचः ।। ३९ ।।

प्रियं भवतोः कृतवान्सत्येनायुधमालभे ।
नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः ।। ४० ।।

धनुष्मान्द्विभुजः को नु तां हृत्वा गतवान्किल ।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह तौ मुनिसत्तमौ ।। ४१ ।।

मायाविनौ महात्मानौ ! बहवः सन्ति सत्तमौ ! ।
तत्र सा श्रीमती देवी हृता केनापि सुव्रतौ ।। ४२ ।।

चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरिति स्थितिः ।
तस्मान्नाहमतथ्यो वै भवद्भ्यां विदितं हि तत् ।। ४३ ।।

इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीतमानसौ ।
कोऽत्र दोषस्तव विभो नारायण जगत्पते ! ।। ४४ ।।

दौरात्म्यं तु नृपस्यैव मायां हि कृतवानसौ ।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्मान्मुनी नारदपर्वतौ ।। ४५ ।।

अंबरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत् ।
नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ ।। ४६ ।।

आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि ।
मायायोगेन तस्मात्त्वां तमोऽज्ञाभिभविष्यति ।। ४७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह वचन सुन नारदजी ने धीरे से वासुदेव से कान में पूछा— "मेरा गोलांगूल-मुख कैसे हो गया ?" ॥ ३४ ॥

यह सुनकर अतिशय बुद्धिमान् भगवान नारायण ने उनसे कान में कहा— "मैंने ही तुम्हें वानर-मुख कर दिया था ॥ ३५ ॥

"हे विप्र ! तुम्हारे (ही) समान पर्वत का भी गोलांगूल मुख (मैंने ही कर दिया था), क्योंकि तुम्हारी तरह उन्होंने भी एकान्त में मुझसे (वैसी ही) प्रार्थना की थी ॥ ३६ ॥

हे मुने ! (तुम दोनों की) भक्ति के वश होने के कारण मैंने वैसा किया, अपनी इच्छा से नहीं किया। तुम दोनों की प्रीति के कारण किया, अन्यथा नहीं ॥ ३७ ॥

जो व्यक्ति जो कुछ माँगता है, उसे मैं वह देता हूँ। हे द्विज ! इसमें मेरा या तुम दोनों का कोई गुण या दोष नहीं है" ॥ ३८ ॥

पर्वत ने भी वैसा ही पूछा और कहा। भगवान ने भी उसे वही उत्तर दिया। वे दोनों जब सुन रहे थे, तब दामोदर ने ये वचन कहे—॥ ३९ ॥

"मैं आयुध की सौगन्द खाकर सचसच कहता हूँ, मैंने आप दोनों का प्रिय किया है।" (तब) धर्मात्मा नारदजी बोले, "हम दोनों के बीच में स्थित ॥ ४० ॥

दो भुजा वाला (वह) धनुषधारी कौन था जो उस (कन्या) को हरण करके ले गया ?" यह सुनकर वासुदेव उन दो मुनिश्रेष्ठों से (इस प्रकार) कहने लगे— ॥ ४१ ॥

हे समर्थ सत्तम महात्माओ ! (इस) संसार में बहुत-से माया (का जाल फैलाने) वाले (लोग) हैं। हे सुव्रत ! उनमें से किसी ने श्रीमती का हरण किया होगा ॥ ४२ ॥

मैं तो सर्वदा चक्रपाणि और चार भुजा वाला हूँ। यह स्थिति है। अतः मैं झूठ नहीं कहता, यह आपको तो विदित है (ही) ॥ ४३ ॥

इस प्रकार कहने पर उन दोनों ने प्रणाम करके प्रसन्न मन से उनसे कहा— "हे विभु ! नारायण ! जगत्पति ! इसमें आपका क्या दोष है ?" ॥४४॥

"यह तो राजा की ही दुर्जनता है। उसने अवश्य माया की है" —ऐसा कहकर नारद और पर्वत दोनों मुनि वहाँ से चले गये ॥ ४५ ॥

(वहाँ से सीधे वे दोनों राजा अम्बरीष के पास गये।) उन्होंने अम्बरीष के पास जाकर उसे शाप दिया। (वे बोले—) "हम दोनों— नारद और पर्वत यहाँ (तुम्हारे पास) आये थे ॥ ४६ ॥

किन्तु बाद में (कपटपूर्वक) तुमने मायायोग से दूसरे (किसी) को बुलाकर उसे (अपनी) कन्या प्रदान कर दी। अतः तुम घोर अंधकार-रूप अज्ञान के वश में आ जाओगे ॥ ४७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेन नात्मानमत्यर्थं यथावत्त्वं हि वेत्स्यसि ।
एवं शापे प्रवृत्ते तु तमोराशिरथोत्थितः ।। ४८ ।।

नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोः प्रादुरभूत्क्षणात् ।
चक्रवित्रासितं घोरं तावुभावभ्यगात्तमः ।। ४९ ।।

ततः संत्रस्तसर्वांगौ धावमानौ महामुनी ।
पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं च दुर्मदम् ।। ५० ।।

कन्यासिद्धिरहो प्राप्ता आवयोरिति वेगितौ ।
लोकालोकांतमनिशं धावमानौ तमोऽर्दितौ ।। ५१ ।।

त्राहि त्राहीति गोविंद भाषमाणौ भयार्दितौ ।
विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण जगत्पते ।। ५२ ।।

वासुदेव हृषीकेश पद्मनाभ जनार्दन ।
त्राह्यावां पुण्डरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम ।। ५३ ।।

इत्यूचतुर्वासुदेवं मुनी नारदपर्वतौ ।
ततो नारायणोऽचिंत्यः श्रीमाञ्छ्रीवत्सलांछनः ।। ५४ ।।

निवार्य चक्रं ध्वांतं च भक्तानुग्रहकाम्यया ।
अंबरीषश्च मद्भक्तस्तथेमौ मुनिसत्तमौ ।। ५५ ।।

अनयोर्नृपस्य च तथा हितं कार्यं मया पुनः ।
आहूय तौ ततः श्रीमान्गिरा प्रह्लादयन्हरिः ।। ५६ ।।

उवाच भगवान्विष्णुः श्रूयतामिति मे वचः ।
क्षमेतां मुनिशार्दूलौ भक्तसंरक्षणाय मे ।। ५७ ।।

अपराद्धं च चक्रेण क्षमाशीला हि साधवः ।
ततस्तौ मुनिशार्दूलौ मायां तस्यावबुध्य च ।। ५८ ।।

ददतुश्च ततः शापं विष्णुमुद्दिश्य कोपनौ ।
श्रीमतीहरणं विष्णो यत्कृतं छद्मना त्वया ।। ५९ ।।

यया मूर्त्या तथैव त्वं जायेथा मधुसूदन ।
अम्बरीषस्यान्ववाये राज्ञो दशरथस्य हि ।। ६० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे तुम अपनी आत्मा को यथार्थ रूप में नहीं जान सकोगे।" इस प्रकार शाप के प्रवृत्त होने पर घोर तमोराशि का आविर्भाव हो गया ॥ ४८ ॥

तब क्षण मात्र में राजा की ओर विष्णु का चक्र प्रगट (होकर गतिमान) हुआ। चक्र से वित्रासित होकर तब वह घोर अंधकार उन दोनों की ओर बढ़ा ॥ ४९ ॥

तब वे दोनों महामुनि (उससे व्यथित और त्रस्त होने से) सारे अंगों से व्याकुल (होकर) दौड़ने लगे। (अपने पीछे-) पीछे चक्र को तथा उस दुर्मद तमोराशि को देखकर (बोले—) ॥ ५० ॥

"अहो! (क्या) हमें कन्या की यह सिद्धि प्राप्त हुई है?" (इस प्रकार बोलकर वे दोनों) लोकालोक पर्वत की ओर निरन्तर वेगपूर्वक दौड़ते हुए, अंधकार से पीड़ित होकर (चिल्लाने लगे—) ॥ ५१ ॥

"हे गोविन्द! बचाओ, बचाओ!" इस प्रकार बोलते हुए भय से (ग्रस्त और) व्यथित (वे) दोनों विष्णुलोक में जाकर (इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—) "हे नारायण! (हे) जगत्पते! ॥ ५२ ॥

वासुदेव, हृषीकेश, पद्मनाभ, जनार्दन, पुण्डरीकाक्ष! हम दोनों की रक्षा कीजिए! हे पुरुषोत्तम! आप हमारे स्वामी हैं" ॥ ५३ ॥

इस प्रकार नारद और पर्वत दोनों मुनि वासुदेव से प्रार्थना करने लगे। तब अचिन्त्य श्रीमान् श्रीवत्स के चिह्न को धारण करनेवाले नारायण ॥ ५४ ॥

भक्त पर अनुग्रह करने की इच्छा से चक्र तथा अंधकार का निवारण करके (मन में) बोले— "अम्बरीष मेरा भक्त है। उसी प्रकार ये दो मुनिश्रेष्ठ भी मेरे भक्त हैं ॥ ५५ ॥

मुझे तो इन दोनों का तथा राजा का भी हित करना होगा।" तब भगवान विष्णु ने उन दोनों को बुलाकर (अपनी मीठी) वाणी से प्रसन्न करते हुए ॥ ५६ ॥

(इस प्रकार) कहा— "मेरा वचन सुनिए, हे मुनिसत्तमो! भक्त के संरक्षण के लिए मैंने जो कुछ किया है, उसे क्षमा कर दीजिए ॥ ५७ ॥

चक्र ने आपका अपराध किया है, (किन्तु) सज्जन लोग क्षमाशील होते हैं।" तब उन दोनों मुनिश्रेष्ठों ने उनकी माया का भेद पाकर ॥ ५८ ॥

अतिशय क्रोधित होकर विष्णु को शाप दिया— "हे विष्णु! आपने छलपूर्वक श्रीमती का हरण किया है ॥ ५९ ॥

जिस प्रकार (आपने श्रीमती का हरण किया है,) उसी प्रकार हे मधुसूदन! आप अम्बरीष के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजा दशरथ के ॥ ६० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्रस्त्वं भविता पुत्री श्रीमती धरणीप्रजा ।
भविष्यति विदेहश्च प्राप्य तां पालयिष्यति ।। ६१ ।।

राक्षसापदः कश्चित्तां ते भार्यां हरिष्यति ।
यतो राक्षसधर्मेण हृता च श्रीमती शुभा ।। ६२ ।।

अतस्ते रक्षसा भार्या हर्तव्या छद्मनाऽच्युत ।
यथा प्राप्तं महद्दुःखमावाभ्यां श्रीमतीकृते ।। ६३ ।।

हाहेति रुदता लभ्यं तथा दुःखं च तत्कृते ।
इत्युक्तवन्तौ तौ विप्रौ प्रोवाच मधुसूदनः ।। ६४ ।।

अम्बरीषस्यान्ववाये भविष्यति महायशाः ।
श्रीमान्दशरथो नाम भूमिपालोऽतिधार्मिकः ।। ६५ ।।

तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम भवाम्यहम् ।
तत्र मे दक्षिणो बाहुर्भरतो भविता किल ।। ६६ ।।

शत्रुघ्नो वामबाहुश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्वयम् ।
ऋषिशापो न चैव स्यादन्यथा चक्र गम्यताम् ।। ६७ ।।

ऋषिशापतमोराशे यदा रामो भवाम्यहम् ।
तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना ।। ६८ ।।

त्यक्त्वापि च मुनिश्रेष्ठाविति स्म प्राह माधवः ।
एवमुक्ते तमोनाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै ।। ६९ ।।

आत्मार्थं संचितं तेन प्रभुणा भक्तरक्षिणा ।
निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वकतिष्ठत ।। ७० ।।

मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
निर्गतौ शोकसंतप्तावूचतुस्तौ परस्परम् ।। ७१ ।।

अद्यप्रभृति देहांतमावां कन्यापरिग्रहम् ।
न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी ।। ७२ ।।

मौनध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ ।
अम्बरीषोऽपि राजासौ परिपाल्य च मेदिनीम् ।। ७३ ।।

सभृत्यज्ञातिसंबंधो विष्णुलोकं जगाम वै ।
मानार्थमंबरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः ।। ७४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्र बनेंगे और श्रीमती धरती की पुत्री होगी, एवं (राजा जनक) विदेह (उसको) प्राप्त करके उसका पालन करेंगे ।। ६१ ।।

कोई नीच राक्षस आपकी उस भार्या का हरण करेगा, क्योंकि आपने शुभलक्षणा श्रीमती का राक्षस-धर्म से हरण किया है ।। ६२ ।।

इसलिए हे अच्युत ! आपकी भार्या का राक्षस द्वारा छल से हरण होगा । जिस प्रकार हम दोनों ने श्रीमती के (वियोग) के कारण असह्य दुःख प्राप्त किया है, ।। ६३ ।।

उसी प्रकार उस भार्या के (वियोग) के कारण 'हा-हा'—ऐसा रुदन करनेवाले आपको दुःख प्राप्त होगा ।'' इस प्रकार बोलनेवाले उन दोनों विप्रों को मधुसूदन् ने कहा— ।। ६४ ।।

''अम्बरीष के वंश में महान यशस्वी श्रीमान् 'दशरथ' नाम के एक अति धार्मिक राजा होंगे ।। ६५ ।।

मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र 'राम' नाम से (अवतार लेकर) होऊँगा । वहाँ मेरी दाहिनी भुजा (के समान भाई) भरत होंगे ।। ६६ ।।

बायीं भुजा शत्रुघ्न तथा शेष स्वयं लक्ष्मण होंगे और ऋषि का (दिया) शाप भी अन्यथा नहीं होगा । चक्र ! (अब तुम) जाओ ।। ६७।।

जिस समय ऋषि-शाप रूपी तमोराशि से मैं राम बनूंगा, उस समय मेरे पास आना । अब बिना राजा के जाओ ।। ६८ ।।

तथा दोनों मुनिवर्यों को भी (छोड़ के जाओ) ।'' इस प्रकार माधव बोले । उनके द्वारा ऐसा कहे जाने पर तत्क्षण ही तम का नाश हो गया ।। ६९ ।।

भक्त की रक्षा करनेवाले प्रभु ने अपने लिए उसको संचित किया । निवारित किया हुआ विष्णु का चक्र (तब) पूर्ववत् स्थित हो गया ।।७०।।

भय से मुक्त हुए दोनों मुनिश्रेष्ठ जनार्दन को प्रणाम करके शोक से संतप्त हो (कर) चले गये और परस्पर वार्त्तालाप करने लगे— ।। ७१ ।।

(अब) हम दोनों आज से लेकर मृत्युपर्यंत कन्या का परिग्रह नहीं करेंगे (आजीवन ब्रह्मचारी रहेंगे) । इस प्रकार बोल के उन दोनों ऋषियों ने (आजीवन ब्रह्मचर्यपालन की) प्रतिज्ञा की और ।। ७२ ।।

मौनपूर्वक ध्यान में मग्न होकर (उन्होंने अपना अंतःकरण शुद्ध किया ।) तथा शुद्ध होने पर पूर्ववत् (अपने आत्मस्वरूप में) स्थित हो गये । वे राजा अम्बरीष भी पृथ्वी का पालन करके ।। ७३ ।।

सेवक, ज्ञातिजन एवं संबंधियों-सहित बिष्णुलोक को (चले) गये । अम्बरीष एवं दोनों मुनिश्रेष्ठों के सम्मान के लिए ।। ७४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामो दाशरथिर्भूत्वा तमसा लुप्तबुद्धिकः ।
कदाचित्कार्यवशतः स्मृतिः स्यादात्मनः प्रभोः ।। ७५ ।।

पूर्णार्थोऽपि महाबाहुरपूर्णार्थ इव प्रभुः ।
अनुग्रहाय भक्तानां प्रभूणामीदृशी गतिः ।। ७६ ।।

मायां कृत्वा महेशस्य प्रोत्थिता मानुषी तनुः ।
तस्मान्माया न कर्तव्या विद्वद्भिर्दोषदर्शिभिः ।। ७७ ।।

एतत्ते कथितं सर्वं रामजन्मकथाश्रयम् ।
अंबरीषस्य माहात्म्यं मायावित्त्वं च वै हरेः ।। ७८ ।।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि मायावित्त्वं हरेर्विभोः ।
मायां विसृज्य पुण्यात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ।। ७९ ।।

दशरथसुतजन्मकारणं यः पठति शृणोत्यनुमोदते द्विजेन्द्रः ।
व्रजति स भगवद्गृहातिथित्वं नहि शमनस्य भयं कुतश्चिदस्य ।। ८० ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामजन्मोपक्रमश्चतुर्थः सर्गः ।। ४ ।।

पञ्चमः सर्गः

भरद्वाज शृणुष्वाथ सीताजन्मनि कारणम् ।
पुरा त्रेतायुगे कश्चित्कौशिको नाम वै द्विजः ।। १ ।।

वासुदेवपरो नित्यं नामगानरतः सदा ।
भोजनाशनशय्यासु सदा तद्गतमानसः ।
उदारचरितं विष्णोर्गायमानः पुनःपुनः ।। २ ।।

विष्णुस्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम् ।
अगायत हरिं तत्र तालवल्गुलयान्वितम् ।। ३ ।।

मूर्च्छनामूर्च्छायोगेन श्रुतिमंडलवेदितम् ।
भक्तियोगसमापन्नो भिक्षामश्नाति तत्र वै ।। ४ ।।

तत्रैनं गायमानं च दृष्ट्वा कश्चिद् द्विजस्तदा ।
पद्माक्ष इति विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ सदा ।। ५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु ने दशरथ के तमोगुण से लुप्त बुद्धि वाले पुत्र राम के रूप में अवतार लिया। क्वचित् कार्यवशात् प्रभु को अपनी स्मृति हो आती थी ॥ ७५ ॥

वे महाबाहु पूर्ण अर्थ वाले होकर भी अपूर्ण अर्थ वाले के समान (दीखते थे) भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए स्वामियों की ऐसी स्थिति होती है (यह देखने में आता है) ॥ ७६ ॥

वे महेश की माया के आश्रित होकर मानव-शरीर को प्राप्त हुए। अतः दोष को जाननेवाले विद्वानों को माया नहीं करनी चाहिए ॥ ७७ ॥

तुमको रामजन्म का यह पूरा आशय, अम्बरीष का माहात्म्य तथा विष्णु का माया से युक्त होना बता दिया गया ॥ ७८ ॥

भगवान विष्णु द्वारा लिये गये माया के आश्रय की कथा जो कोई भी पढ़ता है अथवा श्रवण करता है, वह पुण्यात्मा माया को छोड़कर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥ ७९ ॥

जो द्विजेन्द्र दशरथ के पुत्र के जन्म के कारण की कथा पढ़ता है, श्रवण करता है तथा (उसका) अनुमोदन करता है, वह भगवान के घर का अतिथि होता है। उसको किसी भी निमित्तरूप से यम का डर नहीं सताता ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-
काण्ड में 'श्रीराम के जन्म धारण करने का कारण' नाम
चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

जानकी-जन्म का कारण

हे भरद्वाज ! अब सीता के जन्म का कारण सुनो। प्राचीन समय में त्रेतायुग में 'कौशिक' नाम का कोई एक ब्राह्मण (था) ॥ १ ॥

(वह) वासुदेवपरायण और सदा उनके नाम-संकीर्तन में रत रहता था। वह नित्य-निरंतर भोजन और शयन के समय भी प्रभु में मन लगाये रहता था तथा विष्णु के उदार चरित्र का बार-बार गायन करता रहता था ॥ २ ॥

विष्णु के स्थानक नारायण के श्रेष्ठ क्षेत्र को प्राप्त कर वह वहाँ सुन्दर ताल एवं लय से युक्त प्रभु का गान करता था ॥ ३ ॥

मूर्च्छना-मूर्च्छा के योग से श्रुतिमंडल से वेदित भक्तियोग को प्राप्त होकर भिक्षा का भोजन करता था ॥ ४ ॥

पद्माक्ष नाम से सुविख्यात कोई एक ब्राह्मण इसे गाता हुआ देखकर हमेशा उसे अन्न देता था ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकुटुंबो महातेजा अश्नन्नन्नं च तस्य वै ।
कौशिको हि तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम् ।। ६ ।।
शृण्वन्नास्ते स पद्माक्षः काले काले च भक्तितः ।
कालयोगेन संप्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च ।। ७ ।।
सप्तराजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसंभवाः ।
ज्ञानविद्याधिकाः शुद्धा वासुदेवपरायणाः ।। ८ ।।
तेषामपि तथान्नाद्यं पद्माक्षः प्रददौ स्वयम् ।
शिष्यैश्च सहितो नित्यं कौशिको हृष्टमानसः ।। ९ ।।
विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन्यथाविधि ।
तत्रैव मालवो नाम वैद्यो विष्णुपरायणः ।। १० ।।
दीपमालां हरेर्नित्यं करोति प्रीतमानसः ।
मालतीनाम भार्यासीत्तस्य नित्यं पतिव्रता ।। ११ ।।
गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समंततः ।
भर्त्रा सहास्ते संप्रीता शृण्वती गानमुत्तमम् ।। १२ ।।
कुशस्थलीसमुत्पन्ना ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ।
पंचाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः ।। १३ ।।
साधयंतो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः ।
गानविद्यार्थतत्त्वज्ञाः शृण्वंतो ह्यवसंस्तु ते ।। १४ ।।
ख्यातमासीत्तदा तस्य गानं वै कौशिकस्य च ।
श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कालिंगो वाक्यमब्रवीत् ।। १५ ।।
कौशिकः स्वगणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः ।
शृणुध्वं च तथा यूयं कुशस्थलजना अपि ।। १६ ।।
तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्राह राजानं सांत्वयन्गिरा ।
न जिह्वाग्रे महाराज वाणी च मम सर्वदा ।। १७ ।।
हरेरन्यमपींद्रं वा स्तौति नापि न वक्ति च ।
एवमुक्ते च तच्छिष्या वसिष्ठो गौतमोऽरुणिः ।। १८ ।।
सारस्वतस्तथा वैश्यश्चित्रमालस्तथा शिशुः ।
ऊचुस्तं पार्थिवं तत्त्वं यथा प्राह स कौशिकः ।। १९ ।।
श्रीकराश्च तथा प्रोचुः प्रार्थिवं विष्णुतत्पराः ।
श्रोत्राणीमानि शृण्वंति हरेरन्यं न पार्थिव ।। २० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह महातेजस्वी कौशिक कुटुम्ब-सहित उसका दिया भोजन करता था, और (कौशिक) हमेशा प्रसन्न होकर हरि का गान करता था ।। ६ ।।

वह पद्माक्ष समय-समय पर भक्तिपूर्वक उसका श्रवण करता था। कौशिक को समय बीतने पर शिष्य प्राप्त हुए ।। ७ ।।

क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न (हुए), शुद्धहृदय के, ज्ञान-विद्या में अधिक वासुदेवपरायण ऐसे सात शिष्य थे ।। ८ ।।

पद्माक्ष उनको भी अन्न प्रदान करता था। शिष्यों के साथ कौशिक सदा प्रसन्न रहता था ।। ९ ।।

वहाँ विष्णु के स्थान में विधिपूर्वक नारायण का गान करता (हुआ) मालव नाम का विष्णुपरायण एक वैद्य (भी) निवास करता था ।। १० ।।

(वह) प्रसन्न-चित्त होकर सदा विष्णु के लिए दीपमाला करता था। सदा पतिव्रता मालती नाम की उसकी पत्नी थी ।। ११ ।।

वह विष्णु के क्षेत्र को चारों ओर से गोबर से पोतकर प्रसन्न-मन होकर पति के साथ उत्तम गान का श्रवण करती थी ।। १२ ।।

कुशस्थली में जन्म लेनेवाले सुन्दर व्रतवाले पचास उत्तम ब्राह्मण गान के लिए (वहाँ) आ पहुँचे ।। १३ ।।

महात्मा कौशिक के कार्य को साधित करते हुए गानविद्या के तत्त्व को जाननेवाले वे (हरिगान) सुनते हुए वहाँ रहने लगे ।। १४ ।।

उन दिनों कौशिक का गान सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया था। कलिंगराज यह सुनकर स्वयं वहाँ आकर बोले— ।। १५ ।।

"हे कौशिक ! अपने गणों के साथ तुम हमारा गान करो, तथा हे कुशस्थलवासी लोग ! तुम उसका श्रवण करो" ।। १६ ।।

यह सुनकर वाणी से राजा को (आश्वस्त) करते हुए कौशिक बोला– "हे महाराज ! जिह्वा के अग्र भाग पर मेरी वाणी हमेशा ।। १७ ।।

विष्णु को छोड़कर इन्द्र की भी स्तुति नहीं करती या (उसके बारे में) बोलती भी नहीं।" इस प्रकार कहने पर उसके शिष्य वसिष्ठ, गौतम, आरुणि, ।। १८ ।।

सारस्वत, वैश्य, चित्रमाल और शिशु जिस प्रकार कौशिक ने कही थी, उस प्रकार यथार्थ बात राजा को कहने लगे ।। १९ ।।

विष्णुपरायण श्रीकर राजा से कहने लगे— "हमारे कान हरि के सिवा किसी भी दूसरे राजा के (गुणानुवाद) नहीं सुनते ।। २० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मा ते कीर्तिं वयं तस्माच्छृणुमो नैव वा स्तुतिम् ।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गीयतामिति चाब्रवीत् ।। २१ ।।
स्वभृत्यान्ब्राह्मणा ह्येते कीर्तिं शृण्वंति वै यथा ।
न शृण्वंति कथं तस्माद्गीयमानां समंततः ।। २२ ।।
एवमुक्तास्ततो भृत्या जगुः पार्थिवसत्तमम् ।
निरुद्धकर्णा विप्रास्ते गाने वृत्ते सुदुःखिताः ।। २३ ।।
काष्ठशंकुभिरन्योन्यं श्रोत्राणि बिभिदुः किल ।
कौशिकाद्यास्तु तां ज्ञात्वा मनोवृत्तिं नृपस्य वै ।। २४ ।।
निर्बन्धं कुरुते कस्मात्स्वगानेऽसौ नृपः स्थिरम् ।
इत्युक्त्वा ते सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः स्वकम् ।। २५ ।।
ततो राजा सुसंक्रुद्धः स्वदेशात्तान्व्यवासयत् ।
आदाय वित्तं सर्वेषां ततस्ते जग्मुरुत्तराम् ।। २६ ।।
दिशामासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिताः ।
तानागतान्यमो दृष्ट्वा किंकर्तव्यमिति स्म ह ।। २७ ।।
विस्मितस्तत्क्षणे विप्र ब्रह्मा प्राह सुराधिपान् ।
कौशिकादीन्द्विजानद्य वासुदेवपरायणान् ।। २८ ।।
गानयोगेन ये नित्यं पूजयंति जनार्दनम् ।
तानानयत भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ ।। २९ ।।
इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुनःपुनः ।
मालतीति तथा केचित्पद्माक्षेति तथापरे ।। ३० ।।
क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्तार्द्धेन वै सुराः ।। ३१ ।।
कौशिकादींस्तथा दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रत्यागम्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ।। ३२ ।।
ततः कोलाहलश्चाभूदतिगौरवमुल्बणम् ।
ब्रह्मणा च कृतं दृष्ट्वा देवानां द्विजसत्तम ।। ३३ ।।
हिरण्यगर्भो भगवांस्तान्निवार्य सुरोत्तमान् ।
कौशिकादींस्तदादाय मुनिर्देवैः समावृतः ।। ३४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः हम आपकी कीर्ति या स्तुति नहीं सुनेंगे।" यह सुनते ही क्रोधित होकर राजा ने कहा, 'गाओ' ।। २१ ।।

(ऐसा) अपने सेवकों से कहा (कि), जिस प्रकार ये ब्राह्मण हमारी कीर्ति सुनें (उस प्रकार गाओ)। चारों ओर गायी जानेवाली (हमारी कीर्ति) को ये क्यों नही सुनते ? ।। २२ ।।

इस प्रकार के वचन कहे जाने पर सेवक लोग द्वारा (उस) पार्थिवश्रेष्ठ (की कीर्ति) का गान होने पर उन अत्यन्त दुःखी ब्राह्मणों ने अपने कान बन्द कर लिये ।। २३ ।।

(राजा ने मन में सोचा कि) इनके कान का लकड़ी की कीलों से भेदन किया जाय। राजा की इस मनोवृत्ति को जानकर कौशिक वग़ैरः (को दुःख हुआ कि) ।। २४ ।।

"यह राजा अपने गान के लिए दुराग्रह क्यों करता है ?" ऐसा कह कर अच्छी तरह से नियंत्रित उन लोगों ने (अपने-आप) अपनी जिह्वा के अग्र भाग का छेदन कर दिया ।। २५ ।।

तब राजा ने अतिशय क्रोधित होकर अपने देश से उनको निर्वासित कर दिया। उन सबका (सारा) द्रव्य छीन लिया गया। तब वे (ब्राह्मण) उत्तर दिशा की ओर चल पड़े ।। २६ ।।

समय बीतने पर (दक्षिण) दिशा को प्राप्त करके यम से योजित हुए। उनको आते हुए देख 'मुझे क्या करना चाहिए' (ऐसा सोचकर) यम— ।। २७ ।।

विस्मित हुए, उस समय (हे विप्र !) ब्रह्मा ने देवाधिपतियों से कहा— "वासुदेवपरायण कौशिक ब्राह्मण (जो कि) गानयोग से हमेशा जनार्दन की पूजा करते हैं, यदि आपको देवत्व की इच्छा हो तो उन्हें ले आइए। आपका कल्याण हो" ।। २८-२९ ।।

इस प्रकार (संबोधनपूर्वक) प्रेरित किये गये वे लोकपाल बार-बार 'हे कौशिक', तो कोई 'हे मालति', तथा अन्य 'हे पद्माक्ष', ।। ३० ।।

इसी प्रकार पुकारते हुए उनके पास जाकर आकाश-मार्ग से उन्हें ले जाकर वे देवता लोग आधे मुहूर्त में ही शीघ्र ब्रह्मलोक (में) पहुँच गये ।।३१।।

उस प्रकार कौशिकादि को देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी ने अभिवादनपूर्वक उनका यथायोग्य स्वागत किया ।। ३२ ।।

तब हे द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी द्वारा संपन्न किये गये इस स्वागत को देखकर देवताओं में बड़ा भारी कोलाहल मच गया ।। ३३ ।।

भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्माजी) ने सारे देवताओं का निवारण किया। देवताओं के साथ कौशिकादि को लेकर वह मुनि ।। ३४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुलोकं ययौ शीघ्रं वासुदेवपरायणः ।
तत्र नारायणो देवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः ।। ३५ ।।

ज्ञानयोगेश्वरैः सिद्धैर्विष्णुभक्तिपरायणैः ।
नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरैः शुभैः ।। ३६ ।।

विष्णुचिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषैः ।
अष्टाशीतिसहस्रैस्तु सेव्यमानो मनोजवैः ।। ३७ ।।

अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः ।
भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समंततः ।। ३८ ।।

सेव्यमानोऽथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृते ।
सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे ।। ३९ ।।

विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः ।
लोककार्यप्रसक्तानां दत्त्वा दृष्टिं समास्थितः ।। ४० ।।

तस्मिन्कालेऽथ भगवान्कौशिकाद्यैश्च संवृतः ।
आगम्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम् ।। ४१ ।।

ततोऽवलोक्य भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
कौशिकेत्याह संप्रीत्या तान्सर्वांश्च यथाक्रमम् ।। ४२ ।।

जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते ।
ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन्यथोदितम् ।। ४३ ।।

कौशिकस्य च ये विप्राः साध्यसाधनतत्पराः ।
हिताय संप्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः ।। ४४ ।।

मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता गानतत्त्वार्थकोविदाः ।
अनन्यदेवताभक्ताः साध्या देवा भवन्त्विमे ।। ४५ ।।

मत्समीपे तथा ह्यस्य प्रवेशं देहि सर्वदा ।
एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः ।। ४६ ।।

स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ दिग्बलो नाम वै सदा ।
गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं तत्समास्व वै ।। ४७ ।।

मालतीमालवं चेति प्राह दामोदरो वचः ।
मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव ।। ४८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासुदेवपरायण शीघ्र ही विष्णुलोक को गये। वहाँ भगवान् नारायण श्वेतद्वीप में निवास करनेवाले ॥ ३५ ॥

ज्ञानयोगेश्वर, सिद्ध, विष्णुभक्तिपरायण, नारायण के समान दिव्य, चार भुजाओं को धारण करनेवाले, विष्णु के शुभ चिह्नों (शंख-चक्रादि) से युक्त, देदीप्यमान, पापरहित, अट्ठासी हज़ार मनोवेगी उन (महात्माओं) से सेवित ॥ ३६-३७ ॥

तथा हम, नारद (वग़ैर:), निष्पाप सनकादि, अनेक प्रकार के प्राणियों तथा दिव्य स्त्रियों से चारों ओर से ॥ ३८ ॥

सेव्यमान (थे) तथा सहस्रद्वार से युक्त सहस्र योजन लम्बे, दिव्य, मणिमय, शुभ ॥ ३९ ॥

(पवित्र) निर्मल चित्र-विचित्र विमान में भद्रपीठ आसन पर हरि लोककार्य में संलग्न पुरुषों की ओर देखते हुए स्थित थे ॥ ४० ॥

उस समय कौशिकादि से संवृत भगवान (ब्रह्मा) ने आकर प्रणाम करके गरुड़ध्वज (विष्णु) की स्तुति की ॥ ४१ ॥

तब भगवान् नारायण प्रभु (उन्हें) देखकर प्रसन्नतापूर्वक बोले— "कौशिक !" और बाद में यथाक्रम उन सबसे बोले ॥ ४२ ॥

(यह) महान आश्चर्य (घटित) होने पर बड़ा जयघोष होने लगा। विश्वात्मा (नारायण) ब्रह्माजी से कहने लगे— "हे ब्रह्मन् ! मेरा कहना सुनिए ॥ ४३ ॥

कुशस्थल के निवासी जो ब्राह्मण कौशिक के साध्य को सिद्ध करने में तत्पर हैं (उन कौशिक के) हित के लिए प्रवृत्त हैं ॥ ४४ ॥

मेरी कीर्ति का श्रवण करने में युक्त हैं, गान के तत्त्वार्थ को अच्छी तरह से जानते हैं, (तथा) देवता के अनन्य भक्त हैं वे साध्य देव हो जायँ ॥ ४५ ॥

तथा उन्हें सर्वदा हमारे समीप प्रवेश दिया जाय।" ऐसा कहकर भगवान माधव पुनः कौशिक से कहने लगे— ॥ ४६ ॥

"महाप्राज्ञ ! तुम अपने शिष्यों के साथ 'दिग्बल' नामक गणाधिपत्य को प्राप्त करके जहाँ मैं स्थित हूँ वहाँ निवास करो" ॥ ४७ ॥

और मालती-सहित मालव से दामोदर ये वचन कहने लगे—" हे मालव ! तुम पत्नी के साथ मेरे लोक में अपनी इच्छा के अनुसार ॥ ४८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिव्यरूपधरः श्रीमाञ्छृण्वन्गानमिहानुगैः ।
आस्व नित्यं यथाकामं यावल्लोका भवंति वै ॥ ४९ ॥

पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव मानद ।
धनानामीश्वरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ॥ ५० ॥

ब्रह्माणं च ततः प्राह कौशिकोऽभूद्गणाधिपः ।
गणाः स्तोष्यंति तं चाशु प्राप्तो मेऽस्ति सलोकताम् ॥ ५१ ॥

एते च विप्रा नियतं मम भक्ता यशस्विनः ।
श्रोत्रच्छिद्रं यथाहत्य शंकुभिर्वै परस्परम् ॥ ५२ ॥

श्रोष्यामो नैव चान्यद्वै हरेः कीर्तिं विनेति ये ।
महाव्रतधरा विप्रा मम भक्तिपरायणाः ॥ ५३ ॥

एते प्राप्ताश्च देवत्वं मम सान्निध्यमेव च ।
मालवो भार्यया सार्धं मत्क्षेत्रं परिगृह्य वै ॥ ५४ ॥

गानमानादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सततं हि माम् ।
गानं शृणोति नियतो मत्कीर्तिचरितान्वितम् ॥ ५५ ॥

तेनासौ प्राप्तवाँल्लोकं मम ब्रह्मन् सनातनम् ।
पद्माक्षोऽसौ महाभागः कौशिकस्य महात्मनः ॥ ५६ ॥

धनेशत्वमवाप्तोऽसौ मम सान्निध्यमेव च ।
एवमुक्त्वा हरिस्तत्र समास्ते लोकपूजितः ॥ ५७ ॥

ततो हरिर्भक्तजनैः समावृतः सुखेन तस्थौ कनकासने शुभे ।
भक्तैकगम्यो निजभक्तलोकान्स लालयन्पाणिसरोरुहेण ॥ ५८ ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकाण्डे
आदिकाव्ये जानकीजन्मकारणकथनं नाम
पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

तस्मिन्क्षणे समारब्धो मधुराक्षरपेशलैः ।
महामहोत्सवस्तत्र कौशिकप्रीतयेऽद्भुतः ॥ १ ॥

विपंचीगुणतत्त्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः ।
ततस्तच्छ्रवणायालं चेटीकोटिसमावृता ॥ २ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिव्य रूप धारण किये, श्रीयुक्त होकर अनुचरों के सहित गान-श्रवण करते हुए तब तक निवास करो, जब तक ये लोक हैं" ।। ४९ ।।

फिर भगवान ने पद्माक्ष से कहा— "हे माननीय ! तुम धनपति बनो । धन के स्वामी बनकर तुम यथासुख विहार करो" ।। ५० ।।

और बाद में भगवान ने ब्रह्माजी से कहा— "कौशिक गणाधिपति बने । गण उसकी स्तुति करेंगे और वह शीघ्र ही मेरी सलोकता को प्राप्त करेगा ।। ५१ ।।

और ये मेरे भक्त, यशस्वी, ब्राह्मण एक-दूसरे के कानों के छिद्रों को कीलों से आहत करके— ।। ५२ ।।

हरि की कीर्ति के सिवा दूसरा कुछ नहीं सुनेंगे —इस प्रकार के महान व्रत को धारण करनेवाले, मेरी भक्ति में परायण विप्र ।। ५३ ।।

देवत्व को तथा मेरे सान्निध्य को प्राप्त हो । पत्नी के साथ मालव मेरे क्षेत्र को घेरकर हमेशा गान-मानादि से मेरी पूजा करके मेरी कीर्ति तथा चरित्रयुक्त गान श्रवण करता रहे ।। ५४-५५ ।।

इससे (उसे) हे ब्रह्मन् ! मेरा सनातन लोक प्राप्त हुआ है । महात्मा कौशिक का यह महाभाग (शिष्य) पद्माक्ष ।। ५६ ।।

धनेशत्व को तथा मेरे सान्निध्य को प्राप्त हो ।" इस प्रकार कहकर समस्त लोकों से पूजित हरि स्थित हुए ।। ५७ ।।

तब भक्तजनों से घिरे हुए केवल भक्तों के लिए ही गम्य, अपने हस्त-कमलों से भक्तों का लालन करते हुए हरि सुवर्ण के सुन्दर आसन पर विराजमान हुए ।। ५८ ।।

।। इति श्रीवाल्मीकि-विरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर काण्ड में 'जानकी-जन्म का कारण' नाम पंचम सर्ग समाप्त ।। ५ ।।

षष्ठ सर्ग

हरिमित्रोपाख्यान

उस समय कौशिक की प्रीति के लिए, मधुर अक्षरों से युक्त वीणा के गुण और तत्वों को जाननेवालों ने तथा वाद्यविद्या में विशारदों ने महामहोत्सव का प्रारम्भ किया । तब उसका श्रवण करने के लिए करोड़ों दासियों से घिरी हुई ।। १-२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गायमाना समायाता लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः ।
वृता सहस्रकोटीभिर्वेत्रपाणिभिराशुगैः ॥ ३ ॥
ब्रह्मादिसुरसंघानां घनं दृष्ट्वा समागमम् ।
चेटीगणाधिपा रुष्टा भुशुंडीपरिघान्विताः ॥ ४ ॥
ब्रह्मादींस्तर्जयंत्यस्तान्मुनींश्चापि समन्ततः ।
उत्सार्य दूरं संहृष्टा विष्ठिताः पर्वतोपमाः ॥ ५ ॥
सर्वे बहिर्विनिर्याताः सार्द्धं वै ब्रह्मणा सुराः ।
युक्तमित्येव भाषन्तः प्रभोरग्रे वयं तु के ॥ ६ ॥
तस्थुः प्रांजलयः सर्वे त्रिदशागत मन्यवः ।
तस्मिन्क्षणे समाहूतस्तुम्बुरुर्मानपूर्वकम् ॥ ७ ॥
प्रविवेश समीपं वै देव्या देवस्य चैव हि ।
तत्रासीनो यथायोगं नानामूर्च्छाक्षरान्वितम् ॥ ८ ॥
जगौ कलपदं हृष्टो विपंचीं चाप्यवादयत् ।
विष्णुना कौशिकप्रीत्यै प्रयुक्तो गायकोत्तमैः ॥ ९ ॥
नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैराभरणोत्तमैः ।
दिव्यमाल्यैश्च वसनैः पूजितो विष्णुमंदिरात् ॥ १० ॥
निर्गतस्तुम्बुरुर्हृष्टो जगाम स यथागतम् ।
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे मुनयश्च यथागतम् ॥ ११ ॥
जग्मुर्विष्णुं प्रणम्योच्चैर्जयेति भाषिणस्ततः ।
नारदोऽथ मुनिर्दृष्ट्वा तुंबुरोः सत्क्रियां हरेः ॥ १२ ॥
शोकाविष्टेन मनसा संतप्तहृदयेक्षणः ।
चिन्तामापेदिवांस्तत्र शोकमूर्च्छाकुलांतरः ॥ १३ ॥
ततः क्रोधेन महता जज्वाल मुनिपुंगवः ।
लक्ष्मीं शशाप सहसा तद्दासीभिस्तिरस्कृतः ॥ १४ ॥
यदहं राक्षसं भावं गृहीत्वा विष्णुकांतया ।
चेटीभिर्वारितो दूरं वेत्राघातेन ताडितः ॥ १५ ॥
तस्मात्संजायतां लक्ष्मी रक्षसांगर्भसंभवा ।
यतोऽहं बहिराक्षिप्तश्चेटीभिः सावहेलनम् ॥ १६ ॥
हेलया राक्षसी च त्वां बहिः क्षेप्स्यति भूतले ।
इत्युक्ते नारदेनाथ चकंपे भुवनत्रयम् ॥ १७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाथ में वेत्र धारण करनेवाली, शीघ्र गमन करनेवाली हज़ारों दासियों के साथ गान करती हुई विष्णु-परिग्रहा लक्ष्मी प्राप्त हुईं ।। ३ ।।

तब ब्रह्मा वग़ैरः देवताओं का घना समागम देखकर भुशुण्डी-शस्त्र-धारी चेटीगणों के अधिपति रुष्ट हुए ।। ४ ।।

वे ब्रह्मा आदि उन मुनियों का चारों ओर से तिरस्कार करने लगे। उन्हें दूर (बिठा) करके स्वयं आनन्दित होकर पर्वत के समान (वहाँ) बैठ गये ।। ५ ।।

ब्रह्मा के साथ बाहर निकाले गये सारे देवता लोग कहने लगे— "ठीक ही तो है। भगवान के सामने हम कौन होते हैं ?" ।। ६ ।।

अतः क्रोधरहित सब देवता हाथ जोड़कर खड़े रहे। उस समय तुम्बुरु (गंधर्व) को मानपूर्वक बुलाया गया ।। ७ ।।

वह देवी और देव के निकट आया। वहाँ उचित रूप से बैठकर अनेक मूर्च्छनाओं से युक्त मधुर पद (वह) आनंदित होकर गाने लगा तथा वीणा भी बजाने लगा। कौशिक की प्रीति के लिए विष्णु ने उत्तम गायक नियुक्त किया ।। ८-९ ।।

अनेक विध रत्नों से युक्त उत्तम, दिव्य आभूषणों से तथा दिव्य माला और वस्त्रों से पूजित होकर (वह) विष्णु के मंदिर से आनंदित होकर जैसा आदरपूर्वक तुम्बुरु आया था, वैसा ही विदा हुआ। ब्रह्मा आदि देवता तथा सब मुनि भी जैसे आये थे, उसी प्रकार ।। १०-११ ।।

विष्णु को प्रणाम करके 'जय हो' ऐसा कहते हुए विदा हुए। अब नारदमुनि विष्णु द्वारा किया हुआ तुम्बुरु का सत्कार देखकर ।। १२ ।।

शोकपूर्ण मन से, संतप्त हृदय से और शोक की मूर्च्छा से व्यथित अतःकरण वाले होकर सोचने लगे ।। १३ ।।

तब वह मुनिश्रेष्ठ महा क्रोध से जलने लगे। उन (लक्ष्मीजी) की दासियों से तिरस्कृत (मुनि) ने सहसा लक्ष्मीजी को शाप दे दिया ।। १४ ।।

"विष्णुपत्नी ने मुझे राक्षसभाव से ग्रहण करके दासियों द्वारा बहिष्कृत करवाया है तथा वेत्रघात से ताड़न करवाया है ।। १५ ।।

इसलिए राक्षस के गर्भ से लक्ष्मी का जन्म होगा। मैं चेटियों द्वारा तिरस्कारपूर्वक बाहर निकाला गया हूँ ।। १६ ।।

अतः राक्षसी लीलापूर्वक तुमको पृथ्वी पर बाहर फेंक देगी।" नारद ने जब इस प्रकार कहा, तब तीनों भुवन कंपित हो उठे ।। १७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाहाकारं ततश्चक्रुर्देवगंधर्वदानवाः ।
नारदो विललापाथ धिग्धिङ् मामिति च ब्रुवन् ।। १८ ।।

नारायणसमायोगो महालक्ष्मीसमीपतः ।
अहो तुंबुरुणा प्राप्तो धिङ्मां मूढमचेतनम् ।। १९ ।।

योऽयं हरेः सन्निकासाद्दूतैर्निर्वासितः कथम् ।
जीवन्यास्यामि कुत्राहं किं मे तुंबुरुणा कृतम् ।। २० ।।

रोदमानो मुहुर्विद्वान्धिङ् मामिति च चिंतयन् ।
ततो नारायणो लक्ष्म्याः शापं श्रुत्वा सुदारुणम् ।। २१ ।।

लक्ष्म्या सह हृषीकेश आजगाम यतो मुनिः ।
रमा प्रसाद्य तं विप्रं प्रत्युवाच कृतांजलिः ।। २२ ।।

यदुक्तं भवता मह्यं तत्तथा न तदन्यथा ।
तत्र किंचित्प्रार्थयामि मुने तत्कृपया कुरु ।। २३ ।।

आरण्यानां मुनीनां वै स्तोकं स्तोकं च शोणितम् ।
कलशापूरितं भक्षेद्राक्षसी या च कामतः ।। २४ ।।

तस्या गर्भे भविष्यामि तच्छोणितसमुद्भवा ।
इत्युक्तं रमयाचिंत्यासंभवान्नो भवेदिति ।। २५ ।।

नारदस्तु तथेत्याह अस्याः सर्वं हि दारुणम् ।
ततो नारायणो देवः प्रोक्तवान्नारदं मुनिम् ।। २६ ।।

नाहं दानेन तपसा नेज्यया नापि तीर्थतः ।
संतुष्यामि द्विजश्रेष्ठ यथा नाम्नां प्रकीर्तितः ।। २७ ।।

गानेन नामगुणयोर्मम सायुज्यमाप्नुयात् ।
निदर्शनं कौशिकोत्र गानान्मल्लोकमाप्तवान् ।। २८ ।।

मूर्च्छनादियुतं गानं नाम्नामति मम प्रियम् ।
तुंबुरुस्तत्प्रभावेण प्रियस्त्वत्तोपि मे द्विज ।। २९ ।।

मूर्च्छनातालयोगेन गानेन त्वं तथा भव ।
उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने मतिस्तव ।। ३० ।।

मानसोत्तरशैले तु गानबंधुरिति स्मृतः ।
तद्गच्छ शीघ्रं शैलेंद्रं गानवांस्त्वं भविष्यसि ।। ३१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस समय देव-गंधर्व और दानव हाहाकार करने लगे, तथा 'मुझे धिक्कार हो' ऐसा बोलते हुए नारद विलाप करने लगे— ॥ १८ ॥

"अहो ! तुम्बुरु को महालक्ष्मी के समीप नारायण का योग प्राप्त हुआ । मूढ़ अचेतन मुझे धिक्कार हो ॥ १९ ॥

दूतों द्वारा विष्णु के सान्निध्य से क्यों दूर किया गया ? अब जीता हुआ मैं कहाँ जाऊँगा ? तुम्बुरु ने मेरी क्या दुर्दशा कर दी ?" ॥ २० ॥

वह विद्वान् 'मुझे धिक्कार हो', ऐसा सोचकर बार-बार रोने लगे । (तब) लक्ष्मी को (दिये गये) दारुण शाप को सुनकर नारायण ॥ २१ ॥

हृषीकेश लक्ष्मी के साथ जहाँ मुनि थे, वहाँ पधारे । मुनि को प्रसन्न करके हाथ जोड़कर लक्ष्मीजी बोलीं— ॥ २२ ॥

"आपने मुझे जो कहा है, वह वैसा ही होगा, अन्यथा नहीं होगा । उसके बारे में मैं कुछ विनती करती हूँ । हे मुनि ! कृपा करके वैसा कीजिए ॥ २३ ॥

कलश में भरा हुआ वनवासी ऋषियों का थोड़ा-थोड़ा रक्त जो राक्षसी अपनी इच्छा से भक्षण करेगी ॥ २४ ॥

उसी के गर्भ से उस रुधिर से मैं स्वयं जन्म लूँगी", पुनः लक्ष्मी ने कहा— "(परन्तु) ऐसा कार्य अचिन्त्य होने के कारण संभव प्रतीत नहीं होता" ॥ २५ ॥

नारद ने कहा— "वैसा ही होगा । परन्तु इस प्रसंग में सब कुछ दारुण ही दारुण (भयंकर) है ।" तब भगवान नारायण ने नारद मुनि से कहा— ॥ २६ ॥

"हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं दान, तप, यज्ञ या तीर्थ से वैसा संतुष्ट नहीं होता, जैसा नामसंकीर्तन से होता हूँ ॥ २७ ॥

(मेरे) नाम और गुण के गान से भक्त सायुज्य को प्राप्त होता है । यहाँ उदाहरणरूप है कौशिक, जिसने गान से सालोक्य-मुक्ति प्राप्त की है ॥ २८ ॥

मूर्च्छना आदि से जो मेरा नामसंकीर्तन करता है, वह मेरा अति प्रिय होता है । इसी के प्रभाव से हे द्विज, मुझे तुमसे भी अधिक तुम्बुरु प्रिय है ॥ २९ ॥

तुम (भी) मूर्च्छना ताल से युक्त गान द्वारा वैसी योग्यता प्राप्त कर लो । यदि गान में तुम्हारी रुचि है तो जाकर उलूक से मिलो ॥३०॥

मानसरोवर के उत्तर में पर्वत पर वह 'गानबंधु' नाम से विख्यात है । तो तुम शीघ्र ही उस पर्वतश्रेष्ठ (की दिशा में) चले जाओ । तुम गान-विद्या-संपन्न हो जाओगे" ॥ ३१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इत्युक्तो विस्मयाविष्टो नारदो वाग्विदां वरः ।
मानसोत्तरशैले तु गानबंधुं जगाम वै ।। ३२ ।।

गंधर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः ।
समासीनास्तु परितो गानबंधुश्च मध्यतः ।। ३३ ।।

गानशिक्षासमापन्नाः शिक्षितास्तेन पक्षिणा ।
स्निग्धकंठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः ।। ३४ ।।

ततो नारदमालोक्य गानबंधुरुवाच ह ।
प्रणिपत्य यथा न्याय्यं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ।। ३५ ।।

किमर्थं भगवन्नत्र चागतोऽसि महाद्युते ।
किं कार्यं हि महाब्रह्मन्ब्रूहि किं करवाणि ते ।। ३६ ।।

तच्छ्रुत्वा नारदो धीमान्प्रत्युवाच स पक्षिणम् ।
उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम् ।। ३७ ।।

मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि तच्च भूतं महाद्भुतम् ।
वैकुण्ठनगरेब्रह्मन्नारायणसमीपगम् ।। ३८ ।।

मां विनिर्धूय संदृष्टं समाहूय च तुंबुरुम् ।
लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरशृणोद्गानमुत्तमम् ।। ३९ ।।

ब्रह्मादयो वयं सर्वे निरस्ताः स्थानतश्च्युताः ।
कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम् ।। ४० ।।

समाराध्यैव संप्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम् ।
तेनाहमतिदुःखार्तो यत्तप्तं तु मया तपः ।। ४१ ।।

यद्दत्तं यद्धुतं चैव यच्चापि श्रुतमेव हि ।
यदधीतं च गानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।। ४२ ।।

विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गानयोगस्य वै ततः ।
पश्चात्तापं च मे दृष्ट्वा मां च नारायणोऽब्रवीत् ।। ४३ ।।

उलूकं गच्छ देवर्षे गानबन्धुं मतिर्यदि ।
गाने च वर्तते ब्रह्मंस्तत्र त्वं गानमाप्स्यसि ।। ४४ ।।

इत्यहंप्रेषितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः ।
किं करिष्यामि शिष्योहं तव मां पालयाव्यय ।। ४५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा कहने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ नारदजी विस्मययुक्त मानसोत्तर पर्वत पर 'गानबंधु' के पास गये ।। ३२ ।।

वहाँ गंधर्व, किन्नर, यक्ष तथा अप्सराओं का समूह चारों ओर बैठा हुआ था तथा मध्य में 'गानबंधु' विराजमान थे ।। ३३ ।।

उस पक्षी ने अनेकों को शिक्षित करके गान-विद्या में निपुण कर दिया था। मधुर कंठस्वर वाले अनेक आनंदित हो वहाँ बैठे थे ।। ३४ ।।

तब नारद को देखकर गानबंधु ने (विधिपूर्वक) प्रणाम करके (नारद का) पूजन से स्वागत किया और बोले— ।। ३५ ।।

"हे महातेजस्वी भगवान् ! आप किस हेतु से यहाँ पधारे हैं ? हे महाब्रह्मन् ! यहाँ पर आपका क्या काम है ? कहिए, मैं आपके लिए क्या करूँ ?" ।। ३६ ।।

यह सुन बुद्धिमान उस पक्षी से नारद ने कहा— "हे महाबुद्धिशाली उलूकेन्द्र ! आप सब कुछ सुनिए ।। ३७ ।।

मैं अपना अति अद्भुत वृत्तान्त आपको बताता हूँ ! हे ब्रह्मन् ! वैकुण्ठनगर में नारायण के निकट गये हुए ।। ३८ ।।

"मेरा तिरस्कार करके तुम्बुरु को बुलाकर लक्ष्मी-सहित विष्णु ने उनके गान का श्रवण किया ।। ३९ ।।

ब्रह्मा आदि हम सब बाहर निकाल दिये गये तथा वहाँ बैठे हुए कौशिक आदि ने गानयोग से हरि का ।। ४० ।।

समाराधन किया। इससे उन्होंने गाणपत्य पद की सुखपूर्वक प्राप्ति की। इससे मैं दुःख से अत्यंत कातर हो गया हूँ ! मैंने जो कुछ तप किया है, ।। ४१ ।।

जो दान किया है, हवन किया है तथा जो कुछ श्रवण किया है, विद्या प्राप्त की है, वह गान-विद्या की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है" ।। ४२ ।।

विष्णु के माहात्म्ययुक्त गानयोग (की अधिकता) को देखकर बने हुए मेरा पश्चात्ताप देखकर नारायण ने कहा— ।। ४३ ।।

"हे देवर्षि ! यदि गान में तुम्हारी इच्छा हो तो गानबन्धु उलूक के पास जाओ, वह गान का आचार्य है। हे ब्रह्मन् ! वहाँ तुमको गानप्राप्ति होगी" ।। ४४ ।।

इस प्रकार उनके द्वारा भेजा हुआ मैं यहाँ आपके पास आया हूँ ! "मैं क्या करूँ ? हे अव्यय ! मैं आपका शिष्य हूँ। आप मेरा पालन कीजिए" ।। ४५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारदं प्राह धर्मात्मा गानबंधुर्महायशाः ।
शृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते ।। ४६ ।।

अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम् ।
भुवनेश इति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा ।। ४७ ।।

अश्वमेधसहस्रैश्च वाजपेयायुतेन च ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरिष्टवान्भूरिदक्षिणैः ।। ४८ ।।

गवां कोट्यर्बुदं चैव सुवर्णस्य तथैव च ।
वाससां रथनागानां कन्याऽश्वानां तथैव च ।। ४९ ।।

दत्त्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं पर्यपालयत् ।
न्यवारयत्स्वके राज्ये गानयोगेन केशवम् ।। ५० ।।

अन्यं वा गानयोगेन गायेद्यदि स मे भवेत् ।
वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वेदैरीड्यः परः पुमान् ।। ५१ ।।

न ब्राह्मणैश्च गातव्यं वहद्भिर्वेदमुत्तमम् ।
गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायंतु मां सदा ।। ५२ ।।

सूतमागधसंघाश्च गीतं मे कारयन्तु वै ।
इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत् ।। ५३ ।।

तस्य राज्ञः पुराभ्याशे हरिमित्र इति स्मृतः ।
ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।। ५४ ।।

नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमाञ्च हरेः शुभाम् ।
समभ्यर्च्य यथाशास्त्रं घृतदध्युत्तरं बहु ।। ५५ ।।

मिष्टान्नं पायसं दत्त्वा हरेरावेद्य धूपकम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः ।। ५६ ।।

अगायत हरिं तत्र तालवीणालयान्वितम् ।
अतीव स्नेहसंयुक्तस्तद्गीतेनान्तरात्मना ।। ५७ ।।

ततो राज्ञः समादेशाद्भटास्तस्य समागताः ।
तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समन्ततः ।। ५८ ।।

ब्राह्मणं च गृहीत्वा ते राज्ञे सम्यङ्न्यवेदयन् ।
ततो राजा द्विजश्रेष्ठं परिभर्त्स्य सुदुर्मनाः ।। ५९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मात्मा, महान् यशस्वी गानबन्धु ने नारद से कहा— "हे नारद ! हे महामति ! मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनिए ! ।। ४६ ।।

जो कि अत्यन्त आश्चर्यमय तथा पापों का हरण करनेवाला एवं शुभ है। पहले के ज़माने में 'भुवनेश' नाम से सुविख्यात एक धार्मिक राजा था ।। ४७ ।।

उसने सहस्र अश्वमेध, दस सहस्र वाजपेय तथा और भी अनेक बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञ किये ।। ४८ ।।

(और) करोड़ों गौ, अरबों सुवर्ण-मुद्रा, वस्त्र, रथ, हाथी, कन्या, अश्व आदि ।। ४९ ।।

(दक्षिणा में) ब्राह्मणों को देकर उस राजा ने पृथ्वी का पालन किया। (तथा) अपने राज्य में गानयोग से केशव का निवारण किया (तथा) उसने घोषणा की— ।। ५० ।।

'यदि कोई दूसरा (व्यक्ति) गानयोग से (हरि का गान करेगा तो वह मेरे लिए वध्य होगा; कारण, परपुरुष की स्तुति वेद-वचनों से ही की जाती है ।। ५१ ।।

उत्तम वेदधारी ब्राह्मणों को गान नहीं करना चाहिए। गानयोग से सर्वत्र स्त्रियाँ मेरा गान करें ।। ५२ ।।

सूत और मागधों के संघ मेरा ही गान करवाये, इस प्रकार आज्ञा करके वह महातेजस्वी (राजा) राज्य का पालन करने लगा ।। ५३ ।।

उस राजा के नगर के समीप 'हरिमित्र' नाम का सारे द्वन्द्वों से रहित विष्णुभक्त ब्राह्मण था ।। ५४ ।।

(वह) नदी के किनारे जाकर विष्णु की प्रतिमा का शास्त्रानुसार अर्चन करके घृत, दही-सहित ।। ५५ ।।

मिष्टान्न तथा खीर देकर एवं भगवान को धूप का निवेदन करके, यथायोग्य प्रणाम करके, उसमें चित्त लगाकर ।। ५६ ।।

ताल, वीणा, लय-सहित नारायण का गान करता था तथा तन्मयता से गाने के कारण अतिशय स्नेहपूर्ण बन जाता था ।। ५७ ।।

तब राजा की आज्ञा से वहाँ भट उपस्थित हुए, तथा चारों ओर से पूजन आदि की सामग्री नष्ट करके ।। ५८ ।।

वे ब्राह्मण को पकड़कर राजा के पास ले गये। तब अत्यन्त दुःखी होकर राजा ने द्विजश्रेष्ठ का तिरस्कार करके ।। ५९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्यान्निर्वासयामास हृत्वा सर्वधनादिकम् ।
प्रतिमां च हरेश्चैव नापश्यत्स यदृच्छया ।। ६० ।।

ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान् ।
लोकान्तरमनुप्राप्य उलूकं देहमाश्रितः ।। ६१ ।।

सर्वत्र गच्छमानोऽपि भक्ष्यं किंचिन्न चाप्तवान् ।
क्षुधार्तश्च सदा खिन्नो यममाह सुदुःखितः ।। ६२ ।।

क्षुत्पीडा वर्तते देव दुर्गतस्य सदा मम ।
मया पापं कृतं किंवा किं करिष्यामि वै यम ।। ६३ ।।

ततस्तं धर्मराट् प्राह धर्माधर्मप्रदर्शकः ।
त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानतो नृप ।। ६४ ।।

हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेवपरायणम् ।
हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु ।। ६५ ।।

तेन पापेन संप्राप्तः क्षुद्बोधस्त्वां सदा नृप ।
दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप ।। ६६ ।।

गीतनाट्यलयोपेतं गायमानं सदा हरिम् ।
हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम् ।। ६७ ।।

उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ ।
तव भृत्याः समाहृत्य पापं चक्रुस्तवाज्ञया ।। ६८ ।।

हरेः कीर्तिं विना चान्यद्ब्राह्मणेन नृपोत्तम ।
न गेययोगे मंतव्यं तस्मात्पापं त्वया कृतम् ।। ६९ ।।

नष्टं ते स्वर्गलोकाद्यं गच्छ पर्वतकोटरम् ।
पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं ते खाद नित्यं निकृत्य वै ।। ७० ।।

तस्मिन्क्षीणे त्विमं देहं खाद नित्यं क्षुधान्वितः ।
महानिरयसंस्थस्त्वं यावन्मन्वंतरं भवेत् ।। ७१ ।।

मन्वंतरे ततोऽतीते भूम्यां त्वं श्वा भविष्यसि ।
ततः कालेन कियता मानुष्यमनुलप्स्यसे ।। ७२ ।।

एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सोऽहं नारद भूपालः पुरेदानीमुलूकताम् ।। ७३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(उसका) सब धन वग़ैरः हरण करके उसे राज्य से निकाल दिया। उस राजा ने अपनी इच्छा से नारायण की मूर्ति का भी दर्शन नहीं किया ॥ ६० ॥

फिर लम्बे समय के बाद वह काल-धर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुआ। लोकान्तर को प्राप्त करके उसने उलूक के देह का आश्रय लिया ॥ ६१ ॥

सर्वत्र जाने पर भी उसे कुछ भी भक्ष्य न मिला। क्षुधा से पीड़ित तथा सदा खिन्न और अतिशय दुःखी होकर उसने यमराज से कहा— ॥६२॥

'हे देव ! हमेशा दुर्गतिवाले मुझे क्षुधा से बड़ी पीड़ा होती है। मैंने ऐसा क्या पाप कर डाला है ? हे यम ! अब मैं क्या करूँ ?' ॥ ६३ ॥

तब धर्म और अधर्म को दिखानेवाले धर्मराज बोले— 'हे राजा तुमने, अज्ञानवश बहुत बड़ा पाप किया है ॥ ६४ ॥

वासुदेव-परायण हरिमित्र के प्रति उस समय (तुमने पाप किया है।) वासुदेव के पूजन आदि के बारे में तुमने हरिमित्र के प्रति पाप किया है ॥ ६५ ॥

उस पाप से हे राजा ! तुमको हमेशा क्षुधा का अनुभव होता है। हे नराधिप ! तुम्हारा दान-यज्ञ आदि सब नष्ट हो गया है ॥ ६६ ॥

सदा गीत नाट्ययुक्त हरि का गान करते हुए हरिमित्र को बुलाकर तुमने उसका धन ले लिया था ॥ ६७ ॥

वासुदेव के समीप उपहार वग़ैरः जो कुछ था, उस सारी सामग्री को तुम्हारे सेवकों ने तुम्हारी आज्ञा से छीनकर फेंक देने का पाप किया ॥ ६८ ॥

हे नृपोत्तम ! हरि की कीर्ति के अतिरिक्त ब्राह्मणों को दूसरे किसी गानयोग में प्रवृत्त न होना चाहिए। अतः तुमने पाप किया है ॥ ६९ ॥

तुम्हारे स्वर्गलोकादि नष्ट हो गये हैं। पर्वत की कोटर में जाओ (और) पहले जिसका त्याग किया है, ऐसे (पूर्वजन्म के) शरीर को सदा नोच-नोच के खाते रहो ॥ ७० ॥

उस शरीर के क्षीण होनेपर फिर क्षुधा लगने पर तुम इस शरीर का भक्षण करते रहना। इस प्रकार एक मन्वन्तर तक तुम इस महानरक में निवास करो ॥ ७१ ॥

मन्वन्तर पूरा होने पर तुम पृथ्वी पर कुत्ता बनोगे। बाद में कुछ काल बीतने पर तुम मनुष्यत्व को प्राप्त करोगे' ॥ ७२ ॥

ऐसा कहकर विद्वान् यम वहीं अंतर्धान हो गये। अतः हे नारद ! मैं राजा पहले उलूकता को ॥ ७३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लब्धवान्कर्मदोषेण हरिमित्रकृतेन वै ।
ततो मानसशैलेऽहं कोटरे ह्यवसं मुने ॥ ७४ ॥
पूर्वो मृतकदेहो मे भक्षणाय ह्युपस्थितः ।
क्षुधान्वितोऽहं तं देहं खादितुं ह्युपचक्रमे ॥ ७५ ॥
तत्क्षणं दैवयोगेन हरिमित्रो महायशाः ।
विमानेनार्कवर्णेन स्तूयमानोऽप्सरोगणैः ॥ ७६ ॥
विष्णुदूतैः परिवृतः पथा तेनागतो नृप ।
विष्णुभक्तो महातेजाः पथि मां दृष्टवान्प्रभुः ॥ ७७ ॥
भुवनेशशरीरंतद्दर्शोलूकसन्निधौ ।
पृष्टोऽहं तेन दयया शवसन्निधिसंस्थितः ॥ ७८ ॥
भुवनेशस्य नृपतेर्देहोऽयं दृश्यते खग ।
उलूक त्वं च किमि खादितुं चोद्यतो भवान् ॥ ७९ ॥
तच्छ्रुत्वा हरिमित्राय प्रणम्य विनयान्वितः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा बहुमानपुरःसरम् ॥ ८० ॥
तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं नारदास्मै न्यवेदयम् ।
पुरापराधं त्वयि यत्तस्य पाकोऽयमागतः ॥ ८१ ॥
यावन्मन्वंतरं विप्र खादिष्यामि शवं त्विमम् ।
ततः श्वाहं भविष्यामि भविष्यामि ततो नरः ॥ ८२ ॥
एतदाकर्ण्य करुणो हरिमित्रोमहायशाः ।
कृपया मां समाचष्ट शृणूलूक महीपते ॥ ८३ ॥
मयि त्वयापराधं यत्तत्सर्वं क्षान्तवानहम् ।
शवो ह्यदर्शनं यातु न च श्वा त्वं भविष्यसि ॥ ८४ ॥
त्वामद्य गानयोगश्च प्राप्नोतु मत्प्रसादतः ।
स्तुहि विष्णुं च गानेन जिह्वा स्पष्टा च जायताम् ॥ ८५ ॥
सुरविद्याधराणां च गंधर्वाप्सरसां तथा ।
गानाचार्यो भवेथास्त्वं भक्ष्यभोज्यसमन्वितः ॥ ८६ ॥
ततः कतिपयाहोभिः सर्वं भद्रं भविष्यति ।
हरिमित्रवचस्तच्च विष्णुदूतोपबृंहितम् ॥ ८७ ॥
सर्वं निरयसंज्ञं मे क्षणादेव व्यनाशयत् ।
प्रकृत्या विष्णुभक्तानामीदृशी करुणा द्विज ॥ ८८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त करके हरिमित्र के प्रति किये हुए कर्मदोष से हे मुनि, मानसशैल की कोटर में रहने लगा ।। ७४ ।।

मेरे भक्षण के लिए पूर्व का मृत देह उपस्थित हुआ। क्षुधायुक्त होकर मैंने उस देह को खाना आरम्भ किया ।। ७५ ।।

उसी क्षण दैवयोग से महायशस्वी हरिमित्र सूर्य के समान प्रकाशमान विमान में स्थित अप्सराओं द्वारा जिसकी स्तुति हो रही थी ।। ७६ ।।

विष्णु के दूतों से घिरा हुआ उस मार्ग से आये हुए उस महातेजस्वी विष्णुभक्त ने मार्ग में मुझे देखा ।। ७७ ।।

(उन्होंने) भुवनेश के शरीर को मुझ उलूक के समीप देखा। शव के पास बैठे हुए मुझसे उन्होंने पूछा— ।। ७८ ।।

'हे पक्षी ! यह राजा भुवनेश का शरीर दिखाई देता है। हे उलूक ! तुम इसे खाने के लिए क्यों तत्पर हो ?' ।। ७९ ।।

यह सुनकर विनय से हाथ जोड़कर हरिमित्र को प्रणाम करके बहुत संमानपूर्वक ।। ८० ।।

हे नारदजी ! वह सारा पूर्ववृत्तान्त उनको निवेदन किया और कहा— 'मैंने आपके प्रति पहले जो अपराध किया है, उसी का यह फल प्राप्त हुआ है ।। ८१ ।।

हे विप्र ! एक मन्वन्तर तक मैं इस शरीर को खाता रहूँगा, बाद में मैं कुत्ता बनूंगा और फिर मनुष्य बनूंगा' ।। ८२ ।।

यह सुनकर महायशस्वी दयालु हरिमित्र मुझसे कृपापूर्वक कहने लगे— हे उलूक राजा ! सुनो ।। ८३ ।।

'तुमने मेरे प्रति जो कुछ अपराध किया है, उन सबको मैं क्षमा कर देता हूँ ! यह शव अदृश्य हो जाय और तुम भी कुत्ता नहीं बनोगे ।। ८४ ।।

मेरी कृपा से तुमको गानयोग की प्राप्ति हो। गान से विष्णु की स्तुति करो। तुम्हारी जिह्वा स्पष्ट हो जाय ।। ८५ ।।

देवता, विद्याधर, गंधर्व तथा अप्सराओं के तुम गायनाचार्य हो जाओ ! तथा (अनेक प्रकार के) भक्ष्य-भोज्य पदार्थों से युक्त होओ ।।८६।।

बाद में थोड़े दिनों में ही तुम्हारा सब कुछ कल्याण होगा।' हरिमित्र के इस वचन का विष्णुदूतों द्वारा समर्थन किया गया ।। ८७ ।।

मेरी नरक की सारी सामग्री क्षण मात्र में नष्ट हो गई। हे द्विज ! विष्णुभक्तों में स्वभाव से ही इस प्रकार की करुणा होती है ।। ८८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृतापराधलोकानामपि दुःखं व्यपोहति ।
अमृतस्यन्दि वचनमुक्त्वा स प्रययौ हरिम् ॥ ८९ ॥
सर्वं ते कथितं येन गानाचार्योऽहमुत्तमः ।
प्राप्स्यामि हरिमेतेन हरिमित्रप्रसादतः ॥ ९० ॥
नारदैतदनुवर्णितं मयापूर्वजन्म चरितं महाद्भुतम् ।
यः शृणोति हरिमेत्य चेतसा स प्रयाति भवनं गदाभृतः ॥९१॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकाण्डे
आदिकाव्ये हरिमित्रोपाख्यानं
नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

गानबंधुः पुनः प्राह नारदं मुनिसत्तमम् ।
एते किन्नरसंघा वै विद्याध्राप्सरसां गणाः ॥ १ ॥
गानाचार्यमुलूकं मां गानशिक्षार्थमागताः ।
तपसा नैव शक्त्या वा गानविद्या तपोधन ॥ २ ॥
तस्माच्छ्रमेण युक्तश्च मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि ।
एवमुक्तो मुनिस्तस्मै प्रणिपत्य जगौ यथा ॥ ३ ॥
तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य च ।
उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः ॥ ४ ॥
शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षत ।
गानबंधुस्तमाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना ॥ ५ ॥
स्त्रीसंगमे तथा गीते श्रुतेऽन्वाख्यानसंगमे ।
व्यवहारे च धान्यानामर्थानां च तथैव च ॥ ६ ॥
आयेव्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत् ।
न कुण्ठितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः ॥ ७ ॥
हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि ।
निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं च कथंचन ॥ ८ ॥
स्वांगं निरीक्षमाणेन परमप्रेक्षता तथा ।
न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टिः कथंचन ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(वे) अपराधी लोगों के दुःख भी दूर करते हैं। (इस प्रकार) अमृतपूर्ण वचन कहकर वे विष्णु के पास गये ॥ ८९ ॥

जिससे मैं उत्तम गायनाचार्य बना हूँ, वह सब मैंने कह दिया। इसी के फलस्वरूप हरिमित्र के प्रसाद से मैं विष्णु को भी प्राप्त करूँगा ॥ ९० ॥

हे नारद ! मैंने अपने अति अद्‌भुत पूर्वजन्म के चरित्र का वर्णन किया है। जो इसे ध्यानपूर्वक सुनते हैं, वे गदा धारण करनेवाले (नारायण) के भवन को प्रयाण करते हैं ॥ ९१ ॥

॥ इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्‌भुतोत्तर-काण्ड में हरिमित्रोपाख्यान नाम
षष्ठ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

नारदजी को गानविद्या की प्राप्ति

मुनिश्रेष्ठ नारदजी से फिर (से) कहने लगे— "ये किन्नरों के संघ तथा विद्याधर एवं अप्सराओं के गण ॥ १ ॥

गानाचार्य (मुझ) उलूक के पास गानविद्या की शिक्षा के लिए आये हैं। हे तपोधन ! गानविद्या तप से या शक्ति से नहीं आती ॥ २ ॥

अतः श्रम करके तुम मुझसे गानविद्या प्राप्त करो।" इस प्रकार कहे जाने पर मुनि उससे प्रणाम करके (जिस प्रकार) गाने लगे, ॥ ३ ॥

हे मुनि ! वह सुनो। वासुदेव को नमस्कार करके उलूक के इस प्रकार के वचन सुन मुनिश्रेष्ठ नारद ॥ ४ ॥

शिक्षाक्रम से संयुक्त होकर वहाँ गान सीखने लगे। तब गानबन्धु ने (उनसे) कहा— "अब लज्जा का त्याग कर दो ॥ ५ ॥

स्त्री-संगम में, गीत में, छींक आने पर, अन्वाख्यान प्रसंग में, धान्य तथा अर्थ के व्यवहार में, ॥ ६ ॥

आय तथा व्यय में हमेशा लज्जा छोड़ देनी चाहिए। कुण्ठित मन से, गूढ़ भाव से अथवा प्रावरण आदि से ढके हुए (मुँह से) ॥ ७ ॥

हाथ फैलाकर या सिकोड़कर, मुँह बहुत फैलाकर, जिह्वा भींचकर कभी गाना नहीं चाहिए ॥ ८ ॥

किसी दूसरे की ओर देखे बिना, अपने अंग का निरीक्षण करते हुए, भुजा उठाकर या ऊपर की ओर दृष्टि करके कभी गाना नहीं चाहिए ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हासो भयं क्षुधा कंपः शोकोन्यस्य स्मृतिस्तृषा ।
नैतानि सप्तरूपाणि गानयोगे महामते ।। १० ।।

नैकहस्तेन शस्येत तालसंघट्टनं मुने ।
क्षुधार्तेन भयार्तेन तृषार्तेन तथैव च ।। ११ ।।

गानयोगो न कर्तव्यो नांधकारे कथंचन ।
एवमादीनि योग्यानि कर्तव्यानि महामुने ।। १२ ।।

एवमुक्तः स भगवान्नारदो विधिरक्षणे ।
अशिक्षत तथा गीतं दिव्यवर्षसहस्रकम् ।। १३ ।।

ततः समस्तसंपन्नो गीतप्रस्तावकादिषु ।
विपंच्यादिषु संपन्नः सर्वस्वरविभागवित् ।। १४ ।।

अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ।
स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः ।। १५ ।।

ततो गंधर्वसंघाश्च किन्नराणां तथा गणाः ।
मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्तास्तु तेऽभवन् ।। १६ ।।

गानबंधुं मुनिः प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम् ।
त्वां समासाद्य संपन्नं त्वं हि गीतविशारदाः ।। १७ ।।

ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमवाप्यं करोमि ते ।
गानबंधुस्ततः प्राह नारदं मुनि पुंगवम् ।। १८ ।।

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवः स्युश्चतुर्दश ।
ततस्त्रैलोक्यसंप्लावो भविष्यति महामुने ।। १९ ।।

तावन्मे स्याद्यशोभागस्तावन्मे परमं शुभम् ।
मनसाध्यापितं मे स्याद्दाक्षिण्यान्मुनिसत्तमः ।। २० ।।

उलूकं प्राह देवर्षिः सर्वं तेऽस्तु मनोगतम् ।
अतीते कल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि ।। २१ ।।

गुणगानादच्युतस्य सायुज्यं तस्य लप्स्यसे ।
स्वस्ति तेस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रसीद मे ।। २२ ।।

एवमुक्त्वा ययौ विप्रो जेतुं तुंबुरुमुत्तमम् ।
तुंबुरोश्च गृहाभ्याशे ददर्श विकृताकृतीन् ।। २३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे महामति ! गानयोग में हास्य, भय, क्षुधा, कंप, शोक, किसी दूसरे की स्मृति और प्यास —ये सात नहीं होने चाहिए ।। १० ।।

हे मुनि ! एक हाथ से ताल देकर गाना उचित नहीं (माना जाता) । उसी प्रकार भूख-प्यास तथा भय से व्याकुल मनुष्य को ।। ११ ।।

गान नहीं करना चाहिए। तथा अंधकार में तो कभी भी गाना उचित नहीं है। हे महामुनि ! ये सब (गान के बारे में) योग्य कर्तव्य हैं" ।। १२ ।।

नारदजी को (गानविद्या की) विधि- रक्षा के संबंध में इस प्रकार प्रशिक्षित किया गया और बाद में वे (भगवान नारद) सहस्र दिव्य वर्षों तक गानविद्या सीखते रहे ।। १३ ।।

तब गीत की प्रस्तावना आदि के संबंध में समग्र (विद्या का) संपादन करके वीणा आदि (बजाने) में नारद संपन्न हुए तथा सर्व स्वरों के विभाग को (उन्होंने) जान लिया ।। १४ ।।

४६००० हज़ार स्वर-भेदों का ज्ञान भी उस मुनिश्रेष्ठ नारद ने प्राप्त कर लिया ।। १५ ।।

तब गंधर्वों के संघ तथा किन्नरों के गण मुनि का संपर्क प्राप्त होने से प्रसन्न हुए ।। १६ ।।

श्रेष्ठ गान (विद्या) को प्राप्त करके मुनि ने गानबंधु से कहा, "तुमको मिलकर (गानविद्या से) मैं संपन्न हुआ हूँ। तुम सचमुच बड़े गान-विशारद हो ! ।। १७ ।।

हे महाबुद्धिशाली उलूक (कौओं के शत्रु) ! मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ?" तब गानबंधु ने नारद मुनि से कहा— ।। १८ ।।

"हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होंगे। बाद में हे महामुने ! तीनों लोक का नाश होगा ।। १९ ।।

तब तक मेरा यश बना रहे, मेरा परम कल्याण हो। हे मुनि-सत्तम ! आपकी कृपा से मुझे मन से ही शिक्षा की प्राप्ति हो" ।। २० ।।

देवर्षि ने उलूक से कहा— "तुम्हारी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हों ! एक कल्प बीतने पर तुम गरुड़ बनोगे ।। २१ ।।

विष्णु के गुणगान से तुम (उनके) सायुज्य को प्राप्त करोगे। हे महाप्राज्ञ ! तुम्हारा कल्याण हो ! मैं जाता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइए" ।। २२ ।।

ऐसा कहकर विप्र (नारदजी) तुंबुरु को जीतने के लिए चल पड़े। तुंबुरु के घर के पास उन्होंने विकृत आकृति वाले (लोग) देखे ।। २३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत्तबाहूरुपादांश्च कृत्तनासाक्षिवक्षसः ।
कृतोत्तमांगांगुलींश्च छिन्नभिन्नकलेवरान् ॥ २४ ॥

पुंसः स्त्रियश्च विकृतान्ददर्शायुतशो बहून् ।
नारदेन च ते प्रोक्ताः के यूयं कृतविग्रहाः ॥ २५ ॥

नारदं प्रोचुरपि ते त्वया कृतांगका वयम् ।
वयं रागाश्च रागिण्यो गानेन भिन्नसंधिना ॥ २६ ॥

भवता गीयते यर्हि तर्ह्यवस्थेदृशी हि नः ।
पुनस्तुंबुरुगानेन च्छिन्नभिन्नप्ररोहणम् ॥ २७ ॥

तुंबुरुर्जीवयत्येष त्वं मारयसि नारद ।
तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा श्रुत्वा च विस्मयान्वितः ॥ २८ ॥

धिग्धिगुक्त्वा जगामाथ नारदोऽपि जनार्दनम् ।
श्वेतद्वीपे स भगवान्नारदं प्राह माधवः ॥ २९ ॥

गानबंधौ च यद्गानं न चैतेनासि पारगः ।
तुंबुरोः सदृशो नासि गानेनानेन नारद ॥ ३० ॥

मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतितमे युगे ।
द्वापरांते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः ॥ ३१ ॥

देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णनाम्ना महामुने ।
तदानीं मां समागम्य स्मारयैतद्यथातथम् ॥ ३२ ॥

तत्र त्वां गानसम्पन्नं करिष्यामि महाव्रत ।
तुंबुरोश्च समं चैव तथातिशयसंयुतम् ॥ ३३ ॥

तावत्कालं यथायोगं देवगंधर्वयोनिषु ।
शिक्ष त्वं हि यथान्यायमित्युक्त्वांतरधीयत ॥ ३४ ॥

ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादन तत्परः ।
देवर्षिर्देवसंकाशः सर्वाभरणभूषितः ॥ ३५ ॥

तपसां निधिरत्यर्थं वासुदेवपरायणः ।
स्कंधे विपंचीमाधाय सर्वलोकांश्चचार सः ॥ ३६ ॥

वारुणं याम्यमाग्नेयमैंद्रं कौबेरमेव च ।
वायव्यं च तथैशानं संशयं प्राप्य धर्मवित् ॥ ३७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कटे हुए हाथ, जंघा और पैर वाले, कटी हुई नाक, आँख एवं वक्षःस्थल वाले, कटे हुए मस्तक तथा उँगलियों वाले और छिन्न-भिन्न शरीर वाले ।। २४ ।।

हजारों विकलांग स्त्री-पुरुषों को नारद ने देखा। नारद ने उनसे पूछा— "कटे शरीर वालो ! तुम सब कौन हो ?" ।। २५ ।।

उन्होंने भी नारद से कहा— "आपके द्वारा काटे गये अंगवाले हम सब (विविध) राग-(एवं) रागिणियाँ हैं ! जब भिन्न सन्धान से ।। २६ ।।

आप गाते हैं, तब हमारी यह दशा हो जाती है। फिर तुंबुरु अपने गान से हमारे छिन्न-भिन्न शरीर (को) ।। २७ ।।

जीवित करते हैं (और) हे नारद ! तुम मारते हो।" उस महद् आश्चर्य को देखकर और सुनकर विस्मयान्वित होकर ।। २८ ।।

'धिक्कार है, धिक्कार है !' ऐसा कहकर नारद भी जनार्दन (नारायण) के पास गये। श्वेतद्वीप में भगवान माधव ने नारद से कहा— ।। २९ ।।

"गानबंधु में जो गानविद्या है, उसे प्राप्त कर तुम इस विषय में पारंगत नहीं हुए हो ! इस गान से हे नारद ! तुम तुंबुरु के समकक्ष योग्यता प्राप्त नहीं कर पाये हो ।। ३० ।।

वैवस्वत मनु के अट्ठाइसवें युग में द्वापर के अंत में यदुवंश में मैं अवतार लूंगा ।। ३१ ।।

हे महामुने ! वसुदेवजी का देवकी से कृष्ण नामक पुत्र बनूंगा, उस समय मेरे पास आकर तुम मुझे इस बात का यथातथ्य स्मरण कराना ।। ३२ ।।

तब हे महाव्रती ! मैं तुम्हें गानविद्या से संपन्न कर दूंगा। तुंबुरु के समान तथा उससे भी अधिक कुशल बना दूंगा ।। ३३ ।।

तब तक यथायोग्य देव-गंधर्वों की योनियों में तुम इसकी योग्य रूप से शिक्षा ग्रहण करो।" ऐसा कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये ।। ३४ ।।

तब उन्हें प्रणाम करके वीणावादन के लिए तत्पर देव-समान सर्व आभूषणों से आभूषित देवर्षि ।। ३५ ।।

तपोनिधि अत्यन्त वासुदेवपरायण कंधे पर वीणा धारण किये सब लोकों में विचरण करने लगे ।। ३६ ।।

वरुण, यम, अग्नि, इन्द्र तथा कुबेर की (दिशाओं में) तथा वायव्य और ईशान दिशा में द्विधाग्रस्त होते हुए यह धर्मवेत्ता ।। ३७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गायमानो हरिं सम्यग्वीणावादविचक्षणः ।
गंधर्वाप्सरसां संघैः पूज्यमानस्ततस्ततः ॥ ३८ ॥
ब्रह्मलोकं समासाद्य कस्मिंश्चित्कालपर्यये ।
हाहा हूहूश्च गंधर्वौ गीतवाद्यविशारदौ ॥ ३९ ॥
ब्रह्मणो गायकौ दिव्यौ नित्यं गंधर्वसत्तमौ ।
तत्र ताभ्यां समासाद्य गायमानौ हरिं विभुम् ॥ ४० ॥
ब्रह्मणा च महातेजाः पूजितो मुनिसत्तमः ।
तं प्रणम्य महात्मानं सर्वलोकपितामहम् ॥ ४१ ॥
चचार च यथाकामं सर्वलोकेषु नारदः ।
पुनः कालेन महता गृहं प्राप्य च तुम्बुरोः ॥ ४२ ॥
वीणामादाय तत्रस्थस्तत्रस्थैरप्यलक्षितः ।
सुरकन्याश्च तत्रस्थाः षड्जाद्याः सहधैवताः ॥ ४३ ॥
व्रीडितो भगवान्दृष्ट्वा निर्गतश्च स सत्वरम् ।
शिक्षयामास बहुशस्तत्र तत्र महामुनिः ॥ ४४ ॥
कालेऽतीते ततो विष्णुरवतीर्णो जगन्मयः ।
देवक्यां वसुदेवस्य यादवोऽसौ महाद्युतिः ॥ ४५ ॥
सप्तस्वराङ्गना दृष्टुं गानविद्याविशारदः ।
ययौ रैवतके कृष्णं प्रणिपत्य महामुनिः ॥ ४६ ॥
व्यज्ञापयदशेषं तच्छ्वेतद्वीपे त्वया पुरा ।
नारायणेन कथितं गानयोगार्थमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
तच्छ्रुत्वा प्रहसन्कृष्णः प्राह जांबवतीं मुदा ।
एनं मुनिवरं भद्रे शिक्षयस्व यथाविधि ॥ ४८ ॥
वीणागानसमायोगे तथेत्याह च सा पतिम् ।
प्रहसंती यथायोगं शिक्षयामास तं मुनिम् ॥ ४९ ॥
ततः संवत्सरे पूर्णे नारदं प्राह केशवः ।
सत्यासमीपमागच्छ शिक्षस्व तथा पुनः ॥ ५० ॥
तथेत्युक्त्वा सत्यभामां प्रणिपत्य ययौ मुनिः ।
तया स शिक्षितो विद्वान्पूर्णे संवत्सरे ततः ॥ ५१ ॥
वासुदेवनियुक्तोऽसौ रुक्मिण्याः सदनं गतः ।
अंगनाभिस्तत्रत्याभिर्दासीभिर्गुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीणा बजाने में चतुर, हरि का सम्यक् गान करते हुए सर्वत्र गंधर्व एवं अप्सराओं के गुणों से पूजित ।। ३८ ।।

कुछ काल बीतने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए । (वहाँ) गीत-वाद्य में निपुण 'हाहा' और 'हूहू' नामक दो दिव्य गंधर्व ।। ३९ ।।

ब्रह्मा के गायक थे । वहाँ उनके साथ मिलकर भगवान विष्णु का गान करते हुए ।। ४० ।।

महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मा से पूजित हुए । सर्वलोक के पितामह ऐसे उन महात्मा को प्रणाम करके ।। ४१ ।।

नारदजी सर्वलोक में यथेच्छ भ्रमण करने लगे । बहुत समय के बाद फिर से तुंबुरु के घर को प्राप्त करके ।। ४२ ।।

वीणा लेकर वहाँ रहनेवालों से भी अलक्षित होकर वहीं रहने लगे । धैवत-सहित षड्ज आदि सुरकन्याएँ भी वहाँ रह रही थीं ।। ४३ ।।

(उन्हें) देख भगवान नारद लज्जित हो गये और वहाँ से शीघ्र ही चले गये । महामुनि ने अनेक स्थानों पर विविध प्रकार से शिक्षा दी ।। ४४ ।।

समय बीतने पर जगत्प्रभु विष्णु ने अवतार लिया । वसुदेव के वंश में देवकी की कोख से उस महातेजस्वी यादव ने जन्म लिया ।। ४५ ।।

गानविद्या-विशारद (नारदजी) सात स्वरांगनाओं को देखने के लिए रैवतक पर्वत पर गये । (वहाँ) महामुनि (नारदजी) ने श्रीकृष्ण को प्रणाम करके ।। ४६ ।।

संपूर्ण (वृत्तान्त का) निवेदन किया कि पहले श्वेतद्वीप में आपने नारायण रूप से उत्तम गानयोग की प्राप्ति कराने के लिए कहा था ।। ४७ ।।

यह सुन हँसते हुए श्रीकृष्ण ने जांबवती से प्रीतिपूर्वक कहा— "हे भद्रे ! इस मुनिवर्य को विधिपूर्वक सिखाओ" ।। ४८ ।।

'वीणागान का योग सिखाऊँ ? ठीक है' —ऐसा जांबवती ने पति से कहा और हँसते-हँसते उस मुनि को यथायोग्य शिक्षा दी ।। ४९ ।।

बाद में एक वर्ष पूर्ण होने पर केशव ने नारद से कहा— "अब सत्या के पास जाओ ! और फिर से सीखो !" मुनि ने सत्यभामा के पास जाकर प्रणाम किया ।। ५० ।।

"बहुत अच्छा" कहकर प्रणाम करके मुनि सत्यभामा के पास गये । उसने भी इस विद्वान् को शिक्षा दी । तब वर्ष पूर्ण होने पर ।। ५१ ।।

कृष्ण की आज्ञा से वह (नारदजी) रुक्मिणी के भवन में गये । वहाँ की अनेक सुंदर स्त्रियों ने तथा दासियों ने ।। ५२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उक्तोऽसौ गायमानोऽपि न स्वरं वेत्सि वै मुने ।
ततः श्रमेण महता यावत्संवत्सरद्वयम् ॥ ५३ ॥
शिक्षितोऽसौ तदा देव्या रुक्मिण्याधिजगौ मुनिः ।
न तु स्वरांगनाः प्राप तंत्रीयोगे महामुनिः ॥ ५४ ॥
आहूय कृष्णो भगवान्स्वयमेव महामुनिम् ।
अशिक्षयदमेयात्मा गानयोगमनुत्तमम् ॥ ५५ ॥
कृष्णदत्तेन गानेन तस्यायाताः स्वरांगनाः ।
ब्रह्मानंदः समभवन्नारदस्य च चेतसि ॥ ५६ ॥
ततो द्वेषादयो दोषाः सर्वे अस्तं गता द्विज ।
ईर्ष्या च तुंबुरौ यासीन्नारदस्य च सा गता ॥ ५७ ॥
ततो ननर्त देवर्षिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
उवाच च हृषीकेशः सर्वज्ञस्त्वं महामुने ॥ ५८ ॥
प्राचीनगानयोगेन गायस्व मम सन्निधौ ।
एतत्ते प्रार्थितं प्राप्तं मम लोके तथैव च ॥ ५९ ॥
नित्यं तुम्बुरुणा सार्द्धं गायस्व च यथातथम् ।
एवमुक्तो मुनिस्तत्र यथायोगं चचार सः ॥ ६० ॥
तथा संपूजयत्कृष्णं रुद्रं भुवननायकम् ।
तदा जगौ हरेस्तत्र नियोगाच्छंकरालये ॥ ६१ ॥
रुक्मिण्या सत्यया सार्द्धं जांबवत्या महामुनिः ।
कृष्णेन च द्विजश्रेष्ठ श्रुतिजातिविशारदः ॥ ६२ ॥
एवं ते मुनिशार्दूल प्रोक्तो गीतक्रमो मया ।
ब्राह्मणो वासुदेवाख्यं गायमानोऽनिशं द्विज ॥ ६३ ॥
हरेः सायुज्यमाप्नोति सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
अन्यथा नरकं गच्छेद्गायमानोऽन्यदेव हि ॥ ६४ ॥
कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवपरायणः ।
गायञ्छृण्वंस्तमाप्नोति तस्माच्छ्रेष्ठः प्रियंवदः ॥ ६५ ॥
कथितमिदमपूर्वं जानकीजन्मपूर्वं
श्रुतिसुखमतिगुह्यं स्नेहतस्तेऽतिवाह्यम् ।
कलुषकुलविपक्षं भव्यदानैकदक्षं
नृभिरविरतवंद्यं सर्वदेवाभिनंद्यम् ॥ ६६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनको कहा— "हे मुनि, गाने पर भी तुम स्वर को नहीं जानते हो !" बाद में बहुत परिश्रम से दो वर्ष तक ।। ५३ ।।

देवी रुक्मिणी से शिक्षा प्राप्त कर मुनि गाने लगे। किन्तु महामुनि तंत्रीयोग में स्वरांगनाओं के समकक्ष योग्यता प्राप्त न कर सके ।। ५४ ।।

तब अप्रमेय आत्मस्वरूप श्रीकृष्ण भगवान ने स्वयं महामुनि को बुलाकर श्रेष्ठ गानयोग की शिक्षा दी ।। ५५ ।।

श्रीकृष्ण के द्वारा दी गई गानविद्या से उन (नारदजी) को स्वरांगना प्राप्त हुई। और नारद के चित्त में ब्रह्मानंद का स्फुरण हुआ ।। ५६ ।।

तब हे द्विज ! (नारदजी के) द्वेष वग़ैरह सारे दोष अस्त हो गये। तथा नारदजी की तुंबुरु के प्रति जो ईर्ष्या थी, वह दूर हो गई ।। ५७ ।।

तब देवर्षि नारायण को प्रणाम करके नाचने लगे और श्रीकृष्ण ने कहा— "हे महामुनि ! (अब) तुम सर्वज्ञ हो गये ।। ५८ ।।

मेरे निकट तुम प्राचीन गानयोग से गाओ ! तुम्हारी यह विनती (मेरे द्वारा) पूर्ण हुई है। उसी प्रकार मेरे लोक में ।। ५९ ।।

हमेशा तुंबुरु के साथ यथायोग्य गान करो।" इस प्रकार कहने पर मुनि यथायोग्य संचरण करने लगे ।। ६० ।।

तथा भुवन के नायक श्रीकृष्ण का पूजन किया। बाद में विष्णु की आज्ञा से शंकर के स्थान में जाकर गाने लगे ।। ६१ ।।

रुक्मिणी, सत्यभामा, जांबवती तथा कृष्ण के साथ स्वर तथा राग में निपुण द्विजश्रेष्ठ गाने लगे ।। ६२ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने इस गीतक्रम का आपसे वर्णन किया। हे द्विज ! वासुदेव के नाम को अहर्निश गाता हुआ ब्राह्मण ।। ६३ ।।

हरि का सायुज्य प्राप्त करता है। तथा सर्व यज्ञों का फल पाता है। दूसरे (की कीर्ति) का गान करनेवाला नरक में जाता है ।। ६४ ।।

मन, वचन और कर्म से वासुदेवपरायण होकर गानेवाला और श्रवण करनेवाला उनको प्राप्त करता है। इससे वह प्रियभाषी और श्रेष्ठ माना जाता है ।। ६५ ।।

इस अपूर्व, कर्णप्रिय गूढ़ जानकी-जन्म की पूर्व-कथा मैंने आपसे स्नेहपूर्वक कही है। यह पापों के समूह का नाश करनेवाली, कल्याण करने में एक मात्र चतुर, मनुष्यों के लिए वन्दनीय तथा सर्व देवताओं के लिए अभिनन्दनीय है ।। ६६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकांडे नारदगानप्राप्तिर्नाम
सप्तमः सर्गः ।। ७ ।।

अष्टमः सर्गः

यथा सा शोणितोद्भूता राक्षसीगर्भसंभवा ।
यथा भूमितलोत्पन्ना जानकी च यथा हि सा ।। १ ।।

सीता तत्छृणु विप्रेन्द्र वर्णयामि तवानघ ।
दशास्यो रावणो नाम तपस्तप्तुं मनो दधे ।। २ ।।

त्रैलोक्यस्याधिपत्याय अजरामरणाय च ।
बहुवर्षं तपस्तप्त्वा ज्वलनार्कसमोऽज्ज्वलत् ।। ३ ।।

तत्तेजसा जगत्सर्वं दह्यमानं यदाभवत् ।
तमुवाच तदा ब्रह्मा समागत्य सुरैर्वृतः ।। ४ ।।

पौलस्त्य विरमाद्य त्वं तपसो मम वाक्यतः ।
तपसोग्रेण महता लोका भस्मीकृता इव ।। ५ ।।

वरं ददामि ते वत्स यत्ते मनसि वर्तते ।
तपोधन लभस्वाद्य वरदान्मत्त ईप्सितम् ।। ६ ।।

न्यवारयत चक्षूंषि सूर्यबिंबावलोकनात् ।
प्रणिप्रत्य जगन्नाथं वरं वव्रे स रावणः ।। ७ ।।

देहि सर्वामरत्वं मे वरदोऽसि यदि प्रभुः ।
तदाकर्ण्य वचो ब्रह्मा पुनः प्राह स रावणम् ।। ८ ।।

नहि सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ।
ततः स रावणः प्राह कूटवादी हि राक्षसः ।। ९ ।।

न सुरा नासुरा यक्षाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
विद्याधराः किन्नरा वा तथैवाप्सरसां गणाः ।। १० ।।

न हन्युर्मां कथंचित्ते देहि मे वरमुत्तमम् ।
अन्यच्च ते वृणे ब्रह्मंस्तच्छृणुष्व पितामह ।। ११ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

॥ इति श्री वाल्मीकिविरचित रामायण के अद्भुतोत्तर-
काण्ड में नारदगानप्राप्ति नाम
सप्तम सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

सीताजी का जन्म

अब जिस प्रकार वे (लक्ष्मीजी) रुधिर में से राक्षसी के गर्भ में प्रविष्ट होकर (तथा) पुनः भूमितल से प्रगट हुईं और जनक की पुत्री के रूप में (प्रसिद्ध) हुईं, वह कथा सुनिए ॥ १ ॥

सीता के जन्म की घटना सुनिए। हे निष्पाप विप्रेन्द्र ! मैं आप से वर्णन करता हूँ ! दशमुख रावण ने तप करने की इच्छा की ॥ २ ॥

तीनों लोकों के आधिपत्य के लिए तथा अजर-अमर होने के लिए बहुत वर्षों तक तप करके वह अग्नि और सूर्य के समान प्रज्वलित होने लगा ॥ ३ ॥

जब उसके तेज से समग्र जगत जलने लगा तब देवताओं के साथ ब्रह्माजी ने आकर उससे कहा— ॥ ४ ॥

"हे पौलस्त्य ! मेरे कहने से अब तुम तप से विराम करो ! इस महान् उग्र तप से सारे लोक मानो भस्मीकृत-से हो गये हैं ॥ ५ ॥

हे वत्स ! तेरे मन में जो हो सो वर मैं देता हूँ। हे तपोधन ! मुझ वरदाता से आज तुम अपना जो भी अभीप्सित हो, उसे प्राप्त करो ॥ ६ ॥

अब तुम सूर्यबिंब के अवलोकन से नेत्रों को हटा लो।" (तब) जगत के स्वामी (ब्रह्माजी) को प्रणाम करके रावण ने वर माँगा— ॥ ७ ॥

"हे प्रभु ! यदि आप वरदान देनेवाले हैं तो मुझे संपूर्ण अमरत्व दीजिए।" यह वचन सुनकर ब्रह्माजी ने फिर से रावण को कहा— ॥ ८ ॥

"संपूर्ण अमरत्व तुझे नहीं मिल सकता। मुझसे कोई दूसरा वरदान माँग ले।" तब यह कूटवादी राक्षस बोला— ॥ ९ ॥

"सुर, असुर, यक्ष, पिशाच, नाग, राक्षस, विद्याधर, किन्नर तथा अप्सराओं के गण ॥ १० ॥

कोई भी मुझे किसी प्रकार न मार सकें, यह उत्तम वरदान मुझे दीजिए। हे ब्रह्मन् ! पितामह ! मैं दूसरा भी एक वरदान आपसे माँगता हूँ, (वह) सुनिए ॥ ११ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आत्मनो दुहिता मोहादत्यर्थं प्रार्थिता भवेत् ।
तदा मृत्युर्मम भवेद्यदि कन्या न कांक्षति ॥ १२ ॥

तथेत्युक्त्वा जगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
नरान्नाजीगणद्रक्षो मत्वा तांस्तृणवद्द्विज ॥ १३ ॥

ब्रह्मदत्तवरो राजा रावणोवरदर्पितः ।
त्रैलोक्यजयसर्वस्वं प्राप्तवान्बाहुवीर्यतः ॥ १४ ॥

एकदा रावणो राजा दंडकारण्यमागतः ।
तत्रर्षीनग्निकल्पांश्च दृष्ट्वा मनस्यचिंतयत् ॥ १५ ॥

एतानजित्वा हि कथं त्रिलोकीजयभागहम् ।
एषां वधेन च श्रेयो न पश्यामि महात्मनाम् ॥ १६ ॥

दुरात्मा स विचिंत्यैतत्प्राह तान्मुनिपुंगवान् ।
अहं सर्वस्य जगतः शास्ता च जयभागहम् ॥ १७ ॥

भवतां जयमाकांक्षे जयं दत्त द्विजर्षभाः ।
इत्युक्त्वा स शराग्रेण क्षताच्छोणितमंगतः ॥ १८ ॥

बलादाकृष्य तेषां वै कलशेऽस्थापयत्प्रभुः ।
तत्र गृत्समदो नाम शतपुत्रपिता द्विजः ॥ १९ ॥

दुहित्रर्थे भार्यया स प्रार्थितो भगवान् मुनिः ।
लक्ष्मीर्मे दुहिता भूयादित्यसौ कलशे विभुः ॥ २० ॥

दुग्धं चाहरहस्तत्र कुशाग्रेण समंत्रतः ।
स्थापयत्येष नियतस्तदहर्निर्ययौ वनम् ॥ २१ ॥

तद्दिने दैवयोगेन कलशे तत्र रावणः ।
मुनिनां शोणितं स्थाप्य गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ २२ ॥

भार्यां मंदोदरीं प्राह कलशं रक्ष सुंदरि ।
विषादप्यधिकं विद्धि शोणितं कलशे स्थितम् ॥ २३ ॥

न देयं नापि वा भक्ष्यं मुनीनां शोणितं त्विदम् ।
त्रैलोक्यजयलाभेन रावणो लोकरावणः ॥ २४ ॥

देवदानवयक्षाणां गंधर्वाणां च कन्यकाः ।
आहृत्य रमयामास मंदरे सह्यपर्वते ॥ २५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोह से जब मैं अपनी पुत्री की आकांक्षा करने लगूँ और यदि कन्या की इच्छा न हो तो उस समय मेरी मृत्यु हो जाए" ।। १२ ।।

"तथास्तु" कहकर लोक-पितामह ब्रह्माजी शीघ्र अपने लोक में चले गये। हे द्विज ! मनुष्यों को तृण के समान मानकर राक्षस ने उनकी कोई गणना नहीं की ।। १३ ।।

ब्रह्माजी ने जिसे वर दिया था, उस राजा रावण ने वरदान से दर्प-युक्त होकर (अपने) बाहुबल से तीनों लोकों पर संपूर्ण रूप से विजय प्राप्त की ।। १४ ।।

एक बार राजा रावण दंडकारण्य में गया। वहाँ अग्नि के समान तेजस्वी ऋषियों को देखकर उसने मन ही मन सोचा— ।। १५ ।।

इनको बिना जीते मैं त्रिलोकी को जीत लेनेवाला हो ही कैसे सकता हूँ ? और इन महात्माओं का वध करके मैं अपना कल्याण करूँ यह भी संभव नहीं दिखता ।। १६ ।।

ऐसा सोचकर उस दुरात्मा ने मुनिश्रेष्ठों से कहा— "मैं समग्र जगत का शासक और (उस पर) जय प्राप्त करनेवाला हूँ ।। १७ ।।

मैं आपको जीतने की इच्छा रखता हूँ। हे द्विजश्रेष्ठो ! मुझे जय दीजिए।" ऐसा कहकर बाण की नोक से (उन्हें) घायल करके, उनके शरीर से रुधिर ।। १८ ।।

बलपूर्वक निकालकर एक कलश में उस राजा ने स्थापित किया। वहाँ सौ पुत्रों के पिता 'गृत्समद' नामक एक ब्राह्मण था ।। १९ ।।

(उसकी) पत्नी ने पुत्री के लिए उससे प्रार्थना की। 'लक्ष्मी मेरी पुत्री हो' ऐसी इच्छा से वह मुनि कलश में ।। २० ।।

प्रतिदिन नियत होकर मंत्रोच्चार-सहित कुशाग्र से दूध डालता था। एक दिन वह वन में गया था ।। २१ ।।

दैवयोग से उसी दिन रावण ने उसी कलश में मुनियों का रुधिर रखा और (कलश) लेकर अपने घर चला गया ।। २२ ।।

(अपनी) पत्नी मंदोदरी से उसने कहा— "हे सुन्दरि ! इस कलश की (सु-) रक्षा करो। (इस) कलश में स्थित रुधिर को विष से भी अधिक तीक्ष्ण (समझना) ।। २३ ।।

मुनियों का यह शोणित किसी को देना भी नहीं चाहिए, (और) उसका भक्षण भी नहीं करना चाहिए।" त्रिलोक के जय के लोभ से लोगों को रुलानेवाला रावण ।। २४ ।।

देव, दानव, यक्ष तथा गंधर्वों की कन्यायों का हरण करके 'मंदर' तथा 'सह्य' पर्वत पर रमण करने लगा ।। २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमवन्मेरुविंध्याद्रौ रमणीयवने तथा ।
मंदोदरी तथा दृष्ट्वा पतिं सा हि मनस्विनी ॥ २६ ॥

आत्मानं गर्हयामास भर्तुः स्नेहमपश्यती ।
धिग्जीवितं हि नारीणां यौवनं कुलमेव च ॥ २७ ॥

वंचिताः पतिना याः स्युस्तस्मान्मे मरणं वरम् ।
पुरा रावणसंदिष्टं शोणितं क्ष्वेडतोऽधिकम् ॥ २८ ॥

पपौ मरणमांकांक्ष्य पतिना वंचिता सती ।
लक्ष्मीशरणदुग्धेन मिश्रिताच्छोणितादभूत् ॥ २९ ॥

सद्यो रावणकांताया गर्भो ज्वलनसन्निभः ।
ततो विस्मयमापन्ना सा हि मंदोदरी शुभाः ॥ ३० ॥

प्रीतं विषाधिकं रक्तं गर्भस्तेनाभवन्मम ।
इति संचितयामास भर्ता विप्रोषितो मम ॥ ३१ ॥

कामिनीभिः क्रीडते स कामी भर्ता हि रावणः ।
संवत्सरमिमं भर्त्रा सह मे वसतिर्नहि ॥ ३२ ॥

किं वक्तव्यं मया साध्व्या गर्भिण्या भर्तृसंसदि ।
चिंतया दग्धगात्रीव तीर्थसेवनछद्मना ॥ ३३ ॥

विमानवरमारुह्य कुरुक्षेत्रं जगाम सा ।
तत्र गर्भं विनिष्कृष्य निचखान भुवस्तले ॥ ३४ ॥

स्नात्वा सरस्वतीतोये पुनरागात्स्वमालयम् ।
न चोदितं तत्कस्मैचिद्रहः कार्यं सुगोपितम् ॥ ३५ ॥

कालेन कियता ब्रह्मञ्जनकर्षिर्महामनाः ।
कुरुक्षेत्रं समासाद्य जांगले यज्ञमावहन् ॥ ३६ ॥

स्वर्णलांगलमादाय यज्ञभूमिं चखान सः ।
स्वर्णलांगलसीतांतः कन्यका प्रोत्थिताभवत् ॥ ३७ ॥

पुष्पवृष्टिश्च महती पपात कन्यकोपरि ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं राजा विस्मयमागतः ॥ ३८ ॥

कर्तव्ये मूढतामाप ततः खेऽभूत्सरस्वती ।
राजन्गृहाण कन्यां त्वं पालयैनां महाप्रभाम् ॥ ३९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमालय, मेरु, विन्ध्याचल तथा रमणीय वन में (वह विहार करने लगा। तब) पति को इस प्रकार देखकर मनस्विनी मंदोदरी ॥ २६ ॥

पति का अपने ऊपर स्नेह न देखकर स्वयं को तिरस्कृत करने लगी— "उन नारियों के जीवन को, यौवन को एवं कुल को धिक्कार हो ॥ २७ ॥

"जो पति से वंचित होती हैं। अतः मेरे लिए मरण ही अच्छा है। पहले रावण ने कहा था कि यह रुधिर विष से भी अधिक (तीक्ष्ण) है" ॥ २८ ॥

पति से वंचित होकर मरण की इच्छा करके सती ने (उस रुधिर का) पान कर लिया। लक्ष्मी के आश्रयभूत दूध से मिश्रित उस शोणित से ॥ २९ ॥

शीघ्र ही रावण की पत्नी के उदर में अग्नि के समान तेजस्वी गर्भ (का आधान) हो गया। तब विस्मयपूर्ण होकर उस शुभ मंदोदरी ने ॥ ३० ॥

सोचा— "विष से भी अधिक (तीक्ष्ण) रक्त मैंने पी लिया है। इससे मुझमें गर्भ की धारणा हो गई है। मेरे पति (भी इस समय) मुझ से दूर हैं ॥ ३१ ॥

(मेरे) कामी पति रावण कामिनियों के साथ क्रीड़ा करते (रहते) हैं। एक साल हो गया, मैं पति का सहवास नहीं कर पाई हूँ ॥ ३२ ॥

पति के सामने साध्वी गर्भवती मैं क्या कहूँगी ? (इस प्रकार की) चिंता से दग्ध अंगोंवाली वह तीर्थ-सेवन के बहाने श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर कुरुक्षेत्र गई। वहाँ गर्भपात करके (उस भ्रूण को) पृथ्वी में गाड़ दिया ॥ ३३-३४ ॥

सरस्वती के जल में स्नान करके वह पुनः अपने घर लौटी। यह गुप्त रहस्यमय कार्य उसने किसी को भी बताया नहीं ॥ ३५ ॥

हे ब्रह्मन् ! कुछ समय के बाद महात्मा जनक ने कुरुक्षेत्र में आकर कुरुजांगल में यज्ञ किया ॥ ३६ ॥

और सोने का हल लेकर यज्ञभूमि खोदी। सुवर्ण के हल की नोक से खोदने पर ज़मीन में से एक कन्या का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ३७ ॥

तथा कन्या के ऊपर फूलों की बड़ी भारी वर्षा हुई। उस महान आश्चर्य को देखकर राजा आश्चर्यचकित हुए ॥ ३८ ॥

(और) किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। तब आकाशवाणी हुई— "हे राजन् ! इस महाप्रभावशालिनी कन्या को अपनाओ (और) इसका तुम पालन करो ॥ ३९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्वलनार्कसमां दिव्यां महत्कार्यं तवालये ।
भविष्यति महाभाग क्षेमं च जगतोऽनया ॥ ४० ॥
यज्ञ संपाद्यतां राजन्नायं विघ्नस्तवानघ ।
नामास्याः किल सीतेति सीताया उत्थिता यतः ॥ ४१ ॥
कल्पयैनां दुहितरमित्युक्त्वावाक् तिरोहिता ।
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान्राजा यज्ञं कृत्वा महाधनम् ॥ ४२ ॥
जगाम सीतामादाय महिषीभ्यश्च तां ददौ ॥
एतत्ते कथितं विप्र सीताजन्मैककारणम् ।
श्रुत्वैतत्सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ ४३ ॥
जनकदुहितृजन्म श्रावयित्वा तु श्रुत्वा
न पुनरिह हि जन्म प्राप्नुयात्पुण्यवांश्च ।
दशरथसुतकांता तस्य गेहं कदाचित्
विसृजति नहि सर्वैः पातकैर्मुच्यते च ॥ ४४ ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीसीतोत्पत्तिर्नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

रामः सीतापरिणयं कृत्वा दशरथादिभिः ।
भ्रातृभिश्चापि सहितो भार्यया सह सीतया ॥ १ ॥
अयोध्यां गन्तुमारेभे नानावाद्यपुरःसरम् ।
आर्चीकनंदनो रामो भार्गवो रेणुकासुतः ॥ २ ॥
तस्य दाशरथेः श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
विवाहकौतुकं वीरः पथा तेन समागतम् ॥ ३ ॥
धनुरादाय तद्दिव्यं क्षत्रियाणां निवर्हणम् ।
जिज्ञास्यमानो रामस्य वीर्यं दाशरथेस्तथा ॥ ४ ॥
सतमभ्यागतं दृष्ट्वा उद्यतास्त्रमवस्थितम् ।
प्रहसन्निव विप्रेन्द्रं रामो वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्नि और सूर्य के समान दिव्य इस (कन्या) का तुम्हारे घर में बड़ा कार्य होगा। यह महाभाग्यशालिनी होगी। इससे जगत का बड़ा कल्याण होगा ॥ ४० ॥

हे राजन्! यज्ञ संपादन करो। हे अनघ! यह तुम्हारे लिए विघ्न नहीं है। यह हल की नोक से उत्पन्न हुई है। इसलिए इसका नाम सीता होगा ॥ ४१ ॥

इसे अपनी कन्या मानो।" यह कहकर वाणी तिरोहित हो गई। यह सुनकर प्रसन्न होकर राजा ने बहुत धन से युक्त यज्ञ सम्पन्न किया ॥ ४२ ॥

(वे) सीता को लेकर गये, (तथा) उसे रानियों को दिया। हे विप्र! सीता के जन्म का यह कारण मैंने आपसे कहा। इसका श्रवण करके मनुष्य सर्वपापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४३ ॥

जानकी के जन्म की कथा का श्रवण एवं कथन करनेवाला पुण्यशाली (मनुष्य) फिर से इस मृत्युलोक में जन्म ग्रहण नहीं करता। दशरथ के पुत्र की पत्नी (लक्ष्मी) उसके घर का कभी त्याग नहीं करती और वह सब पातकों से मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

॥ इति श्री वाल्मीकिविरचित रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में सीतोत्पत्ति नाम
अष्टम सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

परशुराम द्वारा राम के विश्वरूप का दर्शन

सीता के साथ विवाह करके राम दशरथ, भ्राताओं एवं पत्नी सीता के साथ ॥ १ ॥

विविध प्रकार के वाद्यों-सहित अयोध्या जाने लगे। आर्चिकनंदन रेणुका के पुत्र भार्गव परशुराम ॥ २ ॥

दशरथ-पुत्र, महापराक्रमी उस राम के विवाह-कौतुक को सुनकर मार्ग में (वह वीर) उनसे मिले ॥ ३ ॥

क्षत्रियों का नाश करनेवाले उस दिव्य धनुष को लेकर दशरथ-पुत्र राम के बल को जानने की इच्छावाले वे (वहाँ आये) ॥ ४ ॥

उनको आये हुए (तथा) अस्त्र उठाये खड़े देखकर राम हँसते हुए उन विप्रेन्द्र से बोले ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ किं कार्यं करवाणि ते।
प्रोवाच भार्गवो वाक्यं स्वागतेन किमस्ति मे ॥ ६ ॥

क्षत्रकालं हि राजेन्द्र धनुरेतन्ममास्ति हि।
समारोपय यत्नेन यदि शक्तोसि राघव ॥ ७ ॥

इत्युक्तस्त्वाह भगवंस्त्वं नाधिक्षेप्तुमर्हसि।
नहि नह्यधर्मो धर्मः क्षत्रियाणां द्विजातिषु ॥ ८ ॥

इक्ष्वाकूणां विशेषेण बाहुवीर्येण कत्थनम्।
तमेवं वादिनं तत्र रामो वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अलं वागुपदेशेन धनुरायच्छ राघव।
ततो जग्राह रोषेण क्षत्रियर्षभसूदनम् ॥ १० ॥

रामो दाशरथिर्दिव्यं हस्ताद्रामस्य कार्मुकम्।
धनुरारोपयामास सलीलमिव राघवः ॥ ११ ॥

ज्याशब्दमकरोत्तत्र स्मयमानः स वीर्यवान्।
तस्य शब्देन भूतानि वित्रेसुरशनेरिव ॥ १२ ॥

अथाब्रवीद्वचो रामं रामोदाशरथिस्तदा।
इदमारोपितं ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ॥ १३ ॥

तस्य रामो ददौ दिव्यं जामदग्न्यो महाबलः।
शरमाकर्णदेशांतमयमाकृष्यतामिति ॥ १४ ॥

एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्रामः प्रदीप्त इव मन्युना।
श्रूयते क्षम्यते चैव दर्पपूर्णोऽसि भार्गव ॥ १५ ॥

त्वया ह्यधिगतं तेजः क्षत्रियेभ्यो विशेषतः।
पितामहप्रसादेन तेन मां क्षिपसि ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम्।
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै रामो दिव्यां दृशं तदा ॥ १७ ॥

ततो रामशरीरे वै रामोऽपश्यत्स भार्गवः।
आदित्यान्सवसूनरुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान् ॥ १८ ॥

पितॄन्हुताशनांश्चैव नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।
गन्धर्वान्राक्षसान्यक्षान्नदीस्तीर्थानि यानि वै ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत हो ! मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ ? तब भार्गव ने कहा— "स्वागत से मुझे क्या (प्रयोजन) ? ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! मेरा वह धनुष क्षत्रियों का काल है । यदि समर्थ हो तो आप प्रयत्न से इसे चढ़ा दीजिए" ॥ ७ ॥

ऐसा कहने पर (राम) बोले— "हे भगवान् ! आप हम पर आक्षेप करें यह उचित नहीं है । क्षत्रियों का ब्राह्मणों के प्रति (बल प्रकाशित करना) धर्म नहीं (है), अधर्म है ॥ ८ ॥

खास करके इक्ष्वाकुओं के लिए बाहुवीर्य का कथन करना (उचित नहीं है) ।" इस प्रकार बोलते हुए राम से परशुराम कहने लगे— ॥ ९ ॥

"वाणी का उपदेश करना बन्द करो । राघव, धनुष उठाओ !" तब क्रोध से (राम ने) क्षत्रियश्रेष्ठों का नाश करनेवाला (धनुष) हाथ में लिया ॥ १० ॥

दशरथ-पुत्र राम ने परशुराम के हाथ से उस दिव्य धनुष को उठाया, (और) राघव ने लीलापूर्वक धनुष चढ़ा दिया ॥ ११ ॥

हँसते हुए उस वीर ने धनुष की डोरी की टंकार की । वज्र (की ध्वनि के) समान उसके गंभीर घोष को सुनकर सब प्राणी घबरा गये ॥ १२ ॥

तब दशरथ-पुत्र राम परशुराम से कहने लगे— "हे ब्रह्मन् ! यह धनुष चढ़ा लिया । दूसरा आपके लिए क्या (कार्य) करूँ ?" ॥ १३ ॥

महाबली जमदग्निपुत्र परशुराम ने उन्हें एक दिव्य बाण दिया (और कहा)— "धनुष पर चढ़ा के कान तक खींचो" ॥ १४ ॥

यह सुनकर गुस्से से मानो प्रदीप्त होकर राम बोले— "सुना जाता है, क्षमा किया जाता है; परंतु आप तो अभिमान से पूर्ण हैं ॥ १५ ॥

पितामह के प्रसाद से आपने विशेषकर क्षत्रियों से तेज प्राप्त किया है । और इसी कारण निश्चित आप मुझ पर आक्षेप कर रहे हैं ॥ १६ ॥

आप असली रूप में मेरा दर्शन कीजिए । मैं आपको (दिव्य) चक्षु प्रदान करता हूँ ।" ऐसा कहकर राम ने उनको दिव्य दृष्टि दी ॥ १७ ॥

तब भार्गव परशुराम ने राम के शरीर में वसुओं-सहित आदित्य, रुद्र, साध्य तथा मरुतों के गण को देखा ॥ १८ ॥

पितृ, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह तथा गंधर्व, राक्षस, यक्ष, नदी, तीर्थ, ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋषीन्वै निखिलान्यांश्च ब्रह्मभूतान्सनातनान् ।
देवर्षींश्चैव कात्स्न्येंन समुद्रान्पर्वतांस्तथा ॥ २० ॥

वेदांश्च सोपनिषदान्वषट्कारान्सहाध्वरैः ।
ऋचो यजूंषि सामानि धनुर्वेदांश्च सर्वशः ॥ २१ ॥

विद्युतो मेघवृन्दानि वर्षाणि च महाव्रत ।
ततः स भगवान्विष्णुस्तं वै बाणं मुमोच ह ॥ २२ ॥

शुष्काशनिसमाकीर्णं महोल्काभिश्च सुव्रतः ।
पांसुवर्षेण महता मेघसंघैश्च केवलम् ॥ २३ ॥

भूमिकंपैः सनिर्घातैर्नादैश्च विपुलैरपि ।
भार्गवं विह्वलं कृत्वा तेजश्चाक्षिप्य केवलम् ॥ २४ ॥

अगच्छज्ज्वलितो रामं शरो बाहुप्रचोदितः ।
स तु विह्वलतां गत्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् ॥ २५ ॥

रामः प्रत्यागतप्राणः प्राणमद्विष्णुतेजसम् ।
विष्णुना सोऽभ्यनुज्ञातो महेन्द्रमगमत्पुनः ॥ २६ ॥

भीतश्च तत्र न्यवसद्विनीतश्च महातपाः ।
ततः संवत्सरेऽतीते हृतौजसमवस्थितम् ॥ २७ ॥

निर्मदं दुःखितं दृष्ट्वा पितरो राममब्रुवन् ।
न वै सम्यगिदं पुत्र विष्णुमासाद्य वै कृतम् ॥ २८ ॥

स हि पूज्यश्च मान्यश्च त्रिषु लोकेषु सर्वदा ।
गच्छ पुत्र नदीं पुण्यां वधूसरकृतालयाम् ॥ २९ ॥

तत्रोपस्पृश्य तीर्थेषु पुनर्वपुरवाप्स्यसि ।
दीप्तोदं नाम तत्तीर्थं यत्र ते प्रपितामहः ॥ ३० ॥

भृगुर्देवयुगे राम तप्तवानुत्तमं तपः ।
तत्तथा कृतवान्रामो भार्गवो वचनात्पितुः ॥ ३१ ॥

प्राप्तवांश्च पुनस्तेजो भरद्वाज महामुने ।
एतद्यः शृणुयाद्वत्स रामचारित्रमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्व ऋषि, ब्रह्मभूत सनातन लोक, सारे देवर्षि, समुद्र, पर्वत, ॥ २० ॥

उपनिषद्-सहित वेद, यज्ञ-सहित वषट्कार, ऋचाएँ, यजुर्मंत्र, साममंत्र तथा धनुर्वेद सर्वत्र (देखने लगे) ॥ २१ ॥

विद्युत्, मेघवृन्द तथा वर्ष (आदि देखा), तब भगवान विष्णु ने उस बाण को छोड़ा ॥ २२ ॥

उस समय सारा जगत 'हे सुव्रत ! शुष्क वज्र से महा उल्का से, धूल की भारी वर्षा से तथा मेघ के समूहों से ॥ २३ ॥

निर्घात-सहित भूकम्प से, विपुल नाद से (व्याप्त हो गया)। (तथा) भार्गव को विह्वल करके उनके केवल तेज का आकर्षण कर के ॥ २४ ॥

(राम के) बाहु से छूटा हुआ बाण प्रज्वलित होता हुआ परशुराम (के प्रति गया। वे) विह्वल हो गये। (तथा) पुनः चेतना प्राप्त करके ॥ २५ ॥

प्राण पुनः प्राप्त करके परशुराम ने तेजस्वी विष्णु (को) प्रणाम किया। विष्णु की आज्ञा से वे फिर (से) महेन्द्र पर्वत की ओर चले गये ॥ २६ ॥

महा तपस्वी परशुराम (वहाँ) भयभीत एवं विनम्र होकर रहने लगे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। अब वे पराक्रमरहित, निस्तेज होकर वहीं रह गये ॥ २७ ॥

तब मदरहित और दुःखी परशुराम को देखकर पितरों ने उनसे कहा— "हे पुत्र ! विष्णु को प्राप्त करके तुमने यह अच्छा नहीं किया ॥ २८ ॥

वह सदा तीनों लोकों में पूज्य और मान्य हैं। हे पुत्र ! वधूसर आलयवाली पवित्र नदी में जाओ ॥ २९ ॥

वहाँ तीर्थ में स्नान करके तुम फिर से अपना असली शरीर प्राप्त करोगे। वह दीप्तोद नामक तीर्थ है, जहाँ तुम्हारे प्रपितामह ॥ ३० ॥

भृगु ने देवयुग में, हे राम ! उत्तम तप किया था।" तब पिता के वचन से भार्गव परशुराम ने वैसा ही किया ॥ ३१ ॥

हे महामुने भरद्वाज ! (उन्होंने) पुनः (अपना खोया हुआ) तेज प्राप्त किया। हे वत्स ! इस उत्तम रामचरित को जो सुनता है, वह सारे पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥ ३२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ततो रामो जानकीस्पृष्टपाणिः
सूतैर्भक्त्या मागधैः स्तूयमानः ।
पुष्पासारैरास्तृतो देवसंघैः
स उत्तरान्कोसलानाजगाम ॥ ३३ ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे जामदग्न्याय विश्वरूपदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

अथ सीतालक्ष्मणाभ्यां सह केनापि हेतुना ।
जगाम विपिनं रामो दंडकारण्यमाश्रितः ॥ १ ॥
तत्र गोदावरीतीरे पर्णशालां विधाय सः ।
उवास कंचित्कालं वै मृगयामभिकारयन् ॥ २ ॥
कदाचिद्रावणो मोहाल्लंकायां तां न्यवासयत् ।
तामदृष्ट्वा ततो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ३ ॥
आटतुश्चाटवीं सर्वां सीतादर्शनलालसौ ।
रामस्य रुदतस्तस्य बाष्पवारिसमुद्भवा ॥ ४ ॥
नदी वैतरणी चाभूच्चक्षुषोरश्रुषूद्भवा ।
वितरत्यश्रु वै यस्मादतो वैतरणी स्मृता ॥ ५ ॥
पितॄणां तरणं यस्मान्मातॄणां स्नानतर्पणात् ।
तेनापि कारणेनासौ नदी वैतरणी स्मृता ॥ ६ ॥
नेत्रयोर्दूषिकायाश्च ताभिः शैलास्ततोऽभवन् ।
सुग्रीवेण वानरेण सख्यं कर्तुं महामनाः ॥ ७ ॥
ऋष्यमूकमगाद्रामो लक्ष्मणेनानुजेन च ।
पञ्चभिर्मंत्रिभिः सार्द्धं सुग्रीवो नाम वानरः ॥ ८ ॥
यत्रास्ते वालिभयतः सोऽपश्यद्रामलक्ष्मणौ ।
चापबाणधरौ वीरौ ग्रसंताविव चाम्बरम् ॥ ९ ॥
तौ दृष्ट्वा सुमहत्त्रस्तो वालिपक्षावमन्यत ।
प्रास्थापयद्धनूमंतं भिक्षुरूपेण वानरम् ॥ १० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(तब) जानकी का हाथ पकड़कर, सूत और बंदीजनों से भक्तिपूर्वक स्तुति किये जानेवाले देवताओं के संघों से पुष्पों की वर्षा से आच्छादित हो (कर) राम उत्तर कोसल की ओर गये ।। ३३ ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-काण्ड में परशुराम द्वारा राम के विश्वरूप का दर्शन नाम नवम सर्ग समाप्त ।। ९ ।।

दशम सर्ग

श्रीराम द्वारा हनुमान को (अपने) चतुर्भुज-रूप का दर्शन कराना

तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के साथ किसी कारणवश राम वन में गये (तथा) दण्डकारण्य में आश्रय लिया ।। १ ।।

वहाँ गोदावरी के किनारे पर्णशाला बनाकर कुछ समय तक मृगया करते हुए उन्होंने निवास किया ।। २ ।।

एक बार मोहवश रावण ने उन (सीता) को लंका में वास कराया। उन (सीताजी) को न देखकर राम तथा महाबलवान लक्ष्मण ।। ३ ।।

सीता के दर्शन की इच्छा से सारे वन में घूमने लगे। रोते हुए राम के (अश्रु-जल से उत्पन्न) ।। ४ ।।

नेत्रों के अश्रुजल से वैतरणी नदी उत्पन्न हुई। (वह) अश्रु का वितरण करती थी, इसलिए वैतरणी कहलायी ।। ५ ।।

जिस नदी में स्नान-तर्पण करने से पितरों का तर्पण होता है, उस कारण से उसे वैतरणी नदी कहा गया ।। ६ ।।

नेत्रों के मल से वहाँ पर्वत हो गये। (तदनन्तर) वानर सुग्रीव से मित्रता करने के लिए वे महामना ।। ७ ।।

राम छोटे भाई लक्ष्मण-सहित ऋष्यमूक (पर्वत) की ओर गये। पाँच मंत्रियों के साथ सुग्रीव नामक वानर ।। ८ ।।

बालि के भय से वहाँ रह रहा था। उस सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को देखा। चाप और बाण धारण किये हुए वे वीर मानो आकाश को ग्रसित करते थे ।। ९ ।।

उन्हें देखकर सुग्रीव अत्यन्त भयग्रस्त हुए। (कारण) वह उन्हें बालि के पक्ष का मानता था। (उन्होंने) भिक्षुक के रूप में वानर हनुमान को (वहाँ) भेजा ।। १० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्मानं दर्शयामास हनूमान्रामलक्ष्मणौ ।
को भवानिति चोक्तेऽथ चतुर्बाहुं किरीटिनम् ।। ११ ।।
शंखचक्रगदापाणिं वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवाससमच्युतम् ।। १२ ।।
लक्ष्मीसरस्वतीभ्यां च संश्रितोभयपार्श्वकम् ।
ब्रह्मपुत्रैः सनंदाद्यैः स्तूयमानं समन्ततः ।। १३ ।।
देवर्षिपितृगंधर्वैः सिद्धविद्याधरोरगैः ।
सेव्यमानं महात्मानं पुंडरीकविलोचनम् ।। १४ ।।
सहस्रसूर्यसंकाशं शतचन्द्रशुभाननम् ।
फणासहस्रमतुलं धारयन्तं च लक्ष्मणम् ।। १५ ।।
अनन्तं रामशिरसि आतपत्रं फणागणैः ।
दधानं सर्वलोकेशनागसंघैश्च संस्तुतम् ।। १६ ।।
आत्मानं दर्शयामास रामचन्द्रो हनूमते ।
तद्रूपं हनुमान्वीक्ष्य किमेतदिति विस्मितः ।। १७ ।।
क्षणं निमील्य नयने पुनः सोऽपश्यदद्भुतम् ।
स्तुत्वा नत्वा च बहुधा सोऽब्रवीद्राघवं वचः ।। १८ ।।
अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान्नाम वानरः ।
सुग्रीवेण प्रेषितोऽहं युवां कौ ज्ञातुमागतः ।। १९ ।।
दृष्ट्वा युवां च द्विभुजौ चापबाणधरौ परम् ।
आगत्य चान्यथा दृष्टं वद मे को भवानिति ।। २० ।।
इति पवनसुतं ते व्याकुलं व्याहरन्तं
किमिति कथमितीदं कंपमानं प्लवंगम् ।
कृतकरपुटमौलिं संविधेयं ब्रुवन्तं
मधुरतरमुदारं रामचन्द्रोऽब्रवीत्तम् ।। २१ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामचतुर्भुजरूपदर्शनं
नाम दशमः सर्गः ।। १० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हनुमान ने राम-लक्ष्मण को अपना (रूप) दिखाया। 'आप कौन हैं ?' ऐसा पूछने पर चतुर्बाहु किरीटधारी ॥ ११ ॥

हाथ में शंख, चक्र तथा गदा धारण किये हुए, वनमाला से विभूषित, वक्षःस्थल में श्रीवत्स धारण किये हुए, पीताम्बरधारी देव अच्युत को ॥ १२ ॥

दोनों बाजू से लक्ष्मी और सरस्वती से सेवित, चारों ओर सनंदादि ब्रह्मा के पुत्रों से स्तुति किए जानेवाले, देव, ऋषि, पितृ, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर (तथा) सर्पों से सेवित, कमललोचन, हज़ारों सूर्य के समान (प्रकाशमान), सौ चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाले हैं (तथा) हज़ार फन धारण किये हुए लक्ष्मण को ॥ १३-१५ ॥

जो अनन्त हैं (तथा) राम के सिर पर फनों के समूह से छत्र धारण करनेवाले, सर्व लोकपाल तथा नागसमूहों से स्तुति किये जानेवाले हैं ॥ १६ ॥

(इस प्रकार) रामचन्द्र ने अपना (विराट् परमात्म-स्वरूप) हनुमान को दिखाया। इस रूप को देखकर हनुमान "यह क्या है ?" —ऐसे विस्मित हुए ॥ १७ ॥

क्षण भर आँखें मूँदकर वे फिर से उस अद्भुत (रूप को) देखते थे। अनेक बार स्तुति और प्रणाम करके वे राघव से (वचन) कहने लगे— ॥ १८ ॥

"मैं सुग्रीव का सचिव हनुमान नाम का वानर हूँ। सुग्रीव द्वारा भेजा हुआ मैं, आप दोनों कौन हैं, यह जानने आया हूँ ॥ १९ ॥

आप दोनों को दो भुजावाले तथा धनुष-बाण धारण किये हुए देखकर (मैं आया), किन्तु आने पर कुछ और ही देखा। मुझसे कहिए, आप दोनों कौन हैं ?" ॥ २० ॥

इस प्रकार व्याकुलता से 'यह क्या है', 'कैसे हैं', ऐसा बोलते हुए, कंपित होते हुए, हाथ जोड़कर, सर झुकाकर मधुर वचन से बोलते हुए उदार पवन-पुत्र उस वानर से रामचन्द्रजी ने कहा ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-काण्ड में हनुमान द्वारा राम के चतुर्भुजरूप का दर्शन नामक दशम सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकादशः सर्गः

रामः प्राह हनूमन्तमात्मानं पुरुषोत्तमः।
वत्स वत्स हनूमंस्त्वं भक्तोयत्पृष्टवानसि ॥ १ ॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मम।
अवाच्यमेतद्विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम् ॥ २ ॥
यन्न देवा विजानंति यतन्तोऽपि द्विजातयः।
इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूता द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
न संसारं प्रपश्यंति पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः।
गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद्गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥
वंशे भक्तिमतो ह्यस्य भवंति ब्रह्मवादिनः।
आत्मा यः केवलः स्वच्छः शांतः सूक्ष्मः सनातनः ॥ ५ ॥
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः।
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः ॥ ६ ॥
स कालाग्निस्तदव्यक्तं सद्यो वेदयति श्रुतिः।
कस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते ॥ ७ ॥
मायावी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः।
न चाप्ययं संसरति न च संसारयेत्प्रभुः ॥ ८ ॥
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः।
न प्राणो न मनो व्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च ॥ ९ ॥
न रूपरसगन्धाश्च नाहङ्कर्ता न वागपि।
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं प्लवंगम ॥ १० ॥
न कर्ता न च भोक्ता च न च प्रकृतिपूरुषौ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थतः ॥ ११ ॥
तथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते।
तद्वदेव न संबन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः ॥ १२ ॥
छायातरू यथा लोके परस्परविलक्षणौ।
तद्वत्प्रपंचपुरुषो विभिन्नौ परमार्थतः ॥ १३ ॥
यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात्स्वभावतः।
नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मांतरशतैरपि ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकादश सर्ग

श्रीराम द्वारा सांख्य-योग कहना

पुरुषोत्तम श्रीराम ने अपने बारे में हनुमान से कहा— हे वत्स हनुमान ! हमारे भक्त ! तुम जो हमसे पूछते हो ।। १ ।।

(उस विषय में) मैं बताता हूँ। तुम सावधान होकर मुझे सुनो। यह आत्मगुह्य सनातन विज्ञान किसी से कहना नहीं चाहिए ।। २ ।।

जिसको देवता भी नहीं जानते और प्रयत्न करने पर भी द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) भी (नहीं जानते) इस ज्ञान के आधार पर श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग ब्रह्ममय हो गये हैं ।। ३ ।।

प्राचीन ब्रह्मवादी भी (इसके कारण) संसार को नहीं देखते हैं, यह गुह्य से भी गुह्य है एवं प्रयत्नपूर्वक छिपा के रखने योग्य है ।। ४ ।।

(जो इसे जानता है) उसके वंश में भक्तिमान् ब्रह्मवादी (उत्पन्न) होते हैं। आत्मा जो कि केवल, स्वच्छ, शांत, सूक्ष्म, सनातन है ।। ५ ।।

वह सर्व के भीतर रहनेवाला साक्षात् चिन्मात्र (और) अंधकार से परे है, वही अन्तर्यामी है, वही पुरुष है, प्राण है और महेश्वर है ।। ६ ।।

वेद कहते हैं कि वही कालाग्नि है और वही अव्यक्त है। उसी में से विश्व उत्पन्न होता है और इसी में लीन हो जाता है ।। ७ ।।

वही मायावी माया से बद्ध होकर अनेक शरीर धारण करता है। न तो वह चलता है, न तो इसे चलाने में कोई समर्थ है ।। ८ ।।

यह न पृथ्वी है न जल, न तेज न पवन, न आकाश न प्राण, न मन न अव्यक्त शब्द, न तो स्पर्श ।। ९ ।।

यह रूप, रस और गन्ध (भी) नहीं है। न अहंकार है, न वाणी और हे वानर ! यह न तो हाथ-पैर है, न पायु (या) उपस्थ है ।। १० ।।

कर्ता नहीं है, भोक्ता नहीं है; यह न तो प्रकृति है न पुरुष है; न माया है न प्राण ! परमार्थतः यह केवल चैतन्य-स्वरूप है ।। ११ ।।

जैसे प्रकाश और अंधकार का संबंध नहीं हो सकता, वैसे ही प्रपंच और परमात्मा का संबंध नहीं हो सकता ।। १२ ।।

जिस प्रकार जगत में छाया और वृक्ष परस्पर अलग हैं, इसी प्रकार प्रपंच और पुरुष परमार्थरूप से भिन्न हैं ।। १३ ।।

यदि आत्मा मलिन, अस्वस्थ और स्वभाव से विकारी होती, तो सौ जन्मों में भी उसकी मुक्ति न हो सकती ।। १४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्यंति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः ।
विकारहीनं निर्दुःखमानंदात्मानमव्ययम् ॥ १५ ॥
अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः ।
साप्यहंकृतिसम्बंधादात्मन्यारोप्यते जनैः ॥ १६ ॥
वदंति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम् ।
भोक्तारमक्षयं बुद्ध्वा सर्वत्र समवस्थितम् ॥ १७ ॥
तस्मादज्ञानमूलोयं संसारः सर्वदेहिनाम् ।
अज्ञानादन्यथा ज्ञातं तच्च प्रकृतिसङ्गतम् ॥ १८ ॥
नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः ।
अहंकाराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते ॥ १९ ॥
पश्यंति ऋषयो व्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥
तेनात्र सङ्गतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरंजनः ।
आत्मानक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्यंति तत्त्वतः ॥ २१ ॥
अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद्दुःखं तथेतरत् ।
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वभ्रांतिनिबंधनाः ॥ २२ ॥
कार्ये ह्यस्य भवेदेषा पुण्यापुण्यमिति श्रुतिः ।
तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः ॥ २३ ॥
नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ।
एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः ॥ २४ ॥
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः ।
भेदोऽव्यक्तस्वभावे न सा च मायात्मसंश्रया ॥ २५ ॥
यथाहि धूमसंपर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत् ।
अंतःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्नलिप्यते ॥ २६ ॥
यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलः ।
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते ॥ २७ ॥
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः ।
अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यंत्यन्ये कुबुद्धयः ॥ २८ ॥
कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः ।
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रान्तिदृष्टिभिः ॥ २९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुक्त मुनिजन अपनी आत्मा को परमार्थतः विकारहीन, दुःखरहित, आनंदस्वरूप और अव्यय देखते हैं ।। १५ ।।

मैं कर्ता हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ, कृश हूँ, स्थूल हूँ, ऐसी जो बुद्धि है, वह भी अहंकार के संबंध में लोग आत्मा में आरोपित करते हैं ।। १६ ।।

वेद को जाननेवाले उसे जानकर उसको साक्षी, प्रकृति से परे, भोक्ता, अक्षय और सर्वत्र स्थित बताते हैं ।। १७ ।।

अतः देहधारियों का यह संसार अज्ञान के कारण है। अज्ञान के कारण प्रकृति से युक्त उसको अन्यथा जाना जाता है ।। १८ ।।

वह नित्य उदित, स्वयंज्योति, सर्वव्यापी और परमपुरुष है। अहंकार के अविवेक से मैं कर्ता हूँ, ऐसा माना जाता है ।। १९ ।।

ऋषि लोग उस नित्य सद्-असदात्मक तत्त्व को स्पष्ट रूप से देखते हैं। ब्रह्मवादी उस प्रधान प्रकृति को कारण जानकर उससे (प्रकृति से) युक्त आत्मा कूटस्थ और निरंजन होते हुए भी अक्षर ब्रह्मरूप आत्मा को तात्त्विक रूप से नहीं जानते ।। २०-२१ ।।

अनात्मा में आत्मा को जानकर दुःख तथा सुख होता है। राग-द्वेष आदि दोष भ्रांति के कारण हैं ।। २२ ।।

इसके कार्य में ही पुण्य, अपुण्य होता है, ऐसी श्रुति है। इसी के वश से सब प्राणियों के देह की उत्पत्ति होती है ।। २३ ।।

आत्मा नित्य, सर्वत्रगामी, कूटस्थ और दोषवर्जित है। एक ही वह स्वभाव से नहीं, किन्तु अपनी माया-शक्ति से भिन्न-भिन्न प्रकार की दिखाई देती है ।। २४ ।।

इसलिए मुनिजन 'परमार्थ' से अद्वैत का ही तात्पर्य रखते हैं। अव्यक्त के स्वभाव में भेद नहीं है। वह माया के आधार से है ।। २५ ।।

जिस प्रकार धूम के संपर्क से आकाश मलिन नहीं होता, उसी प्रकार अंतःकरण में उत्पन्न होनेवाले भावों से आत्मा लिप्त नहीं होती ।। २६ ।।

जैसे स्फटिक का पत्थर केवल अपनी कान्ति से प्रकाशित होता है, वैसे ही उपाधिरहित निर्मल आत्मा प्रकाशित होती है ।। २७ ।।

बुद्धिमान लोग इस जगत को ज्ञानस्वरूप ही बताते हैं। अन्य दुर्बुद्धि, अज्ञानी लोग इसे अर्थस्वरूप देखते हैं ।। २८ ।।

यह आत्मा स्वभाव से कूटस्थ, निर्गुण, सर्वव्यापी और चैतन्यमय है। भ्रान्त दृष्टिवाले लोगों को यह अर्थरूप दिखती है ।। २९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथा संलक्ष्यते व्यक्तः केवलः स्फटिको जनैः ।
रक्तिकाव्यवधानेन तद्वत्परमपूरुषः ॥ ३० ॥

तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः ।
उपासितव्यो मंतव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥ ३१ ॥

यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा ।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम् ॥ ३२ ॥

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते स्वयम् ॥ ३३ ॥

यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति ।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ॥ ३४ ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः ।
तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पंडितः ॥ ३५ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३६ ॥

यदा पश्यति चात्मायं केवलं परमार्थतः ।
मायामात्रं जगत्कृस्नं तदा भवति निर्वृतः ॥ ३७ ॥

यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम् ।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ॥ ३८ ॥

यथा नदी नदा लोके सागरेणैकतां ययुः ।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत् ॥ ३९ ॥

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः ।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥ ४० ॥

तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् ।
अज्ञानमिति तत्सर्वं विज्ञानमिति मे मतम् ॥ ४१ ॥

एतत्ते परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैकचित्तता ॥ ४२ ॥

योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रजायते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित् ॥ ४३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसे मनुष्यों को केवल स्फटिक स्पष्ट दिखता है, और व्यवधानयुक्त होने से लालिमा दिखती है, वैसे ही परमपुरुष (पृथक् शुद्ध है, किन्तु देह के कारण उपाधियुक्त लगता है।) ॥ ३० ॥

अतः आत्मा अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वगत और अव्यय है। मुमुक्षु लोगों को उसकी उपासना, मनन और श्रवण करना चाहिए ॥ ३१ ॥

जब मन में सर्वत्रगामी चैतन्य हमेशा प्रकाशित होता है, तब योगी व्यवधानरहित उसे प्रत्यक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३२ ॥

जब मनुष्य प्राणीमात्र को अपनी आत्मा में देखता है और अपने को सर्वप्राणियों में, तब प्रत्यक्ष ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

जब समाधिस्थ होने पर (मनुष्य) समग्र प्राणियों को (अलग-अलग) नहीं देखता, तब वह परम आत्मा से एकीभूत केवल (ब्रह्म) हो जाता है। [तब परम (आत्मा) से एक होकर वह केवल ब्रह्म हो जाता है] ॥ ३४ ॥

जब उसके हृदय में (उत्पन्न) होनेवाली सारी कामनाएँ छूट जाती हैं, तब वह पंडित अमृत होकर कल्याण को प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥

जब प्राणीमात्र के पृथग्भाव को एक (तत्त्व) में स्थित जानता है तथा उसी (तत्त्व में से सारा) विस्तार (होता है ऐसा समझता है) तब ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

जब केवल आत्मा को ही परमार्थरूप से देखता है और समग्र जगत को माया-मात्र मानता है, तब निवृत्ति प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥

जब जन्म, जरा, दुःख एवं व्याधियों का एकमात्र औषध केवल ब्रह्मज्ञान होता है तब वह (जीव) शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार इस जगत में (विविध) नदियाँ, नद (इत्यादि) सागर में एकरूपता को प्राप्त होते हैं, उस प्रकार अक्षर, निष्कल परमात्मा में यह आत्मा (जीवात्मा) एकता को प्राप्त होती है ॥ ३९ ॥

अतः विज्ञान ही केवल सच है, प्रपंच और स्थिति नहीं। इस लोक में विज्ञान अज्ञान से आवृत है, इसलिए (लोक) व्याकुल होते हैं ॥ ४० ॥

वह ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प तथा अविनाशी है। यह सारा प्रपञ्च अज्ञान ही है। विज्ञान ही सच है यह मेरा मत है ॥ ४१ ॥

यह परम सांख्यरूप उत्तम ज्ञान (मैंने) तुझे बताया। यही सर्व वेदान्त का सार है। उसमें एकचित्तता को योग कहते हैं ॥ ४२ ॥

योग से ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान से योग उत्पन्न होता है। जो योग और ज्ञान से युक्त है, उसके लिए प्राप्त करने योग्य कुछ नहीं है ॥ ४३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदेव योगिनो यांति सांख्यं तदभिगम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित् ।। ४४ ।।
अन्ये च योगिनो वत्स ऐश्वर्यासक्तचेतसः ।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव सत्त्वात्मैक्यमिति श्रुतिः ।। ४५ ।।
यत्तत्सर्वगतं दिव्यमैश्चर्यमचलं महत् ।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहांते तदवाप्नुयात् ।। ४६ ।।
एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः ।।
कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः ।। ४७ ।।
सर्वकामः सर्वरसः सर्वगंधोऽजरोऽमरः ।
सर्वतः पाणिपादोऽहमंतर्यामी सनातनः ।। ४८ ।।
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः ।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः श्रृणोम्यहम् ।। ४९ ।।
वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन ।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ।। ५० ।।
निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम् ।
यन्न देवा विजानंति मोहिता मायया मम ।। ५१ ।।
यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः ।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभंते योगिनोऽव्ययम् ।। ५२ ।।
येषां हि न समापन्ना माया वै विश्वरूपिणी ।
लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह ।। ५३ ।।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।
प्रसादान्मम ते वत्स एतद्वेदानुशासनम् ।। ५४ ।।
नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं हनुमन्क्वचित् ।
यदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम् ।। ५५ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे सांख्ययोगो
नामैकादशः सर्गः ।। ११ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ योगी जाते हैं, वहीं सांख्य का अनुसरण करनेवाला भी जाता है। सांख्य एवं योग को जो एक जानते हैं, वे ही तत्त्ववेत्ता हैं ।। ४४ ।।

हे वत्स ! अन्य योगी ऐश्वर्य में आसक्त चित्तवाले होते हैं। वे उन-उन स्थानों में निमज्जित होते हैं। सत्त्वात्मा एक है, यह श्रुति है ।। ४५ ।।

ज्ञानयोग से युक्त (मनुष्य) उस सर्वगत, दिव्य, महान, अचल ऐश्वर्य को देह का अन्त होने पर प्राप्त करता है ।। ४६ ।।

मैं यह अव्यक्त मायावी परमेश्वर आत्मा हूँ। सारे वेदों में मैं सर्वात्मा एवं सर्वतोमुख रूप से वर्णित किया गया हूँ ।। ४७ ।।

मैं सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगंध, अजर और अमर हूँ। मैं सब ओर से हाथ-पैरयुक्त अंतर्यामी और सनातन हूँ ।। ४८ ।।

हाथ-पैर से रहित होकर भी मैं शीघ्रगामी और सब कुछ ग्रहण करनेवाला हूँ तथा हृदय में स्थित हूँ। चक्षु न होने पर भी मैं देखता हूँ तथा कान न होने पर भी सुनता हूँ ।। ४९ ।।

मैं यह सब कुछ जानता हूँ। किन्तु मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी लोग मुझे एक, महान पुरुष कहते हैं ।। ५० ।।

मेरी माया से मोहित होकर देवता लोग निर्गुण, अमल रूप का जो उत्तम ऐश्वर्य है, उसे नहीं जानते ।। ५१ ।।

मेरी जो अत्यन्त गुह्य सर्वगामी देह है, उसमें प्रवेश करके तत्त्वदर्शी योगी मेरे अव्यय सायुज्य को प्राप्त करते हैं ।। ५२ ।।

जिनको यह विश्वरूपिणी माया नहीं लिपटती है, वे मेरे साथ परम शुद्ध निर्वाण को प्राप्त करते हैं ।। ५३ ।।

सौ करोड़ कल्पों में भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। हे वत्स ! ऐसा मेरी कृपा से होता है। यही वेद का अनुशासन है ।। ५४ ।।

हे हनुमान ! मैंने जो यह सांख्य-योग को आश्रय करनेवाला विशिष्ट ज्ञान (तुझे) कहा है, यह कभी भी अपुत्र, अशिष्य और अयोगी को देना नहीं चाहिए ।। ५५ ।।

।। इति श्री वाल्मीकि विरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में श्रीराम द्वारा सांख्ययोग-वर्णन
नाम एकादश सर्ग समाप्त ।। ११ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वादशः सर्गः

पुनः रामः प्रवचनमुवाच द्विजपुंगवः ।
अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः ॥ १ ॥
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्मात्सर्वमहं जगत् ।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥ २ ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥ ३ ॥
सर्वाधारं स्थिरानंदमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् ।
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम् ॥ ४ ॥
निर्विकल्पं निराभासं सर्वाभासं परामृतम् ।
अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥ ५ ॥
निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः ।
स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यंतरात्परः ॥ ६ ॥
सोऽहं सर्वत्रगः शांतो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।
मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तरूपिणा ॥ ७ ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित् ।
प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
तयोरनादिर्निर्दिष्टः कालः संयोजकः परः ।
त्रयमेतदनाद्यंतमव्यक्ते समवस्थितम् ॥ ९ ॥
तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ।
महदाद्यं विशेषांतं संप्रसूतेऽखिलं जगत् ॥ १० ॥
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।
पुरुषः प्रकृतिस्थोऽपि भुंक्ते यः प्राकृतान्गुणान् ॥ ११ ॥
अहंकाराविविक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः ।
आद्यो विकारः प्रकृतिर्महानात्मेति कथ्यते ॥ १२ ॥
विज्ञानशक्तिर्विज्ञानादहंकारस्तदुत्थितः ।
एक एव महानात्मा सोहंकारोऽभिधीयते ॥ १३ ॥
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिंतकैः ।
तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वादश सर्ग

उपनिषद्-कथन

पुनः राम प्रवचन (करते हुए) कहने लगे— हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अव्यक्त से काल उत्पन्न हुआ (और उससे) परे, प्रधान पुरुष (उत्पन्न हुआ) ।। १ ।।

उनसे यह सब उत्पन्न हुआ। अतः मैं सारा जगत हूँ। (मेरे) सब ओर हाथ-पैर हैं और चारों ओर आँखें, सिर और मुख हैं ।। २ ।।

वह परम तत्त्व सब ओर से कर्णवान है। जगत में सबको आवृत करके स्थित है। सारी इन्द्रियों के गुणों का आभास-रूप है तथा सारी इन्द्रियों से रहित है ।। ३ ।।

सबका आधार है, स्थिरानन्द, अव्यक्त, द्वैतरहित, सब उपमानों से रहित तथा प्रमाणों से अतीत एवं इन्द्रियों से अगोचर है ।। ४ ।।

(वह) निर्विकल्प, निराभास, सर्वाभास, परम अमृत, अभिन्न, भिन्न संस्थानवाला, शाश्वत, ध्रुव और अव्यय है ।। ५ ।।

निर्गुण और परम व्योम है। उसके ज्ञान को कवि जानते हैं। वही प्राणीमात्र की आत्मा है। वह बाह्य तथा अंतर् से परे है ।। ६ ।।

अतः मैं सर्वत्रगामी, शांत, ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ। अव्यक्त रूपवाले मुझसे यह सारा जगत व्याप्त है ।। ७ ।।

प्राणीमात्र मुझमें स्थित हैं। जो यह जानता है, वही वेद का जानने वाला है। प्रधान और पुरुष ये दो ही तत्त्व कहे जाते हैं ।। ८ ।।

अनादिनिर्दिष्ट पर काल उनका संयोग करनेवाला है। वे तीनों अनादि, अनंत और अव्यक्त में स्थित हैं ।। ९ ।।

तदात्मक अन्य लगता हो (परन्तु) उस रूप को मेरा ही रूप जानते हैं। महत् को लेकर विशेष पर्यन्त समग्र जगत् को निर्मित करते हैं ।। १० ।।

जो प्रकृति कही जाती है, वह प्राणीमात्र को मोहित करनेवाली होती है। प्रकृति में स्थित होकर भी जो प्रकृति के गुणों को भोगता है, वह पुरुष अहंकार से अविविक्त होने से पचीस तत्त्वों का कहा जाता है। प्रकृति आद्य विकार और महान आत्मा कहा जाता है ।। ११-१२ ।।

विज्ञान से विज्ञान-शक्ति तथा उससे अहंकार उत्पन्न हुआ है। महान आत्मा एक ही है। वह अहंकार कहलाता है ।। १३ ।।

वह जीव तथा अन्तरात्मा नाम से तत्त्वचिन्तकों द्वारा गाया जाता है। उसके द्वारा जन्म-जन्मांतरों में सुख-दुःख जाना जाता है ।। १४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स विज्ञानात्मकस्तस्य मनःस्यादुपकारकम् ।
तेनाविवेकतस्तस्मात्संसारः पुरुषस्य नु ।। १५ ।।

स चाविवेकः प्रकृतौ संगात्कालेन सोऽभवत् ।
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।। १६ ।।

सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ।
सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः ।। १७ ।।

प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषः परः ।
सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मनः प्राहुर्मनीषिणः ।। १८ ।।

मनसश्चाप्यहंकारामहंकारान्महान् परः ।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।। १९ ।।

पुरुषाद्भगवान्प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।
प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ।। २० ।।

सोऽहं सर्वत्रगः शांतो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।
नास्ति मत्परमं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते ।। २१ ।।

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजंगमम् ।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम् ।। २२ ।।

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत् ।
मायी मायामयो देवः कालेन सह संगतः ।। २३ ।।

मत्संनिधावेष कालः करोति सकलं जगत् ।
नियोजयत्यनंतात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ।। २४ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे उपनिषत्कथनं नाम
द्वादशः सर्गः ।। १२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह विज्ञानात्मक है, उसका मन उपकारी है, (जीवात्मा को) अविवेक होता है, तब उसे संसार प्राप्त होता है ।। १५ ।।

प्रकृति में संग होने से वह अविवेक होता है, काल से यह (अविवेक) हुआ। काल प्राणियों का सर्जन करता है (तथा) काल प्रजा का संहार करता है ।। १६ ।।

सब कोई काल के वश में हैं। काल किसी के वश में नहीं है। वह सनातन सबके अंतर में है और सबको वश करता है ।। १७ ।।

वही भगवान प्राण, सर्वज्ञ, परमपुरुष कहाता है। विद्वान् लोग ऐसा बताते हैं कि वे मन और सारी इन्द्रियों से परे हैं ।। १८ ।।

मन से परे अहंकार तथा अहंकार से परे महत् तत्त्व है। महत् से परे अव्यक्त तथा अव्यक्त से परे पुरुष है ।। १९ ।।

पुरुष से परे भगवान् प्राण है। उसी के (वश में) यह सारा जगत् है। प्राण से परे व्योम है तथा व्योम से परे परमेश्वर है ।। २० ।।

इसलिए मैं सर्वत्रगामी, शान्त, ज्ञानात्मक परमेश्वर हूँ। मुझसे परे कुछ नहीं है। मुझे जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है ।। २१ ।।

एक अव्यक्त आकाश-रूप महेश्वर मेरे सिवा जगत में स्थावर, जंगम कुछ भी नित्य नहीं है ।। २२ ।।

अतः मैं हमेशा सब कुछ उत्पन्न करता हूँ, तथा उसका संहार करता हूँ। मैं मायी, मायामय देव काल के साथ संगत हूँ ।। २३ ।।

मेरी संनिधि में यह काल सारे जगत को (उत्पन्न) करता है। वह अनंतात्मा सबको नियोजित करता है। यह वेद का अनुशासन है ।। २४ ।।

।। इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में उपनिषद्-कथन नाम
द्वादश सर्ग समाप्त ।। १२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रयोदशः सर्गः

वक्ष्ये समाहितमनाः शृणुष्व पवनात्मज ।
येनेदं लभ्यते रूपं येनेदं संप्रवर्तते ॥ १ ॥
नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया ।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥ २ ॥
अहं हि सर्वभावानामंतस्तिष्ठामि सर्वगः ।
मां सर्वसाक्षिणं लोका न जानंति प्लवंगम ॥ ३ ॥
यस्यांतरा सर्वमिदं यो हि सर्वांतर परः ।
सोऽहं धाता विधाता च लोकेऽस्मिन्विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥
न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः ।
ब्राह्मणा मनवः शक्रा ये चान्ये प्रथितौजसः ॥ ५ ॥
गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् ।
यजन्ति विविधैरग्निं ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ॥ ६ ॥
सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मलोके पितामहम् ।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ॥ ७ ॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता चैव फलप्रद ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्तुतः ॥ ८ ॥
मां पश्यन्तीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः ।
तेषां संनिहितो नित्यं ये भक्ता मामुपासते ॥ ९ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते ।
तेषां ददामि तत्स्थानमानंदं परमं पदम् ॥ १० ॥
अन्येऽपि ये विकर्मस्थाः शूद्राद्या नीच जातयः ।
भक्तिमंतः प्रमुच्यन्ते कालेन मयि संगताः ॥ ११ ॥
न मद्भक्ता विनश्यंति मद्भक्ता वीतकल्मषाः ।
आदावेतत्प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ १२ ॥
यो वा निंदति तं मूढो देवदेवं स निंदति ।
यो हि तं पूजयेद्भक्त्या स पूजयति मां सदा ॥ १३ ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् ।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रयोदश सर्ग

राम द्वारा भक्तियोग-निरूपण

हे पवनपुत्र ! जिससे यह रूप प्राप्त होता है (और) जिससे यह सब प्रवृत्त होता है, वह मैं (तुम्हें) बताता हूँ। सावधान मन से सुनो ॥ १ ॥

श्रेष्ठ भक्ति के सिवा मैं न तो अनेक प्रकार के तप द्वारा (और) न तो दान या यज्ञ से पुरुषों द्वारा जाना जा सकता हूँ ॥ २ ॥

सर्वगामी मैं सब भावों में रहता हूँ। हे वानर ! सर्वसाक्षी मुझको लोग नहीं जानते ॥ ३ ॥

जिसके अन्दर यह सब कुछ है, जो सर्व के अन्तर में है, एवं पर है, वही मैं धाता और विधाता हूँ। इस लोक में विश्वतोमुख हूँ ॥ ४ ॥

मुनि तथा सारे देवतागण भी मुझे नहीं देखते तथा ब्राह्मण, मनु, इंद्र एवं अन्य प्रसिद्ध बलवाले (जो हैं वे) भी नहीं देख सकते ॥ ५ ॥

वेद एक मुझ परमेश्वर का ही सतत् गान करते हैं; ब्राह्मण वैदिक यज्ञों से मेरा यजन करते हैं ॥ ६ ॥

सब लोग ब्रह्मलोक में पितामह को नमस्कार करते हैं। योगी लोग भूतों के अधिपति ईश्वर का ध्यान करते हैं ॥ ७ ॥

मैं ही सारे यज्ञों का भोक्ता और फल देनेवाला हूँ। सब देवों का शरीर होकर सर्वात्मा तथा सर्व द्वारा संस्तुत होता हूँ ॥ ८ ॥

मुझे इस जगत में विद्वान्, धार्मिक, वेदवादी लोग देख पाते हैं। जो भक्त नित्य मेरी उपासना करते हैं उनके निकट मैं रहता हूँ ॥ ९ ॥

धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य मेरी उपासना करते हैं। उनको मैं उस आनन्दमय परम-पद-रूप स्थान देता हूँ ॥ १० ॥

दूसरी भी जो विकर्म करनेवाले शूद्र वगैर: नीच जातियाँ हैं, वे भी भक्ति से युक्त होकर कालक्रम में मुझसे संगत हो (मिल) कर मुक्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥

मेरे भक्तों का विनाश नहीं होता। मेरे भक्त पाप-रहित होते हैं। मैंने पहले ही प्रतिज्ञा की है कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ॥ १२ ॥

जो मूढ़ उस (मेरे भक्त) की निंदा करता है, वह देवाधिदेव (परमात्मा) की निंदा करता है। जो भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करता है, वह (मानो) सदा मेरी ही पूजा करता है ॥ १३ ॥

मेरे आराधन के लिए जो पत्र, पुष्प, फल या जल सदा नियत होकर मुझे देते हैं, वे मेरे प्रिय भक्त हैं ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
निधाय दत्तवान्वेदानशेषानास्यनिःसृतान् ॥ १५ ॥

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेद विद्विषाम् ॥ १६ ॥

अहं वै सर्व संसारान्मोचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥ १७ ॥

अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः ।
मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी ॥ १८ ॥

ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते ।
नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥ १९ ॥

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः ।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च ॥ २० ॥

एका सर्वांतरा शक्तिः करोति विविधं जगत् ।
भूत्वा नारायणोऽनंतो जगन्नाथो जगन्मयः ॥ २१ ॥

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालात्मा रुद्ररूपिणी ॥ २२ ॥

ध्यानेन मां प्रपश्यंति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ।
सर्वेषामेव भक्तानामेष प्रियतरो मम ॥ २३ ॥

यो विज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ।
अन्ये च ये त्रयो भक्ता मदाराधनकांक्षिणः ॥ २४ ॥

तेऽपि मां प्राप्नुवंत्येव नावर्तंते च वै पुनः ।
मया ततमिदं कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः ॥ २५ ॥

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः ।
करोति काले भगवान्महायोगेश्वरः स्वयम् ॥ २६ ॥

योगं संप्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः ।
योगेश्वरोऽसौ भगवान्महादेवो महान्प्रभुः ॥ २७ ॥

महत्त्वात्सर्वसत्त्वानां परत्वात्परमेश्वरः ।
प्रोच्यते भगवान्ब्रह्मा महान्ब्रह्ममयो यतः ॥ २८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सृष्टि के प्रारम्भ में मैंने परमेष्ठी ब्रह्मा का निर्माण करके (मेरे) मुख से निकले हुए समग्र वेदों को प्रदान किया ।।१५ ।।

मैं ही सब योगियों का अविनाशी गुरु हूँ ! मैं धार्मिकों का रक्षक तथा वेद का द्वेष करनेवालों का नाशक हूँ ।। १६ ।।

यहाँ पर मैं सारे संसार से योगियों को मुक्त करनेवाला हूँ । मैं संपूर्ण संसार से रहित भी हूँ और संपूर्ण संसार का हेतु भी हूँ ।। १७ ।।

मैं ही संहार करनेवाला, सर्जन करनेवाला तथा पालन करनेवाला हूँ । मेरी मायावी शक्ति (माया) सब लोगों को मोहित करनेवाली है ।। १८ ।।

जो 'विद्या' नाम से गाई जाती है, वह मेरी ही परा शक्ति (का एक नाम) है । योगियों के हृदय में स्थित होनेवाला मैं इस (शक्ति) से माया का नाश करता हूँ ।। १९ ।।

सारी शक्तियों का प्रवर्तक और निवर्तक (मैं ही हूँ) तथा सबका आधारभूत और अमृत का निधान (भी) मैं ही हूँ ।। २० ।।

एक सर्वान्तरा शक्ति (ही) अनन्त, जगन्नाथ नारायण होकर सृष्टि को अनेक प्रकार से (उत्पन्न) करती है ।। २१ ।।

तीसरी महान् शक्ति (जो) सारे जगत का नाश करती है, वह तामसी, रुद्ररूपिणी तथा कालात्मा कहलाती है ।। २२ ।।

कई लोग मुझे ध्यान करके देखते हैं, तो कई लोग ज्ञान प्राप्त करके (देखते हैं) । अन्य लोग भक्तियोग द्वारा, तो दूसरे (कुछ लोग) कर्मयोग द्वारा मुझे प्राप्त करते हैं । इन सबमें मुझे यह (कर्मयोग) सर्वाधिक प्रिय है, जो विज्ञान से मेरा नित्य आराधन करते हैं । अन्य मेरे आराधन की अभिलाषा रखनेवाले जो तीन (प्रकार के) भक्त हैं, वे भी मुझी को प्राप्त करते हैं, संसार में नहीं आते । जो यह जान लेता है कि यह सब मुझसे ही व्याप्त है, वह अमर है ।। २३-२५ ।।

मैं स्वभाव से इस सारे संसार को वर्तमान के समान देखता हूँ । भगवान महेश्वर स्वयं समय आने पर उसका (संहार) करते हैं ।। २६ ।।

उस योगी, माया के स्वामी का विद्वानों के द्वारा शास्त्रों में योगरूप से वर्णन किया गया है । वही भगवान योगेश्वर महादेव महान् प्रभु हैं ।। २७ ।।

सारे सत्त्वों से महान तथा पर होने के कारण वह परमेश्वर कहा जाता है । महान ब्रह्ममय होने से वह ब्रह्मा कहलाता है ।। २८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।। २९ ।।
सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रिताः ।
तिष्ठामि योगी सततं यस्तद्वेद स वेदवित् ।। ३० ।।
इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम् ।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये ।। ३१ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे भक्तियोगो नाम
त्रयोदशः सर्गः ।। १३ ।।

चतुर्दशः सर्गः

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता ।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः ।। १ ।।
सर्वेषामेव वस्तूनामंतर्यामी पिता ह्यहम् ।
मय्यैवान्तःस्थितं सर्वं चाहं सर्वत्र संस्थितः ।। २ ।।
भवता चाद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम् ।
ममैषा ह्युपमा वत्स मायया दर्शिता मया ।। ३ ।।
सर्वेषामेव भावानामंतरा समवस्थितः ।
प्रेरयामि जगत्सर्वं क्रियाशक्तिरियं मम ।। ४ ।।
मयेदं चेष्टते विश्वं मत्स्वभावानुवर्ति च ।
सोऽहं काले जगत्कृस्नं करोमि हनुमन् किल ।। ५ ।।
संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु ।
आदिमध्यांतनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्तकः ।। ६ ।।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ।
ताभ्यां संजायते सर्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ।। ७ ।।
महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृंभितम् ।
यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः ।। ८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो मुझे महायोगेश्वर ईश्वर के रूप में जानता है, वह अचल योग से संपन्न होता है, इसमें (कोई) संशय नहीं ।। २९ ।।

अतः मैं ही परमानन्दमय और सबको प्रेरित करनेवाला देव हूँ । मैं सतत् योग में स्थित रहता हूँ, ऐसा जाननेवाला वेद को जानता है ।। ३० ।।

सभी वेदों में यह अत्यन्त गूढ़ ज्ञान निश्चित (किया गया) है । यह (ज्ञान) प्रसन्न चित्तवाले धार्मिक तथा आहिताग्नि को दिया जाय ।। ३१ ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तरकाण्ड में राम द्वारा भक्तियोग-निरूपण नाम त्रयोदश सर्ग समाप्त ।। १३ ।।

चतुर्दश सर्ग

श्री रामचन्द्र और महावीर का संवाद

मैं सारे लोक का एकमात्र निर्माता, सबका एकमात्र रक्षक, सब लोगों का एकमात्र संहार करनेवाला, सर्वात्मा (और) सनातन हूँ ।। १ ।।

मैं सब वस्तुओं का अन्तर्यामी पिता हूँ । मेरे अन्तःकरण में सब स्थित हैं तथा मैं सर्वत्र स्थित हूँ ।। २ ।।

तुमने मेरा जो अद्भुत रूप देखा है, हे वत्स ! यह मेरे ही समान है । मैंने (वह) माया करके दिखाया है ।। ३ ।।

सब भावों के अन्तर में मैं अवस्थित हूँ ! मैं सारे जगत को प्रेरित करता हूँ । यह मेरी क्रियाशक्ति है ।। ४ ।।

मैं इस विश्व को क्रियान्वित करता हूँ । यह मेरे स्वभाव का अनुवर्तन करता है । हे हनूमान ! मैं समय पर इस जगत का निर्माण करता हूँ ।। ५ ।।

एक (अन्य) रूप से मैं (ही इस जगत का) संहार (भी) करता हूँ । यह मेरी दो प्रकार की अवस्था है । आदि, मध्य तथा अन्त से मुक्त मैं मायातत्त्व का प्रवर्तक हूँ ।। ६ ।।

सृष्टि के आदि में मैं प्रधान और पुरुष दोनों को क्षुभित करता हूँ । उन दोनों के परस्पर संयुक्त होने से सबका निर्माण होता है ।। ७ ।।

महत् वग़ैरः के क्रम से मेरा तेज फैला हुआ है । जो संपूर्ण जगत का साक्षी तथा कालचक्र का प्रवर्तक है, ।। ८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिरण्यगर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देहसंभवः ।
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ॥ ९ ॥
दत्तवानात्मजान्वेदान् कल्पादौ चतुरः किल ।
स मन्नियोगतो ब्रह्मा सदा मद्भावभावितः ॥ १० ॥
दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम् ।
स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित् ॥ ११ ॥
भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसंभवः ।
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवाव्ययः ॥ १२ ॥
ममैव परमा मूर्तिः करोति परिपालनम् ।
योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः ॥ १३ ॥
मदाज्ञयाऽसौ सततं संहरत्येव मे तनुः ।
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ॥ १४ ॥
पाकं च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिचोदितः ।
भुक्तमाहारजातं यत्पचत्येतदहर्निशम् ॥ १५ ॥
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ।
यो हि सर्वांभसां योनिर्वरुणो देवपुंगवः ॥ १६ ॥
स संजीवयते सर्वमीशस्यैव नियोगतः ।
योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवो निरंजनः ॥ १७ ॥
मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि ।
योऽपि संजीवनो नृणां देवानाममृताकरः ॥ १८ ॥
सोमः स मन्नियोगेन चोदितः किल वर्तते ।
यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा ॥ १९ ॥
सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयंभुवः ।
योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः ॥ २० ॥
यज्ञानां फलदो देवो वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ।
यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह ॥ २१ ॥
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगत ।
योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां संप्रदायकः ॥ २२ ॥
सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा ।
यः सर्वरक्षसां नाथस्तापसानां फलप्रदः ॥ २३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(वह) हिरण्यगर्भ मार्तण्ड भी मेरी देह से उत्पन्न हुआ है। उसको मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्य, (तथा) सनातन ज्ञानयोग (एवं) मुझसे उत्पन्न चारों वेद कल्प के आरम्भ में दिये हैं। वह ब्रह्मा मेरे आदेश से सदा मद्भाव में भावित (होते हैं) ॥ ९-१० ॥

मेरा वह दिव्य ऐश्वर्य सदा स्वयं वहन करता है। मेरे आदेश से वह सर्वलोगों का निर्माता तथा सर्ववेत्ता है ॥ ११ ॥

स्वयंभू वह चतुर्मुख होकर सृष्टि करता है। जो नारायण अनन्त लोगों के प्रभु, अविनाशी हैं वे मेरी ही परममूर्ति हैं तथा (जगत का) पालन करते हैं। प्राणीमात्र का अन्त करनेवाले जो कालात्मा रुद्र प्रभु हैं, वह मेरा ही शरीर है और मेरी आज्ञा से नित्य सबका संहार करते हैं। वे सब देवताओं का हव्य वहन करते हैं तथा कव्य भक्षण करनेवालों का कव्य भी वहन करते हैं ॥ १२-१४ ॥

अग्नि जो पाक करता है, वह भी मेरी शक्ति से प्रेरित होकर तथा खाये हुए अन्न का अहर्निश पाचन भी करता है ॥ १५ ॥

भगवान वैश्वानर अग्नि मेरी आज्ञा से पाचन करते हैं। सब जल की जो योनि है, (वह) देवश्रेष्ठ वरुण भी ईश्वर की आज्ञा से ही सबको संजीवित करते हैं। जो निरंजन देव प्राणीमात्र के भीतर तथा बाहर स्थित हैं, ॥ १६-१७ ॥

वे मेरी ही आज्ञा से प्राणियों के शरीरों का भरण-पोषण करते हैं। देवताओं तथा मनुष्य के लिए जो संजीवन रूप हैं तथा अमृत का आकार हैं ॥ १८ ॥

वे सोम मेरी ही आज्ञा से प्रेरित होकर वर्तते हैं। जो अपने प्रकाश से समग्र जगत को प्रकाशित करते हैं ॥ १९ ॥

वे सूर्य ब्रह्मा के शास्त्र के अनुसार वर्षा करते हैं। संपूर्ण जगत का शासन करनेवाले, सर्व देवताओं के अधिपति जो इन्द्र हैं, ॥ २० ॥

वे यज्ञों का फल देनेवाले देव मेरी आज्ञा से वर्तते हैं। यहाँ दुर्जनों का शासन करनेवाले जो नियमानुसार व्यवहार करते हैं, ॥ २१ ॥

वे वैवस्वत देव यम भी देवाधिदेव के शासन के कारण (ही ऐसा) कर पाते हैं। सारी संपत्तियों के जो स्वामी हैं तथा धन देनेवाले हैं, ॥ २२ ॥

वे कुबेर भी सदा ईश्वर के आज्ञानुवर्ती हैं। राक्षसों के स्वामी तथा तपस्वियों के फलदाता हैं, ॥ २३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋतिः सदा ।
वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः ॥ २४ ॥
ईशानः सर्वभक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्ममाज्ञया ।
यो वामदेवोंगिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः ॥ २५ ॥
रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ।
यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्नकारकः ॥ २६ ॥
विनायको धर्मनेता सोऽपि मद्वचनात्किल ।
योऽपि वेदविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ॥ २७ ॥
स्कंदोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयंभूप्रतिचोदितः ।
ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः ॥ २८ ॥
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ।
या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम् ॥ २९ ॥
पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात् ।
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ॥ ३० ॥
सापीश्वरनियोगेन चोदिता संप्रवर्तते ।
याऽशेषपुरुषांघोरान्नरकात्तारयत्यपि ॥ ३१ ॥
सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायिनी ।
पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ॥ ३२ ॥
यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा ।
योऽनंतो महिमानंतः शेषोऽशेषाऽमरप्रभु ॥ ३३ ॥
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः ।
योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः ॥ ३४ ॥
पिबत्यखिलमंभोधिमीश्वरस्य नियोगत ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ ॥ ३५ ॥
अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छासनमधिष्ठिताः ।
गंधर्वा उरगा यक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ॥ ३६ ॥
भूतरक्षः पिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयंभुवः ।
कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षणाः ॥ ३७ ॥
ऋत्वब्दमासपक्षाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापते ।
युगमन्वंतराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने ॥ ३८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे देव निर्ऋति भी सदा मेरे नियोग से वर्तन करते हैं। बैताल-गण भूतों के स्वामी और भोगफल देनेवाले हैं ॥ २४ ॥

सब भक्तों के शास्ता हैं वे मेरी आज्ञा के अधीन रहते हैं। जो वामदेव अंगिरस के शिष्य तथा रुद्रगण के अग्रणी हैं, ॥ २५ ॥

तथा योगियों के रक्षक हैं, वे मेरी आज्ञा के अनुसार वर्तते हैं। जो संपूर्ण जगत के लिए पूज्य हैं, वे विघ्नकारक, धर्मनेता विनायक भी मेरी आज्ञा में स्थित हैं। वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ और देवसेना के जो पति हैं, ॥ २६-२७ ॥

वे देव स्कन्द भी स्वयम्भू की प्रेरणा के वशवर्ती हैं। प्रजा के पति मरीचि आदि जो महर्षि हैं, ॥ २८ ॥

वे ईश्वर की आज्ञा से ही विविध लोक की सृष्टि करते हैं। मनुष्यों को विपुल सम्पत्ति प्रदान करनेवाली जो लक्ष्मीदेवी हैं, ॥ २९ ॥

वे नारायण की पत्नी मेरे अनुग्रह से वर्तती हैं। विपुल वाणी का दान करनेवाली जो देवी सरस्वती हैं, ॥ ३० ॥

वे भी ईश्वर की आज्ञा से प्रेरित होकर वर्तती हैं। अनेक पुरुषों को घोर नरक से जो तारती हैं, ॥ ३१ ॥

वह सावित्री देवी देवाज्ञा का अनुसरण करती हैं। ब्रह्मविद्या देनेवाली परमादेवी पार्वती, ॥ ३२ ॥

जिसका विशेष रूप से ध्यान किया जाता है, वह भी मेरे वचन के अनुसार व्यवहार करती हैं। समग्र देवताओं का प्रभु अनन्त, जो अनन्त महिमावान हैं (और) ॥ ३३ ॥

जो (अपने) सिर पर (इस) लोक को धारण करते हैं, वे भी देव के आदेश से ही (विद्यमान) हैं। नित्य संवर्तक वडवा-रूप में स्थित जो अग्नि हैं, ॥ ३४ ॥

वे भी ईश्वर के नियोग से समूचे समुद्र का पान कर जाते हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत् तथा अश्विनीकुमार (और) ॥ ३५ ॥

दूसरे भी सारे देवतागण मेरे शासन में अधिष्ठित हैं। गंधर्व, सर्प, यक्ष, सिद्ध, साध्य तथा चारण, ॥ ३६ ॥

भूत, राक्षस तथा पिशाच स्वयंभू की आज्ञा में स्थित हैं। कला, काष्ठ, निमेष, मुहूर्त, दिवस तथा क्षण, ॥ ३७ ॥

ऋतु, वर्ष, मास तथा पक्ष प्रजापति के शासन में स्थित हैं। युग तथा मन्वन्तर भी मेरे शासन में हैं ॥ ३८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परार्श्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ।
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।। ३९ ।।
नियोगादेव वर्तन्ते सर्वाण्येव स्वयंभुवः ।
पत्तनानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।। ४० ।।
ब्रह्मांडानि च वर्तन्ते देवस्य परमात्मनः ।
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्मांडानि महाज्ञया ।। ४१ ।।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समं ततः ।
ब्रह्मांडानि भविष्यंति सह वस्तुभिरात्मगैः ।। ४२ ।।
हरिष्यंति सहैवाज्ञां परस्य परमात्मनः ।
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।। ४३ ।।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगान्मम वर्तते ।
याऽशेषसर्वजगतां मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।। ४४ ।।
मायापि वर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः ।
विधूय मोहकलिलं यथा पश्यति पत्पदम् ।। ४५ ।।
सापि विद्या महेशस्य नियोगाद्वशवर्तिनी ।
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।। ४६ ।।
मयैव पूर्यते विश्वं मय्यैव प्रलयं व्रजेत् ।
अहंहि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ।। ४७ ।।
परमात्मा परंब्रह्म मत्तो ह्यन्यत्र विद्यते ।
इत्येतत्परमं ज्ञानं भवते कथितं मया ।। ४८ ।।
ज्ञात्वा विमुच्यते जंतुर्जन्म संसारबंधनात् ।
मायामाश्रित्य जातोऽहं गृहे दशरथस्य हि ।। ४९ ।।
रामोऽहं लक्ष्मणो ह्येष शत्रुघ्नो भरतोऽपि च ।
चतुर्धा संप्रभूतोऽहं कथितं तेऽनिलात्मज ।। ५० ।।
मायास्वरूपं च तव कथितं यत्प्लवंगम ।
कृपया तद्धृदा धार्यं न विस्मर्तव्यमेव हि ।। ५१ ।।
येनायं पठ्यते नित्यं संवादो भवतो मम ।
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ५२ ।।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छुद्धान्ब्रह्मचर्यपरायणान् ।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम् ।। ५३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परा, परार्ध तथा अन्य जो भी कालभेद हैं तथा स्थावर-जंगम चार प्रकार के जो प्राणी हैं, ।। ३९ ।।

वे सारे स्वयंभू की आज्ञा के वशवर्ती हैं। सारे पत्तन तथा सब भुवन भी ईश्वर के शासन में हैं ।। ४० ।।

ब्रह्माण्ड भी परमात्मा के शासन से वर्तते हैं। असंख्य अतीत ब्रह्माण्ड भी महाज्ञा से, ।। ४१ ।।

सर्वत्र पदार्थों के समूह के साथ प्रवृत्त होते हैं। ब्रह्माण्ड अपनी सारी वस्तुओं के साथ उत्पन्न होंगे ।। ४२ ।।

(तथा) वे सब साथ ही परम परमात्मा की आज्ञा को वहन करेंगे। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन तथा बुद्धि, ।। ४३ ।।

भूतादि वग़ैरः प्रकृति सब मेरी आज्ञा से वर्तते हैं। जो समग्र जगत को तथा सर्व देहधारियों को मोहित करती है, वह ।। ४४ ।।

माया भी सदा ईश्वर की आज्ञा से ही वर्तती है। मोहकलिल को दूर करके जिससे परमपद देखा जाता है, ।। ४५ ।।

वह विद्या भी महान् देव के नियोग के वश में हैं। अब अधिक कहने से क्या (लाभ) ? यह जगत मेरी शक्ति से युक्त है ।। ४६ ।।

मुझसे ही यह जगत पूर्ण होता है तथा मुझसे ही प्रलय को प्राप्त होता है। मैं ही भगवान, ईश्वर, स्वयंज्योति तथा सनातन हूँ ।। ४७ ।।

मैं परमात्मा परब्रह्म (हूँ) मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। यह परमज्ञान मैंने तुमसे कहा है ।। ४८ ।।

(इसे) जानकर प्राणी जन्म तथा संसार के बन्धन से मुक्त होता है। माया का आश्रय लेकर मैंने दशरथ (राजा) के घर में जन्म धारण किया है ।। ४९ ।।

मैं राम हूँ तथा लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत भी हूँ। हे वायु-पुत्र ! मैंने चार प्रकार से अपना रूप प्रगट किया है ।। ५० ।।

हे वानर ! माया का स्वरूप भी मैंने तुझे बताया है। कृपा करके उसे हृदय में धारण करना। (कदापि) उसका विस्मरण नहीं करना ।। ५१ ।।

जो तुम्हारे और मेरे इस संवाद का नित्य पाठ करेगा, वह जीवन्मुक्त होगा तथा सर्व पापों से मुक्त होगा ।। ५२ ।।

जो ब्रह्मचर्यपरायण शुद्ध ब्राह्मणों को इसका श्रवण करायेगा या तो इसके अर्थ का विचार करेगा, वह परमगति प्राप्त करेगा ।। ५३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।। ५४ ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः ।
श्रोतव्यश्चापि मंतव्यो विशेषाद्ब्राह्मणैः सदा ।। ५५ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे भगवद्धनुमत्संवादो
नाम चतुर्दशः सर्गः ।। १४ ।।

पञ्चदशः सर्गः

ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना बद्धांजलिर्वायुसुतो महात्मा ।
ओंकारमुच्चार्य विलोक्य देवमंतः शरीरे निहितं गुहायाम् ।। १ ।।

रामं महात्मानमकुंठशक्ति सनंदमुख्यैः स्तुतमप्रमेयम् ।
तुष्टाव च ब्रह्ममयैर्वचोभिरानंदपूर्णायितमानसः सन् ।। २ ।।

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं राममनन्तयोगम् ।
नमामि सर्वांतरसन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ।। ३ ।।

पश्यंति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दांताः शांता विमलं रुक्मवर्णम् ।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परं च ।। ४ ।।

त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः सर्वात्मसृष्टेः परमाणुभूतः ।
अणोरणीयान्महतोमहीयांस्त्वामेव सर्वं प्रवदंति संतः ।। ५ ।।

हिरण्यगर्भो जगदंतरात्मा त्वत्तोऽधिजातः पुरुषः पुराणः ।
स जायमानो भवता विसृष्टो यथाविधानं सकलं ससर्ज ।। ६ ।।

त्वत्तो वेदाः सकलाः संप्रवृत्तास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभंते ।
पश्यामि त्वां जगतो हेतुभूतं नृत्यंतं स्वे हृदये संनिविष्टम् ।। ७ ।।

त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रं मायावी त्वं जगतामेकनाथः ।
नमामि त्वां शरणं संप्रपद्ये योगात्मानं चित्पतिं दिव्यनृत्यम् ।। ८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो भक्तियुक्त और दृढ़व्रत होकर इसका नित्य श्रवण करेगा, वह सारे पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में आनन्द करेगा ।। ५४ ।।

अतः सर्व प्रयत्नों से विद्वानों को— विशेष करके ब्राह्मणों को इसका सदा पठन, श्रवण तथा मनन करना चाहिए ।। ५५ ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्‌भुतोत्तरकाण्ड में 'भगवत्-हनुमत् संवाद'
नाम चतुर्दश सर्ग समाप्त ।। १४ ।।

पञ्चदश सग

हनुमान द्वारा श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति

महात्मा वायुसुत ने हृदय में स्थित (भगवान) का ध्यान करके, सिर से प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, ओंकार का उच्चारण करके, प्राणियों के हृदय के भीतर रहनेवाले देव का दर्शन करके, ।। १ ।।

आनंद से पूर्ण चित्तवाले होकर ब्रह्ममय वचनों से, अकुण्ठशक्ति सनन्दादि प्रमुख (ऋषियों) से स्तुति किये जानेवाले अप्रमेय भगवान राम की स्तुति की ।। २ ।।

ईश, पुराण, प्राणेश्वर, अनन्तयोगवाले, सबके अन्तरात्मा में स्थित प्रचेतस्, ब्रह्ममय राम को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ३ ।।

आत्मा में स्थित, अचल, कवि, पर से भी परे का अपने शरीर में ध्यान करके दान्त, शान्त ऐसे मुनिजन ब्रह्मयोनि, विमल रुक्मवर्ण आपको देखते हैं ।। ४ ।।

जगत् की उत्पत्ति आपसे हुई है। आप अपनी समग्र सृष्टि के परमाणुभूत हैं। आप अणु से भी सूक्ष्म तथा महत्-तत्त्व से भी बड़े हैं। आप ही को सब संत कहते हैं ।। ५ ।।

हे जगत् के अन्तरात्मा पुराण-पुरुष ! आपसे ही हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई है। आपसे उत्पन्न होकर जन्म लेते ही उसने विधान के अनुसार सकल जगत का सर्जन किया ।। ६ ।।

सब वेद आपसे ही निकले हैं। अन्त में वे सब आप में ही विलीन हो जाते हैं। मैं जगत के हेतुभूत, अपने हृदय में स्थित और नृत्य करनेवाले आपको देखता हूँ ।। ७ ।।

यह ब्रह्मचक्र आपके द्वारा ही घुमाया जाता है। आप मायावी ही जगत के एक-मात्र नाथ हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। योगात्मा, चित्पति, दिव्यनृत्यरूप आपकी शरण में मैं आता हूँ ।। ८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्यामि त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यंतं ते महिमानं स्मरामि ।
सर्वात्मानं बहुधा संनिविष्टं ब्रह्मानंदमनुभूयानुभूय ।। ९ ।।

ओंकारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम् ।
तं त्वां सत्यं प्रवदन्तीह संतः स्वयंप्रभं भवतो यत्प्रकाशम् ।। १० ।।

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्वदेवा नमंति त्वामृषयः क्षीणदोषाः ।
शांतात्मानः सत्यसंधं वरिष्ठं विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ।। ११ ।।

एको वेदो बहुशाखो ह्यनंतस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।
संवेद्यं त्वां शरणं ये प्रपन्नास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ।। १२ ।।

भवानीशोऽणिमादिमांस्तेजोराशिर्ब्रह्मविश्वं परमेष्ठी वरिष्ठः ।
आत्मानंदं चानुभूयानुशेते स्वयंज्योतिर्वचनो नित्यमुक्तः ।। १३ ।।

एको देवस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः ।
त्वय्येवास्ते विलयं विन्दतीदं नमामि त्वां शरणं त्वां प्रपन्नः ।। १४ ।।

त्वामेकमाहुः परमं च रामं प्राणं वहन्तं हरिमित्रमीशम् ।
इन्दुं मृत्युमनलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ।। १५ ।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ।। १६ ।।

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः ।
त्वं विश्वनाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ।। १७ ।।

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिंत्यरूपं खं ब्रह्मशून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च ।। १८ ।।

यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।
किमप्यचिंत्यं तव रूपमेतत्तदंतरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ।। १९ ।।

योगेश्वरं रूपमनन्तशक्तिं परायणं ब्रह्मतनुं पवित्रम् ।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते प्रसीद ।। २० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परम आकाश के मध्य में मैं आपको देखता हूँ। ब्रह्मानंद का अनुभव करते हुए मैं नृत्य करनेवाले, सर्वात्मा, अनेक रूप से स्थित आपकी महिमा का स्मरण करता हूँ ॥ ९ ॥

ओंकार आपका वाचक मुक्तिबीज है। आप अक्षर प्रकृति में गूढ़ रूप हैं। सन्त आपको यहाँ सत्यस्वरूप कहते हैं। आपका प्रकाश स्वयं-प्रकाशमान है ॥ १० ॥

सब देवता आपकी निरंतर स्तुति करते हैं। जिनके दोष क्षीण हो गये हैं, ऐसे ऋषि आपको नमस्कार करते हैं, शांत मनवाले ब्रह्मनिष्ठ यति, सत्यसंध, वरिष्ठ ऐसे आप में प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥

एक ही वेद बहुशाखा वाला अनन्त है। (वह) आप एक को ही एक रूप से बोधित कराता है। जानने योग्य ऐसे आपकी शरण में जो आते हैं, उन्हीं को शाश्वत् शांति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं ॥ १२ ॥

(वह) भवानीपति अणिमादि से युक्त तेज की राशि, विश्वपरमेष्ठी वरिष्ठ, आत्मानंद का अनुभव करता हुआ, स्वयंज्योति नामवाला तथा नित्य मुक्त हैं ॥ १३ ॥

एक ही आप देव सम्पूर्ण विश्व (सृष्टि) को उत्पन्न करते हैं। विश्वरूप आप सबका पालन करते हैं। आप में ही सब कुछ विलीन हो जाता है। आपकी शरण में आकर मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥

आप ही को परम, राम, प्राणदाता, हरि, मित्र, ईश, चन्द्र, मृत्यु, प्रदीप्त अग्नि, धाता, आदित्य आदि अनेक रूप वाले कहते हैं ॥ १५ ॥

आप ही अक्षर, परम जानने योग्य हैं। आप ही इस विश्व के परम निधानरूप हैं। आप अव्यय, शाश्वत् धर्मगोप्ता हैं। आप सनातन पुरुषोत्तम हैं ॥ १६ ॥

आप ही विष्णु हैं, आप ही ब्रह्मा हैं तथा आप ही रुद्र एवं भगवान् ईश हैं। आप ही विश्व की नाभि, प्रकृति तथा प्रतिष्ठा हैं। आप सर्वेश्वर तथा परमेश्वर हैं ॥ १७ ॥

आपको एकमात्र पुराण-पुरुष, सूर्यपर्ण, अंधकार से परे बताते हैं। आप चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिंत्यरूप, आकाश, ब्रह्मशून्य प्रकृति तथा निर्गुण हैं ॥ १८ ॥

जिसके भीतर यह सर्व प्रकाशित होता है, वह अव्यय, निर्मल तथा एकरूप है। आपका यह रूप अचित्य है जिसके भीतर तत्त्व प्रकाशित होता है ॥ १९ ॥

योगेश्वररूप, अनन्त शक्तिवाले, परायण, ब्रह्मतनु, पवित्र ऐसे आपको हम सब शरणार्थी नमस्कार करते हैं। हे भूताधिपते, प्रसन्न होइए ॥ २० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषं संसारबीजं विलयं प्रयाति ।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयाम्येकरसं भवन्तम् ।। २१ ।।

नमोऽस्तु रामाय भवोद्भवाय कालाय सर्वैकहराय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु रामाय कपर्दिने ते नमोऽग्नये दर्शय रूपमग्र्यम् ।। २२ ।।

ततः स भगवान्रामो लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवत्स्वयम् ।। २३ ।।

स तस्य स्तवमाकर्ण्य वायुपुत्रस्य धीमतः ।
प्राह गम्भीरया वाचा हनूमन्तं रघूत्तमः ।। २४ ।।

स्तोष्यंति येऽनया स्तुत्या ते यास्यन्ति परां गतिम् ।
स्थिरो भव हनूमंस्त्वं कार्यमौपायिकं कुरु ।। २५ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे हनुमत्कृतस्तवराजे
पञ्चदशः सर्गः ।। १५ ।।

षोडशः सर्गः

रामः प्रत्याह च पुनर्हनूमन्तं महाद्युतिः ।
रक्षसा मे हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।। १ ।।

सुग्रीवेण समं सख्यं कारयाद्य प्लवङ्गम ।
हसित्वा मधुरं वीरो हनूमानब्रवीद्वचः ।। २ ।।

तव भार्या महाभाग रावणेन हृतेति यत् ।
विश्वं यथेदमाभाति तथेदं प्रतिभाति मे ।। ३ ।।

तथापि प्रभुणादिष्टं कार्यमेव हि किंकरैः ।
इत्युक्त्वा हनुमांस्तूर्णं प्रसन्नेनांतरात्मना ।। ४ ।।

आरोप्य स्कंधयोर्वीरौ सुग्रीवांतिकमानयत् ।
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीवो वानरोत्तमः ।। ५ ।।

वालिनं तं जितं मेने प्राप्तां मेने रुमां स्त्रियम् ।
सख्यं चकार रामेण दिष्ट्यादिष्ट्येति चाब्रवीत् ।। ६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपके चरण-कमलों के स्मरण से समग्र संसारबीज नष्ट हो जाता है। मन का नियमन करके, काया का प्रणिधान करके एकरस आपको मैं प्रसन्न करता हूँ ।। २१ ।।

संसार के उत्पत्ति-कारण, सबका संहार करनेवाले, कालस्वरूप आप राम को नमस्कार। कपर्दि (भगवान शंकर का एक विशेषण) अग्नि-स्वरूप राम को नमस्कार। हे राम! आपका पहले का स्वरूप दिखाइए ।। २२ ।।

तब लक्ष्मण-सहित भगवान राम अपने उस परम रूप को समेटकर स्वयं मूल रूप में स्थित हो गये ।। २३ ।।

उस बुद्धिमान वायुपुत्र हनुमान की स्तुति सुनकर रघुश्रेष्ठ गंभीर वाणी में उससे कहने लगे— ।। २४ ।।

"जो इस स्तुति द्वारा स्तुति करेंगे, वे परागति को प्राप्त करेंगे। हे हनुमान्! तुम स्थिर (स्वस्थ) हो जाओ एवं उपयुक्त कार्य करो" ।।२५।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-काण्ड में हनुमान द्वारा रामचंद्रजी की स्तुति नाम पंचदश सर्ग समाप्त ।। १५ ।।

षोडश सर्ग

श्री रामचंद्रजी द्वारा रावण का वध और राज्य-प्राप्ति

महातेजस्वी राम हनुमान को फिर कहने लगे— "दुरात्मा राक्षस रावण ने मेरी भार्या का अपहरण किया है ।। १ ।।

हे वानर! सुग्रीव के साथ (हमारी) मैत्री करवा दो।" (तब) वीर हनुमान हँसकर मधुर (वचन) बोले— ।। २ ।।

"हे महाभाग! रावण ने आपकी भार्या का अपहरण किया है! यह विश्व जिस प्रकार (मुझे स्पष्ट रूप से) दिखाई देता है, वैसे ही (मानो) यह (भी) मुझे प्रतीत हो रहा है ।। ३ ।।

फिर भी स्वामी की जो आज्ञा हो उसका पालन सेवकों को (अवश्य) करना चाहिए।" ऐसा बोलकर प्रसन्न अन्तरात्मा से हनुमान शीघ्र ही ।। ४ ।।

दोनों वीरों को (अपने) कंधों पर बिठाकर सुग्रीव के पास ले गये। उन दोनों पुरुषश्रेष्ठों को देखकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ।। ५ ।।

वाली को जीता हुआ तथा अपनी पत्नी 'रुमा' को (पुनः) प्राप्त हुई मानने लगा। अपने भाग्य की सराहना करके उसने राम के साथ मित्रता की ।। ६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वालिनो विलयं कृत्वा राज्यं चास्मै निवेद्य च ।
नानादेश्यान्वानरांश्च आनाय्य रघुनन्दनौ ॥ ७ ॥

हनूमदंगदारूढौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सिंधोस्तटं तौ ययतुः सुग्रीवेण सह प्रभुः ॥ ८ ॥

पारे समुद्रं लंकां च निरूप्याह रघूत्तमः ।
वानरा हि यथा यांति लंकां लक्ष्मण तत्कुरु ॥ ९ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा समुद्रं प्राह लक्ष्मणः ।
सिंधो त्वं स्तभयात्मानं यथा यास्यन्ति वानराः ॥ १० ॥

सिन्धुस्तु प्रभुणादिष्टं न शुश्राव यदा तदा ।
लक्ष्मणः क्रोधसंदीप्तः पपाताब्धेर्जलांतरे ॥ ११ ॥

तद्देहवह्निशिखया शुशोष जलधेर्जलम् ।
यादांसि स्थलभाजीनि देवा भीता दिशोऽद्रवन् ॥ १२ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वानरा विस्मयं गताः ।
हाहाकारं प्रचुक्रुस्ते लोकाः सर्वं चराचराः ॥ १३ ॥

ऋषयो भूतसंघाश्च स्वस्तिस्वस्तीति चाब्रुवन् ।
राघवो लक्ष्मणं प्राह नैतद्युक्तं त्वया कृतम् ॥ १४ ॥

पुनरेनं पूरयामि सीताविरहजेन वै ।
अश्रुणेति प्रतिज्ञाय तं तथा पूरयत्प्रभुः ॥ १५ ॥

रामोपरि तदाकाशात्पुष्पवृष्टिः पपात ह ।
लोकाश्च सुस्थिता आसंश्चिन्तयित्वा पुनःपुनः ॥ १६ ॥

सिंधुना संस्तुतो रामः सेतुं सिंधौ वबंध ह ।
लंकायां रावणं हत्वा सगणं मधुसूदनः ॥ १७ ॥

आरोप्य पुष्पके सीतां विभीषणसहायवान् ।
अयोध्यामगमद्रामः सुग्रीवहनुमदादिभिः ॥ १८ ॥

आनंदे योजयामास भ्रातॄन्मातॄंश्च बांधवान् ।
राजा सर्वस्य लोकस्य प्रजानामनुरंजनः ॥ १९ ॥

रामं राजानमासाद्य तिर्यञ्चोऽपि ययुर्मुदम् ॥
देवदुन्दुभयो नेदुः सर्वदा हि नभस्तले ।
ववृषुर्जलदाः काले पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ २० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाली का संहार करके उस (सुग्रीव) को राज्य देकर, देश-देशान्तरों से वानरों को बुलाकर रघुनंदन ।। ७ ।।

राम-लक्ष्मण दोनों भाई, हनूमान तथा अंगद पर आरूढ़ हो के सुग्रीव के साथ सागर के किनारे गये ।। ८ ।।

सागर के पार लंका को देखकर रामचंद्रजी ने कहा— "हे लक्ष्मण ! (सभी) वानर लंका पहुँच जायँ, ऐसा कोई उपाय करो" ।। ९ ।।

राम के वचन सुनकर लक्ष्मण समुद्र से कहने लगे— "हे सागर ! अपनी आत्मा को स्तम्भित करो जिससे वानर (उस पार) चले जायेंगे ।। १० ।।

जब समुद्र ने प्रभु के आदेश को अनसुना कर दिया, तब क्रोधाग्नि में जलते हुए लक्ष्मण समुद्र के जल में कूद पड़े ।। ११ ।।

उन (लक्ष्मण) की देहाग्नि की ज्वाला से समुद्र का पानी सूखने लगा । जलचर जीव स्थल पर आ गये तथा देवता भयभीत होकर चारों ओर दौड़ने लगे ।। १२ ।।

उस महान् आश्चर्य को देखकर वानर विस्मित हो गये तथा सर्व चराचर लोक हाहाकार करने लगे ।। १३ ।।

ऋषि तथा अन्य प्राणी 'स्वस्ति, स्वस्ति' कहने लगे । राघव ने लक्ष्मण से कहा— "यह तुमने उचित नहीं किया ।। १४ ।।

सीता-विरह के कारण उत्पन्न हुए अश्रु से मैं इसे पुनः भर देता हूँ" —ऐसी प्रतिज्ञा करके प्रभु ने उसे पूर्ववत् पूर्ण कर दिया ।। १५ ।।

उस समय आकाश से राम के ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी । पुनःपुनः विचार करके लोग स्वस्थ हुए ।। १६ ।।

सागर ने राम की स्तुति की । (और राम ने) समुद्र पर सेतु बाँधा । अपने गण-सहित मधुसूदन (राम) लंका में रावण को मारकर ।। १७ ।।

पुष्पक (विमान) में सीता को बिठाकर विभीषण तथा सुग्रीव, हनुमान वग़ैरः के साथ राम अयोध्या गये ।। १८ ।।

(तथा) भाइयों, माताओं एवं स्वजनों को आनंदित किया । वे सब लोक के राजा तथा प्रजा को आनन्द देनेवाले हुए ।। १९ ।।

राम को राजा के रूप में प्राप्त करके पशु-पक्षी भी आनन्दित हुए । सर्वदा आकाश में देव-दुन्दुभियाँ बजती रहीं । समय पर बादलों से वर्षा होती रही एवं पुष्पवृष्टि होने लगी ।। २० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे रामराज्योपलंभनं नाम
षोडशः सर्गः ।। १६ ।।

सप्तदशः सर्गः

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां क्षये कृते ।
आजग्मुर्मुनयस्तत्र राघवं प्रति नंदितुम् ।। १ ।।

विश्वामित्रो यवक्रीतो रैभ्यश्च्यवन एव च ।
कण्वश्च मुनिशार्दूलो ये पूर्वां दिशमाश्रिताः ।। २ ।।

स्वस्त्यात्रेयश्च नमुचोऽरिमुचोगस्त्य एव च ।
आजग्मुर्मुनयस्तत्र ये श्रिता दक्षिणां दिशम् ।। ३ ।।

उपगुः कामठो धूम्रो रौद्राश्वो मुनिपुंगवः ।
आजग्मुर्मुनयस्तत्र ये प्रतीचीं समाश्रिताः ।। ४ ।।

शिष्योपशिष्यसहिता वसिष्ठप्रमुखर्षयः ।
आजग्मुर्हि महात्मानं उत्तरां दिशमाश्रिताः ।। ५ ।।

प्राप्य ते तु महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ।
गृहीत्वा फलमूलानि हुताशसमविग्रहाः ।। ६ ।।

राघवं प्रतिनंद्याथ विविशुः परमासने ।
राघवश्च महातेजाः सीतया सह सुव्रत ।। ७ ।।

भ्रातृभिर्मंत्रिभिः सार्द्धं पौरैः श्रेणिमुखैस्तथा ।
विनीत उपसंगम्य पूजयामास तान्मुनीन् ।। ८ ।।

अगस्त्यप्रमुखा विप्रा दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रुवन् ।
राघवं प्रशशंसुस्ते मुनयो वाग्विदां वराः ।। ९ ।।

त्वं हि देवो जगन्नाथो जगतामुपकारकः ।
रावणस्य सुपुत्रस्य सामात्यस्य वधात्प्रभो ।। १० ।।

जगदेतन्महाबाहो पुनर्जातमिवाभवत् ।
न रावणादभ्यधिको दुष्टो लोकभयंकरः ।। ११ ।।

दशास्यैर्दशदिक्कार्यमाज्ञापयति राक्षसः ।
स दशास्यो हतो राम दिष्ट्या च जगदुद्धृतम् ।। १२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-काण्ड में रामचंद्रजी द्वारा राज्यप्राप्ति नामक षोडश सर्ग समाप्त ।। १६ ।।

सप्तदश सर्ग

जानकी-मुख से सहस्रवदन रावण का वृत्तान्त

श्रीराम ने जब राज्य प्राप्त किया तब राक्षसों का संहार करने के कारण राम को अभिनन्दन देने के प्रयोजन से मुनि लोग (दरबार में) आये ।। १ ।।

विश्वामित्र, यवक्रीत, रैभ्य, च्यवन तथा मुनिश्रेष्ठ कण्व जो पूर्व दिशा में निवास करनेवाले ऋषि थे, वे आये ।। २ ।।

दक्षिण दिशा में रहनेवाले स्वस्ति, आत्रेय, नमुच, अरिमुच तथा अगस्त्य (ऋषि आये) ।। ३ ।।

पश्चिम दिशा में रहनेवाले जो उपगुप्त, कामठ, धूम्र तथा मुनिश्रेष्ठ रौद्राश्व थे, वे उपस्थित हुए ।। ४ ।।

(तथा) उत्तर दिशा का आश्रय लेकर निवास करनेवाले प्रमुख ऋषि वसिष्ठ अपने शिष्यों-उपशिष्यों-सहित पधारे ।। ५ ।।

ये सब अग्नि के समान (जाज्वल्यमान) शरीरवाले महात्मा राम के निवासस्थान में पधारकर, फल-मूलादि ग्रहण करके ।। ६ ।।

राम को अभिनन्दन देकर परमासन में स्थित हुए। सुव्रत महा-तेजस्वी राम भी सीता के साथ ।। ७ ।।

तथा भाइयों, मंत्रियों और प्रमुख पुरवासियों के साथ विनीत होकर आये और उन मुनियों का पूजन किया ।। ८ ।।

वक्ताओं में श्रेष्ठ अगस्त्य आदि प्रमुख ऋषियों ने 'धन्य हो, धन्य हो' —ऐसा कहकर राघव की प्रशंसा की ।। ९ ।।

"हे देव ! पुत्रों तथा अमात्यों-सहित रावण का वध करने के कारण आप ही जगत के नाथ और जगत का उपकार करनेवाले हैं ।। १० ।।

हे महाबाहो ! यह जगत् मानो फिर से उत्पन्न हुआ है। लोगों को भय देनेवाला रावण से अधिक दुष्ट कोई न था। वह राक्षस दस मुखों से दसों दिशाओं में आज्ञा देता था। उस दस मुखवाले का आपने संहार किया है। सद्भाग्य से आपने जगत् का उद्धार कर दिया है ।। ११-१२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवानसि भूपाल ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।
पुंडरीकविशालाक्षः श्याम आजानुबाहुकः ।। १३ ।।
अयोध्यायां प्रादुरभूदिक्ष्वाकुकुलनंदनः ।
त्वद्दर्शनान्महाबाहो निर्वृताः स्मो वयं प्रभो ।। १४ ।।
तपश्चरामः सहितास्त्वत्प्रसादाद्वनेवने ।
किन्तु सीता महादेवी प्राप दुःखं महत्प्रभो ।। १५ ।।
तदेव स्मर्यमाणं सच्चित्तमुद्वेजयेद्धि नः ।
एवमुक्ते तु मुनिभिः सानुक्रोशं पुनःपुनः ।। १६ ।।
जहास मधुरं साध्वी सीता जनकनंदिनी ।
उवाच सस्मितं देवी तान्मुनीन्मितभाषिणी ।। १७ ।।
मुनयो यद्यदुक्तं हि रावणस्य वधं प्रति ।
परिहास इवाभाति प्रशंसनमिदं द्विजाः ।। १८ ।।
रावणो हि दुराचारः सत्यमेतन्न संशयः ।
दशभिर्वदनैर्वीरो जगदुद्वेजको हि सः ।। १९ ।।
दशास्यस्य वधो विप्रा न प्रशंसामिहार्हति ।
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो विस्मयं परमं गताः ।। २० ।।
किमेतदिति होचुस्ते परस्परमुखेक्षणाः ।
अयोनिसंभवा सीता काकुत्स्थकुलमाश्रिता ।। २१ ।।
अस्मानपि जहासेयं किमेतन्नैव विद्महे ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।। २२ ।।
सीता भीता प्रणम्योचे कृतांजलिपुटा सती ।
पृथग्जनेव मुनयो नाहमनृतभाषिणी ।। २३ ।।
यदि चाज्ञापयथ मां तदा वक्ष्यामि चादितः ।
अगस्त्यप्रमुखा विप्राः सीताया विनयान्वितम् ।। २४ ।।
आकर्ण्य वचनं प्रीताः प्रोचुस्ते कथ्यतामिति ।
तवः सीता महाभागा प्रवक्तुमुपचक्रमे ।। २५ ।।
पतिं मुनीन्देवरांश्च मंत्रिणः श्रेणिमुख्यकान् ।
विनयेनाभ्यनुज्ञाप्य पूर्ववृत्तांतमादरात् ।। २६ ।।
पूर्वं विवाहान्मुनयो यदास पितृमंदिरे ।
तदैकोऽतिथिरूपेण ब्राह्मणः समुपागतः ।। २७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे भगवन् ! पहले ब्रह्माजी ने आपसे प्रार्थना की थी। अतः आप राजा हुए हैं। आपके नेत्र कमल जैसे विशाल हैं, आप श्यामवर्ण तथा जानुपर्यन्त लंबी भुजाओंवाले हैं ।। १३ ।।

इक्ष्वाकु-कुल को आनन्द देनेवाले आप अयोध्या में प्रगट हुए हैं। हे महाबाहु ! प्रभु ! आपके दर्शन से हम आनन्दित हुए हैं ।। १४ ।।

हे राम ! आपकी कृपा से ही हम वन-वन में तपश्चर्या करते हैं। किन्तु हे प्रभो ! महादेवी सीता ने महादुःख पाया है ।। १५ ।।

उसी का स्मरण करने पर हमारा चित्त उद्विग्न हो उठता है।" मुनियों ने जब अनुकंपावश बार-बार ऐसे वचन कहे, तब जनकपुत्री, साध्वी सीता ने मधुर हास्य किया। वह मितभाषिणी देवी स्मितपूर्वक मुनियों से (इस प्रकार कहने लगीं) ।। १६-१७ ।।

"हे मुनियो ! रावण के वध के बारे में आपने जो कुछ कहा है, वह सारी प्रशंसा, हे ब्राह्मणो ! मुझे परिहास-सी प्रतीत होती है ।। १८ ।।

यह सच है कि रावण अवश्य दुराचारी था। इसमें (कोई) शंका नहीं है। वह (अपने) दस मुखों से (संपूर्ण) जगत् को उद्विग्न करता था ।। १९ ।।

(किन्तु) हे विप्रो ! दस मुखवाले का वध इस प्रसंग में प्रशंसा करने योग्य नहीं जान पड़ता" यह सुनकर मुनि अत्यन्त विस्मित हुए ।। २० ।।

वे एक-दूसरे के मुख की ओर देखते हुए पूछने लगे— "यह क्या (बात) है ?" तथा (बोले—) "अयोनिजा तथा इक्ष्वाकु-कुल का आश्रय करनेवाली सीता ।। २१ ।।

हम पर भी हँस रही हैं ? यह क्या है, हम नहीं जानते"। तब उन संभावित मुनियों के ऐसे वचन सुनकर डरी हुई सीता हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगीं— "हे मुनियो ! मैं सामान्य मनुष्य के समान असत्य बोलनेवाली नहीं हूँ ।। २२-२३ ।।

यदि आप आज्ञा करें तो मैं शुरू से कहूँ।" अगस्त्यप्रमुख विप्र सीता के विनयपूर्ण वचन सुनकर प्रसन्न हुए तथा वे बोले— "कहिए"। तब महाभागा सीता ने बोलना प्रारंभ किया ।। २४-२५ ।।

पति, मुनि, देवर, मंत्री तथा श्रेणी के मुख्य लोगों को विनय से प्रणाम करके आदरपूर्वक पूर्ववृत्तान्त (बताने लगीं) ।। २६ ।।

हे मुनियो ! विवाह के पूर्व मैं जब पिता के घर में (निवास करती) थी, तब अतिथिरूप में एक ब्राह्मण आया ।। २७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगत्य पितरं मह्यं तमुवाच द्विजोत्तमः ।
चतुरो वार्षिकान्मासान्स्थास्यामि तव मंदिरे ।। २८ ।।
यदि सेवापरो नित्यं भवस्यमरसन्निभः ।
जनको मत्पिता देवद्विजभक्तिपरायणः ।। २९ ।।
ब्राह्मणं वासयामास नानाभक्ष्यं समादिशत् ।
अहं च तस्य सेवायै नियुक्ता धर्मभीरुणा ।। ३० ।।
यदा यथाज्ञापयति द्विजः स परमार्थवित् ।
तं तथा ह्यकरवं तत्र रात्रिंदिवमतन्द्रिता ।। ३१ ।।
नानातीर्थाभिगमनं कृतं तेन महात्मना ।
तत्रत्याश्च कथाश्चित्राः श्रावयामास मां द्विजः ।। ३२ ।।
सेवया मम धैर्येण चानुकूल्येन तर्पितः ।
कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः प्रियभाषी यदात्थ माम् ।। ३३ ।।
तद्वोऽहमभिधास्यामि श्रृणुत द्विजपुंगवाः ।
एकदा प्रातरुत्थाय कृतमैत्रः कृताह्निकः ।। ३४ ।।
सीते इति समाभाष्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।
श्रृणु सीते मया दृष्टमाश्चवर्यं कमलानने ।। ३५ ।।
दधिमंडोदकाब्धेश्च परः स्वादूदकोऽब्धिकः ।
पुष्करद्वीपमावृत्य वर्तते वलयाकृतिः ।। ३६ ।।
पुष्करं पुष्करे दृष्टं महावह्निशिखोज्ज्वलम् ।
पत्रायुतायुतयुतं ब्रह्मणः परमासनम् ।। ३७ ।।
तद्द्वीपवर्षयोर्मध्ये मानसोत्तरसंज्ञकः ।
मर्यादापर्वतो दैर्घ्ये चायामेऽयुतजोजनः ।। ३८ ।।
तच्छैलस्य चतुर्दिक्षु इंद्रादीनां पुराणि हि ।
क्रीडार्थं निर्मितान्येषां महांति विश्वकर्मणा ।। ३९ ।।
सुमाली राक्षसश्रेष्ठः कैकसी नाम तत्सुता ।
मुनेर्विश्रवसः पत्नी सासूत रावणद्वयम् ।। ४० ।।
एकः सहस्रवदनो द्वितीयो दशवक्त्रकः ।
जन्मकाले सुरैरुक्तमाकाशे रावणद्वयम् ।। ४१ ।।
लोकानां रावणाज्जातं नामयौगिकमेतयोः ।
कनिष्ठो दशकंठोऽयं शितिकंठप्रसादतः ।। ४२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने मेरे पिताजी से कहा— "मै तुम्हारे घर में चार महीने तक रहूँगा ।। २८ ।।

यदि तुम मेरी सेवा में परायण रहोगे तो देव के समान हो जाओगे।" देव (और) ब्राह्मण के प्रति भक्तिपरायण मेरे पिता जनक ने ब्राह्मण को (अपने घर में) निवास कराया, नाना प्रकार की भक्ष्य-सामग्री का आदेश दिया तथा उस धर्मभीरु ने मुझे उस (ब्राह्मण) की सेवा में नियुक्त किया ।। २९-३० ।।

परमार्थ को जाननेवाले वे ब्राह्मण जो-जो आज्ञा करते थे, मैं दिन-रात आलस्य-रहित होकर उन (सब) का पालन करती थी ।। ३१ ।।

उस महात्मा ने अनेक तीर्थों में अभिगमन किया था। वे ब्राह्मण मुझे वहाँ की चित्र-विचित्र कथाएँ सुनाने लगे ।। ३२ ।।

मेरी सेवा, धैर्य एवं अनुकूलता से वे तृप्त हुए। एक बार वे प्रियभाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ मुझे (जो) कहने लगे— ।। ३३ ।।

वह 'हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! सुनिए; मैं आपसे कहती हूँ।' एक बार प्रातःकाल उठकर, सूर्य की पूजा करके 'हे सीते !' ऐसा संबोधन करके उन्होंने बोलना प्रारम्भ किया— "हे कमलानने जानकी ! मैंने (जो) आश्चर्य देखा है, सो सुनो ।। ३४-३५ ।।

दही, मांड तथा जल के सागर से परे स्वादु जल का समुद्र है। वह पुष्कर द्वीप को घेरकर वलयाकार स्थित है ।। ३६ ।।

(वहाँ) पुष्कर द्वीप में महान् अग्नि की ज्वाला के समान उज्ज्वल दस सहस्र कर्णिकायुक्त ब्रह्माजी के परमासन-रूप एक कमल है ।। ३७ ।।

उस द्वीप तथा वर्ष के बीज में मानसोत्तर संज्ञावाला, लंबाई तथा चौड़ाई में दस सहस्र योजन का मर्यादा पर्वत है ।। ३८ ।।

उस पर्वत की चारों दिशाओं में इन्द्र आदि (लोकपालों) के पुर हैं। विश्वकर्मा ने उनकी क्रीडा के निमित्त निर्माण किये हैं ।। ३९ ।।

एक राक्षसश्रेष्ठ सुमाली था। कैकसी नाम की उसकी पुत्री थी। मुनि विश्रवस की उस पत्नी ने दो रावणों को जन्म दिया ।। ४० ।।

एक सहस्रवदन वाला और एक दस वदनवाला। (उनके) जन्म के समय आकाश-स्थित देव बोले— "दो रावण" ।। ४१ ।।

"लोकों को रुलानेवाले उत्पन्न हुए हैं। उनका नाम व्युत्पत्ति के अनुसार है। यह छोटा दस मुखवाला शिवजी की कृपा से ।। ४२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लंकामधिवसत्येष धनदेन विनिर्मिताम् ।
ब्रह्मणो वरदानेन त्रिलोकीमवमन्यते ।। ४३ ।।
श्रेष्ठः सहस्रवदनो रावणो लोकरावणः ।
स्वाभाविकबलेनासौ पुष्करद्वीपमाश्रितः ।। ४४ ।।
सूर्याचन्द्रमसौ गृह्यं क्रीडेत्कंदुकलीलया ।
कुलाचलान्समुद्गृह्य कंदुकं क्रीडते हि सः ।। ४५ ।।
मानसोत्तरशैलस्य चतुर्दिक्षु पुराणि हि ।
आच्छिद्य संगृहीतानि दिगीशानां महात्मनाम् ।। ४६ ।।
तत्रैव रमते राजा मातामहकुलैः सह ।
तत्रैंद्री या पुरी रम्या स स्वयं तत्र तिष्ठति ।। ४७ ।।
अन्यान्यन्येभ्य एवादान्मंत्रिभ्यो राक्षसाधिपः ।
विशेषतोऽलंकृता सा पुरी परमदुर्लभा ।। ४८ ।।
जगतां सारमाकृष्य यथास्थानं सुमंडिता ।
चंपकाशोकमन्दारकदलीप्रियकार्जुनैः ।। ४९ ।।
पाटलाशोकजंबूभिः कोविदारैश्च चंदनैः ।
पनसैः सालतालैश्च तमालैर्देवदारुभिः ।। ५० ।।
बकुलैः पारिजातैश्च कल्पवृक्षैरलंकृता ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।। ५१ ।।
दिव्यगन्धरसैर्दिव्यैः सर्वर्तुफलसंयुतैः ।
भ्रमरैः कोकिलैर्नानावर्णपक्षिभिरुज्ज्वला ।। ५२ ।।
शातकौंभमयैः कैश्चित्कैश्चिदग्निशिखोपमैः ।
नीलांजननिभैश्चान्यैः शोभिता वरपादपैः ।। ५३ ।।
दीर्घिकाः सति बह्व्योऽत्र जलपूर्णा महोदयाः ।
महार्हमणिसोपानाः स्फाटिकांतरकुट्टिमाः ।। ५४ ।।
फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
दात्यूहगणसंघुष्टा हंससारसनादिताः ।। ५५ ।।
तत्र तत्रावनेर्देशा वैदूर्यमणिसन्निभाः ।
शार्दूलैः परमोपेताः सुखार्थमुपकल्पिताः ।। ५६ ।।
सर्वर्तुसुखदा रम्याः पुंस्कोकिलकलारवाः ।
ये वृक्षा नंदनेऽतिष्ठन् ये च चैत्रवने स्थिताः ।। ५७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुबेर द्वारा निर्मित लंका में वास करेगा। ब्रह्मा के वरदान से वह तीनों लोक की अवज्ञा करेगा ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठ सहस्रवदन रावण लोक को रुलानेवाला होगा। वह (अपने) स्वाभाविक बल से पुष्कर द्वीप का आश्रय करेगा ॥ ४४ ॥

सूर्य तथा चन्द्र को पकड़कर वह कंदुकलीला कर सकता है तथा कुलाचल पर्वतों को लेकर (तो) कंदुक-क्रीडा कर ही रहा है ॥ ४५ ॥

मानसोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं में जो पुर हैं, उनको नष्ट करके (उसने) महात्मा दिग्पालों को (अपने अधिकार में) ग्रहण कर लिया है ॥ ४६ ॥

वहीं वह राजा मातामह के कुल के साथ रमण करता है। वहाँ जो एक रम्य इन्द्रपुरी है, वहीं वह स्वयं रहता है ॥ ४७ ॥

उस राक्षसराज ने अनेक मंत्रियों को अन्य वस्तुओं का दान दिया है। विशेष रूप से अलंकृत वह पुरी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४८ ॥

यथास्थान जगत के सार को खींचकर (उसने) उसको अलंकृत किया है। चंपक, अशोक, मन्दार, कदली, प्रियक, अर्जुन, ॥ ४९ ॥

लाल अशोक, जम्बू, कोविदार, चन्दन, पनस, साल, ताल, तमाल, देवदारु, ॥ ५० ॥

बकुल पारिजात तथा कल्पवृक्षों से वह (स्थान) अलंकृत है। और भी दूसरे विविध वृक्षों से, सब ऋतुओं के उज्ज्वल पुष्पों से, ॥ ५१ ॥

दिव्य गन्ध-रसों से, सब ऋतुओं के फलों से युक्त, भ्रमर, कोकिल तथा अनेक वर्णों के पक्षियों से उज्ज्वल ॥ ५२ ॥

कई सुवर्ण-निर्मित, कई अग्नि-ज्वाला के समान अन्य नीलांजन पर्वत के समान श्रेष्ठ वृक्षों से वह शोभित है ॥ ५३ ॥

वहाँ जल से पूर्ण अनेक बड़ी-बड़ी दीर्घिकाएँ हैं। वे क़ीमती मणि-जटित सीढ़ियोंवाली तथा स्फटिकयुक्त फ़र्शवाली हैं ॥ ५४ ॥

प्रफुल्लित कमलों के वनवाली वह (पुरी) चक्रवाकों से शोभित है। अनेक पक्षियों के समूह से युक्त तथा हंस, सारस आदि (पक्षियों के नाद से) नादित है ॥ ५५ ॥

जगह-जगह पर वैडूर्यमणि के समान भूमिप्रदेश है। शार्दूलों से युक्त सुख के जो निमित्त कल्पित किये गये हैं, सब ऋतुओं में सुख देनेवाले पुंस्कोकिल के रव से युक्त जो वृक्ष नन्दनवन में हैं या चैत्रवन में हैं ॥ ५६-५७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दरेऽन्येषु शैलेषु ते वृक्षा स्तत्र संस्थिताः ।
नानामणिमयी भूमिर्मुक्ताजालमयी तथा ॥ ५८ ॥
विचित्रबद्धसोपानप्रासादैरुपशोभिता ।
पुरद्वारसमाकीर्णा पुरी परमशोभना ॥ ५९ ॥
न देवैरनुभूयेत स्वर्गिभिर्नानुभूयते ।
तत्पुरीस्थितिमाकांक्ष्य तपः कुर्वन्ति सत्तमाः ॥ ६० ॥
तस्यां सहस्रवदनो रावणो राक्षसाधिपः ।
आस्ते जगद्वशीकृत्य हेलया बाहुलीलया ॥ ६१ ॥
इंद्रादींस्त्रिदशान्सर्वान्गले बद्वा स किन्नरान् ।
गन्धर्वान्दानवान्भीमान्सर्पान्विद्याधरांस्तथा ॥ ६२ ॥
बालक्रीडनया क्रीडन्मेरुं मन्येत सर्षतम् ।
गोष्पदं मन्यते चाब्धिं सर्वलोकांस्तृणोपमान् ॥ ६३ ॥
द्वीपांल्लोष्टसमान्वीरो न किंचिद्गणयन्दृशा ।
स यदा सर्वलोकानां त्रासन समुपारभत् ॥ ६४ ॥
तदा पितामहोऽभ्येत्य पुलस्त्यो विश्रवास्तथा ।
न्यवारयन्यत्नतस्तं तातवत्सेति भाषकाः ॥ ६५ ॥
एवं स रावणो देवि सहस्रवदनो महान् ।
पुष्करद्वीपमासाद्य वर्तते जनकात्मजे ॥ ६६ ॥
तस्यानुजो दशास्योऽयं लंकायां जानकि स्थितः ॥ ६७ ॥
चित्राणीत्यादीनि मे शंसयित्वा विप्रो मासांश्चतुरो यापयित्वा ।
राजानं मां चाशिषा योजयित्वा जगामैकःप्रोषितस्तीर्थयात्राम् ॥६८॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तर काण्डे सीताभाषणं नाम
सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

एवं स रावणो विप्राः सहस्रवदनो महान् ।
प्रोक्तस्तेन द्विजेनाहं श्रुत्वाश्चर्यं च विस्मिता ॥ १ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दराचल पर या अन्य पर्वतों पर हैं वे (सारे) वृक्ष वहाँ हैं। अनेक प्रकार के मणियों से युक्त तथा मुक्ताजल से युक्त भूमि विचित्र रूप से बांधी गई सीढ़ियों वाले महलों से शोभित है। पुरद्वारों से युक्त पुरी अत्यन्त सुशोभित है ।। ५८-५९ ।।

देवता या स्वर्ग में निवास करनेवाले जिसका अनुभव नहीं कर सकते, उस पुरी में महात्मा लोग निवास करने के निमित्त तप करते हैं ।। ६० ।।

उसमें राक्षसों का अधिपति सहस्रवदन रावण जगत को अपनी बाहुलीला से, सरलता से वश करके रहता है ।। ६१ ।।

वह इन्द्र आदि देवताओं, किन्नरों, गंधर्वों, भयंकर दानवों, सर्पों तथा विद्याधरों को गले में बाँधकर ।। ६२ ।।

बालक्रीडा के समान खेलता हुआ मेरु पर्वत को सरसों के समान, समुद्र को गोष्पद के समान तथा सारे लोकों को तृण के समान मानता है ।। ६३ ।।

वह वीर अपनी दृष्टि से द्वीपों को मिट्टी के ढेले के समान कुछ गिनता ही नहीं है। उसने जब सब लोकों को त्रास देना आरम्भ किया, तब पितामह पुलस्त्य तथा विश्रवा ने उसके पास जाकर 'तात', 'वत्स' आदि संबोधन करके यत्नपूर्वक उसे रोका ।। ६४-६५ ।।

हे देवि ! हे जनकात्मजे ! इस प्रकार वह सहस्रवदन महान रावण पुष्करद्वीप में निवास करता है ।। ६६ ।।

हे जानकि ! उसका छोटा भाई यह दशानन लंका में रहता है" ।। ६७ ।।

इस प्रकार और भी विचित्र कथाएँ कहकर चार महीने तक निवास करके राजा को तथा मुझे आशीर्वाद देकर वे ब्राह्मण तीर्थयात्रा को चले गये ।। ६८ ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तर-
काण्ड में जानकीभाषण नाम सप्तदश
सर्ग समाप्त ।। १७ ।।

अष्टादश सर्ग

रावण की सेना का प्रयाण

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस ब्राह्मण ने मुझे उस सहस्रमुखवाले रावण के बारे में बताया। उस आश्चर्य को सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ ।। १ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्यापि तन्मम हृदि जागरूकं हि वर्तते ।
पत्या मे बाहुवीर्येण दशास्यो रावणो हतः ।। २ ।।
सानुगः ससुतामात्यः सभ्रातृकः सबान्धवः ।
मत्कृते च पुरी दग्धा सेतुर्बद्धश्च वारिधौ ।। ३ ।।
सुग्रीवेण सहायेन तथा हनुमदादिना ।
इदं लोकोत्तरं कर्म कृतं लोकहितं महत् ।। ४ ।।
तथापि हृदि मे नैतदाश्चर्यं प्रतिभाति हि ।
यदि तस्य वधं कुर्याद्रावणस्य दुरात्मनः ।। ५ ।।
तदा संभाव्यते कीर्तिर्जगत्स्वास्थ्यमवाप्नुयात् ।
अतो मे हसितं विप्राः क्षमध्वं ज्वलनोपमाः ।। ६ ।।
आकर्ण्य मुनयः सर्वे साधु साध्विति वादिनः ।
जानकीं प्रशशंसुस्ते सर्वलोकहितैषिणीम् ।। ७ ।।
राघवो वचनं श्रुत्वा सीताया वीरवर्द्धनम् ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः सर्वानाज्ञापयत्प्रभुः ।। ८ ।।
मुनयोऽद्यैव गंतव्यं रावणस्य जयाय वै ।
लक्ष्मणं भरतं चैव शत्रुघ्नं चादिशत्प्रभुः ।। ९ ।।
मित्र सुग्रीव हे राजन्सर्वे जांबवदादयः ।
गच्छामः सहितास्तत्र सैनिकैः सह मंत्रिभिः ।। १० ।।
इत्याज्ञाप्य महाबाहुः सस्मार पुष्पकं रथम् ।
स्मरणादागतस्तत्र पुष्पको रथसत्तमः ।। ११ ।।
तत्रारुक्षन्महावीरा रामचन्द्रपुरोगमाः ।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्चामितद्युतिः ।। १२ ।।
सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराजितकाशिनः ।
विभीषणो महाबाहुः सह रक्षोगणैः प्रभुः ।। १३ ।।
मात्रा पित्राप्यकथनादजानन्बोधितोऽनया ।
सीतया रामकार्यार्थं निर्ययौ राघवाज्ञया ।। १४ ।
सुमंत्राद्या मन्त्रिणश्च ऋषयस्ते च निर्ययुः ।
नानाशस्त्रप्रहरणा धृतायुधकलापिनः ।। १५ ।।
मुमुचुस्ते सिंहनादं महाघोरं महाबलाः ।
धनुःशब्देन रामस्य सिंहनादेन चैव हि ।। १६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब तक वह मेरे हृदय में जागते हुए के समान है। मेरे पति ने (अपने) बाहुबल से दशानन का हनन किया ॥ २ ॥

अनुचर, पुत्र, अमात्य, भाई और स्वजनों-सहित रावण मारा गया है और मेरे कारण लंकापुरी का दहन हुआ तथा समुद्र पर सेतु बाँधा गया ॥ ३ ॥

सुग्रीव तथा हनुमानादि की सहायता से यह लोकोत्तर तथा बड़ा लोकहितकारी काम किया गया ॥ ४ ॥

फिर भी मेरे हृदय में यह कुछ आश्चर्य-सा नहीं लगता। यदि उस दुरात्मा (सहस्रवदन) रावण का वध (मेरे स्वामी) करेंगे तो (उन्हें महान) कीर्ति प्राप्त होगी तथा जगत को स्वस्थता मिलेगी। इसलिए, हे अग्निसमान ब्राह्मणो! मुझे हँसी आ गई थी, आप मुझे क्षमा करेंगे ॥ ५-६ ॥

यह सुनकर सब मुनि 'साधु'! 'साधु'! कहने लगे। तथा सर्व जगत का हित करनेवाली जानकी की प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥

वीर्य की वृद्धि करनेवाला सीताजी का वचन सुनकर श्रीराम ने ज़ोर से सिंहनाद किया तथा उस प्रभु ने सबको आज्ञा दी ॥ ८ ॥

"हे मुनियो! आज ही रावण को जीतने के लिए जाना चाहिए।" (इतना बोलकर) प्रभु ने लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को भी आज्ञा दी ॥ ९ ॥

हे राजन्! मित्र सुग्रीव तथा जांबवान आदि हम सब साथ में सैनिकों तथा मंत्रियों के सहित वहाँ जायेंगे ॥ १० ॥

ऐसी आज्ञा देकर महाबाहु (राम ने) पुष्पक विमान का स्मरण किया। स्मरणमात्र से विमानश्रेष्ठ पुष्पक वहाँ उपस्थित हो गया ॥ ११ ॥

उस पर श्रीरामचन्द्र आदि सब वीर तथा भरत, लक्ष्मण एवं अत्यन्त तेजस्वी शत्रुघ्न आरूढ़ हुए ॥ १२ ॥

शत्रुओं को जीतनेवाले सभी वानर तथा उनके अग्रणी सुग्रीव और राक्षसों के गण-सहित महाबाहु विभीषण, माता-पिता को सूचित किये बिना (ही मात्र) इन (जानकी जी) से प्रेरित हुए सब राम के कार्य के लिए राम की आज्ञा पाकर निकल पड़े ॥ १३-१४ ॥

सुमन्त्र वग़ैर: मन्त्री तथा वे ऋषि भी चल पड़े। अनेक प्रकार के आयुधों के समूह धारण करनेवाले वे महाबली घोर सिंहनाद करने लगे। राम के धनुष की टंकार से तथा सिंहनाद से ॥ १५-१६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चचाल वसुधा शैलाश्चेलुः पेतुर्ग्रहाश्च खात् ।
नद्योऽशुष्यन्समुद्वेलाः सागराश्च चकंपिरे ।। १७ ।।
सुग्रीवो हनुमान्नीलो जांबवान्नल एव च ।
ग्रसन्त इव ते सर्वे निर्ययुः रामशासनात् ।। १८ ।।
स तया सीतया सार्द्धं रामचन्द्रो महाबलः ।
कामगं पुष्पकं दिव्यमारुरोह धनुर्धरः ।। १९ ।।
पुष्पकं ते समारुह्य सर्व एव महाबलाः ।
सीतया भ्रातृभिः सार्द्धं रामचन्द्रं महाबलाः ।। २० ।।
प्रोत्साहयंतो वचनैर्निर्ययुर्जितकाशिनः ।
रामाज्ञया पुष्पकं तदाकाशपथमाश्रितम् ।। २१ ।।
मनोमारुतवेगेन क्षणेन गरुडो यथा ।
जगाम पुष्करद्वीपं यत्रास्ते मानसोत्तरः ।। २२ ।।
मानसोत्तरमासाद्य विस्मितास्ते महाबलाः ।
किं चित्रं किं चित्रमिति प्रोचुराश्चर्यलक्षणाः ।। २३ ।।
राघवो भ्रातृभिः सार्द्धं सह वानरपुंगवैः ।
सिंहनादं ननादोच्चैर्धनुश्चापि व्यकर्षयत् ।। २४ ।।
स शब्दस्तुमुलो भूत्वा पृथिवीं चांतरिक्षकम् ।
पातालविवरांश्चैव पूरयामास सर्वतः ।। २५ ।।
रावणः सहसोत्तस्थौ किमेतदिति संवदन् ।
तत्राथ राक्षसाः क्रुद्धाः सर्व एव विनिर्ययुः ।। २६ ।।
अहो कुतःस्विच्छब्दोऽयं साधु सर्वैर्निरूप्यताम् ।
इत्याभाष्य राक्षसेन्द्रो राक्षसेन्द्रैर्महाबलैः ।। २७ ।।
नगरान्निर्ययौ शीघ्रं संदष्टोष्ठपुटो बली ।
द्वादशादित्यसंकाशः सहस्रवदनो महान् ।। २८ ।।
द्विसहस्रभुजोद्रिक्तो द्विसहस्रविलोचनः ।
महामेघसमध्वानो वडवाग्निसमः क्रुधा ।। २९ ।।
शतयोजनविस्तीर्णे रथे सूर्यसमत्विषि ।
नानायुधानि संगृह्य परिघप्रासतोमरान् ।। ३० ।।
भुशुण्डिः परशून्घंटां लौहं मुद्गरचक्रकम् ।
पाशांश्च विविधान्गृह्य बाणान्कर्मारमार्जितान् ।। ३१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी कंपायमान होने लगी। पर्वत चलायमान हो गये, ग्रह गिरने लगे, नदियाँ सूखने लगीं, सागर ने मर्यादा छोड़ दी एवं वे क्षुभित हो गये ॥ १७ ॥

सुग्रीव, हनुमान, नील, जांबवान तथा नल सब मानो आकाश को ग्रसते हुए राम के शासन से निकल पड़े ॥ १८ ॥

उन श्रीसीताजी के साथ महाबलवान श्रीरामचन्द्र धनुष धारण करके उस कामगामी दिव्य पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए ॥ १९ ॥

शत्रुओं को जीतनेवाले वे सब महाबली उस पुष्पक में आरूढ़ होकर श्रीसीता तथा भाइयों के साथ श्रीराम को (अपने) वचनों से प्रोत्साहित करते हुए निकल पड़े। राम की आज्ञा से वह पुष्पक विमान आकाशमार्ग में चल पड़ा ॥ २०-२१ ॥

मन, पवन तथा गरुड़ के वेग से वह क्षणमात्र में मानसोत्तर पुष्कर-द्वीप में पहुँच गया ॥ २२ ॥

मानस के उत्तर भाग में पहुँचने पर वे महाबली विस्मित हो गये। आश्चर्यचकित होकर वे (परस्पर) ऐसा पूछने लगे (कि) "कैसा विचित्र है ?", "कैसा विचित्र है ?" ॥ २३ ॥

भाइयों के तथा वानरश्रेष्ठों के साथ राम ने सिंहनाद किया तथा धनुष को खींचा ॥ २४ ॥

उस (से उत्पन्न होनेवाले) शब्द ने तुमुल होकर पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा पाताल के विवरों को भर दिया ॥ २५ ॥

तब "यह क्या है ?" ऐसा कहते हुए रावण सहसा उठा। सब ओर से राक्षस (भी) क्रोधित होकर वहाँ (आने के लिए) निकल पड़े ॥ २६ ॥

"अहो ! यह आवाज़ कहाँ से आती है ? सब लोग अच्छी तरह से देखो" —ऐसा कहते हुए वह राक्षसेन्द्र महाबलवान (अन्य) राक्षसेन्द्रों के साथ शीघ्र होठ चबाता हुआ नगर से बाहर निकला। वह महान् सहस्रवदन बारह सूर्यों के समान था ॥ २७-२८ ॥

दो हज़ार भुजाओं से युक्त, दो हज़ार नेत्रोंवाला महामेघ के समान गर्जना करनेवाला तथा क्रोध से बड़वाग्नि के समान वह (जल रहा) था ॥ २९ ॥

सूर्य के समान कांतिवाले, शतयोजन विस्तीर्ण रथ में वह परिघ, प्रास, तोमर आदि अनेक प्रकार के आयुध धारण कर, भुशुण्डी, परशु, घंटे, लोहे, मुद्गर, चक्र, लोहारों द्वारा मार्जित विविध प्रकार के पाश तथा बाणों को लेकर, ॥ ३०-३१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विपाठान्क्षुरधारांश्च अर्धचन्द्राकृतीनपि ।
नानायुधसहस्राणि नानाविधधनूंषि च ।। ३२ ।।
प्रगृह्य सहसा प्रायाद्यत्र रामो धनुर्धरः ।
लोचनैः क्रोधसंदीप्तैरुल्काभिरिव दीपितः ।। ३३ ।।
कोयमित्यब्रवीत्क्रोधादनलं प्रोद्वमन्निव ।
सिंहनादं मम पुरे रिपुत्वाद्विससर्ज ह ।। ३४ ।।
ममापि रिपुरस्तीति दुर्यशः समुपस्थितम् ।
इंद्राद्याः ककुभां नाथा भृत्याः प्राणपरीप्सया ।। ३५ ।।
पातालविवरे स्वर्गं स्वर्गे पातालमेककम् ।
करोमि सहसैवाहं मानवानां तथैकताम् ।। ३६ ।।
मेरुप्रभृतिशैलांश्च चूर्णयाम्यणुसंख्यया ।
देवलोकं नृणां कुर्यान्नृलोकं त्रिदिवौकसाम् ।। ३७ ।।
उद्धृत्य पृथिवीं छिंद्यामनंतं नखराग्रकैः ।
ब्रह्मा मां वारयामास सांत्वयन्प्रियभाषितैः ।। ३८ ।।
अन्यथा राक्षसमृते नावहं जगतीतले ।
सूर्याचन्द्रमसौ भूत्वा तिथिप्रणयनं त्वहम् ।। ३९ ।।
बलाहकत्वमिंद्रत्वं पृथ्वीसेकादिकाः क्रियाः ।
कुर्यां यमत्वं वह्नित्वं वरुणत्वं धनेशताम् ।। ४० ।।
इत्येवं बहुधा गर्जन्नाजगामान्तिकं हरेः ।
सेनाध्यक्षा राक्षसेंद्रा राज्ञा सार्द्धं समागताः ।। ४१ ।।
नानाप्रहरणोपेता नानारथपदातिनः ।
एकैकस्यापि पर्याप्ता जगत्यां नेति मन्महे ।। ४२ ।।
केषांचिदपि नामानि भरद्वाज निबोध मे ।
कोटिशो मनसः पूर्णः शलः पालो हलीमुखः ।। ४३ ।।
पिच्छलः कौणपश्चक्रः कालवेगः प्रकालकः ।
हिरण्यबाहुः शरणः कक्षकः कालदन्तकः ।। ४४ ।।
पुच्छाण्डको मंडलकः पिंडसेक्ता रभेणकः ।
उच्छिखः करभो भद्रो विश्वजेता विरोहणः ।। ४५ ।।
शिली शलकरो मूकः सुकुमारः प्ररेषणः ।
मुद्गरः शशरोमा च सुरोमा च महाहनुः ।। ४६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विपाक, क्षुरधार, अर्धचंद्र के आकार वाले सहस्र आयुधों और अनेक प्रकार के धनुष से सज्ज होकर जहाँ धनुर्धारी राम थे, वहाँ गया। मानो, उल्का जैसे नेत्रों से दीपित वह क्रोध से प्रज्वलित था ॥ ३२-३३ ॥

(वह) मानो क्रोध से अग्नि का वमन करता हुआ-सा कहने लगा— "यह कौन है, जो मेरे नगर में शत्रुतावश सिंहनाद कर रहा है ? ॥ ३४ ॥

मेरा भी (कोई) शत्रु है" —ऐसा दुर्यश (अपयश) मुझे प्राप्त हुआ है। इन्द्र आदि दिग्पाल प्राणरक्षा की इच्छा से (मेरे) सेवक हैं ॥ ३५ ॥

पाताल के विवर में स्वर्ग, स्वर्ग में पाताल तथा उसी प्रकार सहसा मानवों को एकत्र करने में (मैं) समर्थ हूँ ॥ ३६ ॥

मेरु आदि पर्वतों को मैं अणुरूप में चूर्ण-चूर्ण कर सकता हूँ। देवलोक को मनुष्यलोक तथा मनुष्यलोक को देवलोक में बदल सकता हूँ ॥ ३७ ॥

पृथ्वी तथा शेषनाग को (मेरे) नखाग्रों से उद्धृत करके (मैं) नष्ट-भ्रष्ट कर सकता हूँ। प्रिय वचनों से सान्त्वना देकर ब्रह्मा ने मुझे रोक रखा था ॥ ३८ ॥

अन्यथा राक्षसों के सिवा जगत में मैं किसी को (जीवित) न रहने देता। सूर्य-चंद्र होकर मैं ही तिथि का प्रणयन करता ॥ ३९ ॥

मेघपन, इन्द्रपन, पृथ्वी की सेकादि क्रिया, यमत्व, अग्नित्व, वरुणत्व, कुबेरत्व मैं ही कर सकता हूँ ॥ ४० ॥

इस तरह अनेक प्रकार की गर्जना करता हुआ वह राम के समीप आया। राक्षसेन्द्र राजा के साथ (उसके) सेनाध्यक्ष (भी वहाँ) आ पहुँचे ॥ ४१ ॥

नाना प्रकार के आयुधों से संपन्न, अनेक प्रकार के रथी एवं पदाति जो एक-एक के लिए भी पर्याप्त (मुक़ाबला कर सके) ऐसे (योद्धा) जगत में नहीं हैं, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ४२ ॥

हे भरद्वाज ! इनमें से कुछ (राक्षसों) के नाम मुझसे सुनिए। कोटिश, मनस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमुख, पिच्छल, कौणप, चक्र, कालवेग, प्रकालक, हिरण्यबाहु, शरण, कक्षक, कालदन्तक ॥ ४३-४४ ॥

पुच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेक्ला, रभेणक, उच्छिख, करभ, भद्र, विश्वजेता, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रेरेषण, मुद्‌गर, शशरोमा, सुरोमा, महाहनु ॥ ४५-४६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारावतः पारियात्रः पांडुरो हरिणः कृशः ।
विहंगः शरभो दक्षः प्रमोदः सहतापजः ॥ ४७ ॥
कृकरः कुण्डरो वैणी वैणीस्कंधः कुमारकः ।
बाहुकः शंखवेगश्च धूर्तकः पातपातकौ ॥ ४८ ॥
शंकुकर्ण पिटरकः कुटीरमुखसेचकौ ।
पूर्णांगदः पूर्णमुखः प्रभाषः शकुलिर्हरिः ॥ ४९ ॥
अमाहिठः कामठकः सुषेणो मानसो व्ययः ।
भैरवो मुण्डदेवांगः पिशंगश्चोडपालकः ॥ ५० ॥
ऋषभो वेगवान्नाम पिंडारकमहाहनू ।
रक्तांगः सर्वसारंगः समृद्धः पाटवासकौ ॥ ५१ ॥
वराहको रावणकः सुचित्रश्चित्रवेगिकः ।
पराशरस्तरुणिको मणिस्कन्धस्तथारुणिः ॥ ५२ ॥
सेनाध्यक्षा महाब्रह्मन्कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।
प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तितः ॥ ५३ ॥
न शक्याः परिसंख्यातुं ये युद्धाय समागताः ।
नीलरक्ता सिता घोरा महाकाया महाबलाः ॥ ५४ ॥
सप्तशीर्षाद्विशीर्षाश्च पञ्चशीर्षास्तथापरे ।
कालानलमहाघोरा हुताशसमविग्रहाः ॥ ५५ ॥
महाकाया महावेगाः शैलशृंगसमुच्छ्रयाः ।
योजनायामविस्तीर्णाद्वियोजनसमुच्छ्रयाः ॥ ५६ ॥
कामरूपाः कामबला दीप्तानलसमत्विषः ।
अन्ये च बहवः शूराः शूलपट्टिशधारिणः ॥ ५७ ॥
दिव्यप्रहरणोपेता नानावेषविभूषिताः ।
शृणु नामानि चान्येषां येऽन्ये रावणसैनिकाः ॥ ५८ ॥
शंकुकर्णोनिकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ।
अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ॥ ५९ ॥
घ्राणश्रवाः कपिस्कंधः कांचनाक्षो जलन्धमः ।
अक्षसंतर्दनो ब्रह्मन्कुनदीकस्तमोऽभ्रकृत् ॥ ६० ॥
एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजराभिधः ।
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राख्यः क्षितिकंपनः ॥ ६१ ॥
पुण्यनामानुनामा च सुवक्त्रः प्रियदर्शनः ।
परिश्रितः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ॥ ६२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारावत, पारियात्र, पाण्डुर, हरिण, कृश, विहंग, शरभ, दक्ष, प्रमोद, सहतापज ।। ४७ ।।

क्रकर, कुंडर, वैणी, वैणीस्कन्ध, कुमारक, बाहुक, शंखवेग, धूर्तक, पात, पातक, शंकुकर्ण, पिटरक, कुटीरमुख, सेचक, पूर्णांगद, पूर्णमुख, प्रभाष, शकुलि, हरि ।। ४८-४९ ।।

अमाहिठ, कामठक, सुषेण, मानस, व्यय, भैरव, मुण्ड, देवांग, पिशंग, चोडपालक ।। ५० ।।

ऋषभ, वेगवान्, पिण्डारक, महाहनु, रक्तांग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पाटव, पाट, वाकस, ।। ५१ ।।

वराहक, रावणक, सुचित्र, चित्रवेगिक, पराशर, तरुणिक, मणिस्कन्ध तथा अरुणि ।। ५२ ।।

हे ब्रह्मन् ! ये महाकीर्तिवर्धन प्रधान सेनाध्यक्षों के नाम बताये गये । (ये) असंख्य होने के कारण सबका वर्णन नहीं किया ।। ५३ ।।

युद्ध करने के लिए जो आये, उनकी गिनती करना अशक्य है । नील, रक्त, सित, घोर, महाकाय, महाबली ।। ५४ ।।

सात सिरवाले, दो सिरवाले तथा अन्य पाँच सिरवाले कालाग्नि के समान महाघोर, अग्नि के समान शरीरवाले ।। ५५ ।।

महाकाय महावेगवाले, पर्वत के शिखर के समान ऊँचे, एक योजन चौड़े, दो योजन ऊँचे, स्वेच्छा से रूप धारण कर सकनेवाले, कामबल, प्रदीप्त अग्नि के समान कन्तिमान और भी बहुत सारे शूरवीर शूल एवं पट्टिश लिये हुए ।। ५६-५७ ।।

दिव्य आयुधों से युक्त नाना प्रकार के वेष से विभूषित और भी कई रावण के सैनिकों के नाम सुनिए ।। ५८ ।।

शंकुकर्ण, निकुंभ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कंध, कांचनाक्ष, जलन्धम, अक्षसंतर्दन, कुनदीक, तमोक्षकृत् ।। ५९-६० ।।

एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजरा, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्र, क्षितिकंपन, पुण्यनाम, अनुनान, सुवक्त्र, प्रियदर्शन, परिश्रित, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन, ।। ६१-६२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजोदरो गजशिरा: स्कंधाक्ष: शतलोचन: ।
ज्वालाजिह्व: करालश्च सितकेशो जटी हरि: ॥ ६३ ॥
चतुर्दंष्ट्रोष्ठजिह्वश्च मेघनाद: पृथुश्रवा: ।
विकृताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशन: ॥ ६४ ॥
उदराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभ: ।
समुद्रवेगो विपेन्द्र: शैलकम्पी तथैव च ॥ ६५ ॥
वृषमेषप्रवाहश्च तथा नंदोपनंदकौ ।
धूम्रश्वेत: कलिंगश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥ ६६ ॥
प्रियकश्चैकनन्दश्च बहुवीर्य: प्रतापवान् ।
आनंदश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६७ ॥
क्षेमबाहु: सुबाहुश्च सिद्धपालश्च सुव्रत: ।
गोव्रज: कनकापीडो महापारिषदेश्वर: ॥ ६८ ॥
गायनो दमनश्चैव बाण: खड्गश्च वीर्यवान् ।
वैताली गतिताली च तथा कथकवातिकौ ॥ ६९ ॥
हंसज: पंकदिग्धांग: समुद्रोन्मादनश्च ह ।
रणोत्कट: प्रहासश्च वेतसिद्धश्च नन्दक: ॥ ७० ॥
एते पुरा रावणसैन्यपाला नानायुधप्राहरणा रणेषु ।
हंसेषु मेषेषु वृषेषु वीरा रामं प्रतस्थु: कृतसिंहनादा: ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तर-
काण्डे रावणसैन्यनिर्याणं नाम अष्टादश:
सर्ग: ॥ १८ ॥

एकोनविंश: सर्ग:

रावणस्यौरसा: पुत्रास्सह राक्षसपुंगवै: ।
नानाप्रहरणोपेता दुद्रुवु राघवं रणे ॥ १ ॥
नामान्येषां प्रवक्ष्यामि भरद्वाज शृणुष्व मे ।
कालकण्ठ: प्रभाषश्च तथा कुम्भाण्डको पर: ॥ २ ॥
कालकक्ष शितश्चैव भूतलोन्मथनस्तथा ।
यज्ञबाहु: प्रबाहुश्च देवयाजी च सोमप: ॥ ३ ॥
मज्जालश्च महातेजा: क्रथ: क्राथोवसुव्रत: ।
तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजोदरो, गजशिरा, स्कंधाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, कराल, सितकेश, जटी, हरि, चतुर्दंष्ट्र, ओष्ठजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रव, विकृताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन ।। ६३-६४ ।।

उदराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग तथा हे विप्रेन्द्र ! शैलकंपी, वृषमेषप्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्रश्वेत, कलिंग, सिद्धार्थ, वरद ।। ६५-६६ ।।

प्रियक, एकनन्द, बहुवीर्य, प्रतापवान्, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक, क्षेमबाहु, सुबाहु, सिद्धपात्र, सुव्रत, गोव्रज कनकापीड, महा-पारिषदेश्वर, ।। ६७-६८ ।।

गायन, दमन, बाण, खड्ग, वीर्यवान्, वैताली, गतिताली, कथक, वातिक ।। ६९ ।।

हंसज, पंकादिग्धांग, समुद्र, उन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, वेतसिद्ध, नन्दक, ।। ७० ।।

रावण के ये सेनापति, अनेक प्रकार के प्रहरणों से युक्त, हंस, मेष तथा वृषभ के ऊपर चढ़कर सिंहनाद करते हुए युद्ध में राम के प्रति चले ।। ७१ ।।

।। इति श्री वालमीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकांड में रावण-सैन्य-प्रयाण नाम
अष्टादश सर्ग समाप्त ।। १८ ।।

एकोनविंश सर्ग

सहस्रमुखी रावण के पुत्रों का युद्ध के लिए प्रयाण

रावण के औरस पुत्र राक्षसश्रेष्ठों के साथ अनेक प्रकार के आयुधों से सज्ज होकर रण में राम के प्रति दौड़ने लगे ।। १ ।।

हे भरद्वाज ! मैं इनके नाम बताता हूँ, सुनिए ! कालकण्ठ, प्रभाष, कुम्भाण्डक ।। २ ।।

कालकक्ष, शिव, भूतल, उन्मथन, यज्ञबाहु, प्रबाहु, देवयाजी, सोमप ।। ३ ।।

महातेजस्वी मज्जाल, क्रथ, क्राथ, वसुव्रत, तुहर, तुहार, वीर्यवान्, चित्रदेव ।। ४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मधुरः सुप्रसादश्च किरीटश्च महाबलः ।
वसनो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।। ५ ।।
धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्रश्च वीर्यवान् ।
श्वेतवक्त्र सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।। ६ ।।
दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ।
अचलः कालकाक्षश्च बालेशो बालभक्षकः ।। ७ ।।
संचानकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ।
लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ।। ८ ।।
मुंडग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च कुंजरः ।
एते रावणपुत्राश्च महावीर्यपराक्रमाः ।। ९ ।।
बाहुशब्दैः सिंहनादैः पूरयंतो दिशो दश ।
एषां सैन्यसहस्राणां सहस्राण्यर्बुदानि च ।। १० ।।
नानाकृतिवयोरूपा विविधायुधपाणयः ।
कूर्मकुक्कुट वक्त्राश्च सर्पजृम्भकवक्त्रकाः ।। ११ ।।
गोमायुमुखवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ।
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।। १२ ।।
मनुष्यमेषवक्त्राश्च शृगालवदनास्तथा ।
मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च केचन ।। १३ ।।
नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथापरे ।
आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ।। १४ ।।
मत्स्यमेषाननाश्चैव अजाविमहिषाननाः ।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ।। १५ ।।
भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखास्तथा ।
गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ।। १६ ।।
महाजठरपादांगाः स्तबकाक्षाश्च दुर्मुखाः ।
पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे ।। १७ ।।
कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ।
कृकलासमुखाश्चैव विरजोऽम्बरधारिणः ।। १८ ।।
व्यालवक्त्राः शुकमुखाश्चंडवक्त्राः शुभाननाः ।
आशीविषाश्चीरधरा गोनासावरणास्तथा ।। १९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मधुर, सुप्रसाद, महाबली, किरीट, वसन, मधुवर्ण, कलशोदर ॥ ५ ॥

धर्मद, मन्मथकर, वीर्यवान, सूचीवक्त्र, श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पाण्डुर ॥ ६ ॥

दण्डबाहु, सुबाहु, रज, कोकिलक, अचल, कालकाक्ष, बालश, बालभक्षक ॥ ७ ॥

संचानद, कोकनद, गृध्रपत्र, जम्बुक, लोहाजवक्त्र, जवन, कुंभवक्त्र, कुम्भक ॥ ८ ॥

मुंडग्रीव, कृष्णोजा, हंसवक्त्र तथा कुंजर —ये रावण के महाबलवान् तथा पराक्रमी पुत्र थे ॥ ९ ॥

(वे) बाहुशब्द तथा सिंहनाद से दसों दिशाओं को भर देते थे। इनकी सहस्र सेनाओं के हज़ारों तथा अरबों ॥ १० ॥

विविध आकृति, वय (तथा) रूप वाले, हाथ में विविध आयुधवाले, कूर्म, कुक्कुट मुखवाले, सर्प-जृम्भक-से मुखवाले ॥ ११ ॥

शृगालमुखवाले, शशक तथा उल्लू के समान मुखवाले, गधे, ऊँट तथा वराह के मुखवाले ॥ १२ ॥

मनुष्य, मेष तथा शृगाल के मुखवाले, मार्जार तथा खरगोश के मुखवाले, कोई दीर्घमुखवाले ॥ १३ ॥

नकुल और उल्लू के मुखवाले, दूसरे कौए के मुखवाले, आखुमुख, बभ्रुमुख, मोरमुख, ॥ १४ ॥

मत्स्य, मेष, अज, अवि, महिष के मुखवाले, ऋक्ष, शार्दूल, हाथी तथा सिंह के मुखवाले ॥ १५ ॥

भयंकर हाथी के मुखवाले, मगर के मुखवाले, गाय, गधा, ऊँट के मुखवाले तथा दूसरे ॥ १६ ॥

महाजठर, पाद तथा अंगवाले स्तवकाक्ष, दुर्मुख, अन्य पारावत मुखवाले तथा वृषमुखवाले ॥ १७ ॥

कोकिला के समान मुखवाले, बाज़ एवं तित्तिरि के मुखवाले, कृकलास मुखवाले, श्वेतवस्त्र धारण करनेवाले ॥ १८ ॥

व्यालमुख, शुकमुख, चण्डमुख, शुभानन, आशीविष, चीरधारी गाय की नाक के समान आवरण वाले ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थूलोदराः कृशांगाश्च स्थूलांगाश्च कृशोदराः ।
ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः ॥ २० ॥
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनांबराः ।
स्कंधेमुखा द्विजश्रेष्ठ तथा ह्युदरतोमुखाः ॥ २१ ॥
पृष्ठेमुखा हनुमुखस्तथा जंघामुखास्तथा ।
पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा ॥ २२ ॥
तथा कीटपतंगानां सदृशास्या महाबलाः ।
नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः ॥ २३ ॥
नानावक्षोभुजाः केचिद्भुजंगवदनाः परे ।
खड्गमुखा वृकमुखा अपरे गरुडाननाः ॥ २४ ॥
चोलसंवृतगात्राश्च नानाफलकवाससः ।
नानावेषधराश्चान्ये नानामाल्यानुलेपनाः ॥ २५ ॥
नानावस्त्रधराश्चान्ये चर्मवासस एव च ।
उष्णीषिणो मुकुटिनः कंबुग्रीवाः सुवर्च्चसः ॥ २६ ॥
किरीटिनः पंचशिखास्तथा कठिनमूर्द्धजाः ।
त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखा अपि ॥ २७ ॥
शिखण्डिनोऽमुकुटिनो मुंडाश्च जटिलास्तथा ।
चित्रमालाधराः केचित् केचिद्रोमाननास्तथा ॥ २८ ॥
विग्रहैकवशा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ।
कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठा निरूदराः ॥ २९ ॥
दीर्घपृष्ठाः स्थूलपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ।
महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः ॥ ३० ॥
कुब्जाश्च ह्रस्वजंघाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ।
हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथापरे ॥ ३१ ॥
वारणेंद्रनिभाश्चान्ये दीप्तिमंतः स्वलंकृताः ।
पिंगाक्षाः शंकुकर्णाश्च वक्रनासास्तथापरे ॥ ३२ ॥
पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलोष्ठा हरिमूर्द्धजाः ।
नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥ ३३ ॥
नानाचर्मभिराच्छन्ना नानावासाश्च सुव्रत ।
हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापरिघबाहवः ॥ ३४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थूल उदरवाले और कृश अंगवाले, स्थूल अंगवाले तथा कृश उदरवाले, छोटी ग्रीवावाले, बड़े कानवाले, अनेक सर्पों के भूषणवाले ।। २० ।।

गजेन्द्र के चर्म के वस्त्रवाले, कृष्णमृगचर्म के वस्त्रवाले, कंधे में मुखवाले तथा हे द्विजश्रेष्ठ ! उदर में मुखवाले ।। २१ ।।

पीठ में मुखवाले, हनु में मुखवाले, जंघामुख, पार्श्वानन और अनेक देश में मुखवाले ।। २२ ।।

कीट-पतंगों के समान मुखवाले, महाबलवान अनेक प्रकार के सर्पों के मुखवाले तथा दूसरे अनेक बाहु तथा सिरवाले ।। २३ ।।

अनेक छाती, भुजावाले, कई भुजंगमुख, अन्य खड्ग, वृक तथा गरुड़ के मुखवाले ।। २४ ।।

कुरतों से संवृत गात्रवाले, अनेक फलक रूपी वस्त्रवाले, अनेक प्रकार के वेष धारण करनेवाले, नाना प्रकार की माला वाले तथा अनुलेपन लगाये हुए ।। २५ ।।

नाना प्रकार के वस्त्र धारण किये हुए तथा चर्म के वस्त्रोंवाले, पगड़ीवाले, मुकुट धारण किये हुए, शंख-सी गर्दनवाले, सुंदर कान्तिवाले ।। २६ ।।

मुकुटधारी पंचशिखावाले तथा कठिन केशवाले, तीन शिखा, दो शिखा तथा सात शिखावाले ।। २७ ।।

शिखण्डी, मुकुटरहित, मुण्डित केश, जटा धारण करनेवाले, कई चित्रमाला धारण किये हुए तथा कई रोएँदार मुखवाले ।। २८ ।।

सदा युद्ध में रत, देवश्रेष्ठों के लिए भी अजेय, काले, मांसरहित मुखवाले, दीर्घ पृष्ठवाले तथा उदर-रहित ।। २९ ।।

दीर्घ पृष्ठवाले, स्थूल पृष्ठवाले, प्रलम्ब उदर तथा शिश्नवाले, बड़ी भुजावाले, छोटी भुजावाले, छोटे अंगवाले तथा वामन ।। ३० ।।

कुबड़े, छोटी जंघावाले, हाथी जैसे कान और शिखावाले, हाथी के समान नाकवाले, कूर्म के समान नाकवाले तथा अन्य वरु के समान नाकवाले ।। ३१ ।।

कोई वारणेन्द्र के समान, दूसरे दीप्तिमान, सुअलंकृत, पिंगाक्ष, शंकुकर्ण तथा वक्र नाकवाले ।। ३२ ।।

चौड़ी दंष्ट्रावाले, बड़ी दंष्ट्रावाले, स्थूल ओठवाले, हरे बालवाले, अनेक पैर, होंठ तथा दंष्ट्रावाले, अनेक हाथ और सिर वाले ।। ३३ ।।

अनेक प्रकार के चर्मों से आच्छादित तथा हे सुव्रत ! अनेक प्रकार के वस्त्रवाले, बड़े परिघ के समान बाहुवाले, वे (सब) प्रसन्न होकर युद्ध में चले ।। ३४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ।
पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च स्वर्णकर्णाश्च सुव्रत ।। ३५ ।।

वृकोदरनिभाः केचित्केचिदंजनसंनिभाः ।
श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिंगाक्षाश्च तथापरे ।। ३६ ।।

कल्माषबाहवो विप्र चित्रवर्णाश्च केचन ।
चामरापीडकनिभाः श्वेत लोहितकान्तयः ।। ३७ ।।

नानावर्णाः सुवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ।
पाशोद्यतकराः केचिध्वादितास्याः खराननाः ।। ३८ ।।

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
असिमुद्गरहस्ताश्च दंडहस्ताश्च केचन ।। ३९ ।।

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।
आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महौजसः ।। ४० ।।

महाबला महावेगा असंख्याता विनिर्ययुः ।
घंटाजालपिनद्धांगा ननृतुस्तेरणाजिरे ।। ४१ ।।

कोटिशो विकृतरूक्षभाषिणो यातुधानगणसैन्यपालकाः ।
दुद्रुवु रघुकुलावतंसकं गृह्णधावहनपोथवादिनः ।। ४२ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे रावणपुत्रनिर्याण
नामैकोनविंशः सर्गः ।। १९ ।।

विंशः सर्गः

धनूंषि च विधुन्वानस्ततो वैश्रवणानुजः ।
कोऽयं किमर्थमायात इति चिन्तापरोऽभवत् ।। १ ।।

ततो गगनसंभूता वाणी समुदपद्यत ।
भो रावण महावीर्य रामोऽयं समुपागतः ।। २ ।।

राघवोऽयमयोध्याया राजा धर्मस्वरूपधृक् ।
लंकायां निहतो येन दाराकर्षी तवानुजः ।। ३ ।।

त्वद्वधार्थमिहायातो विभीषण वसुप्रदः ।
भ्रातृभिर्वानरैर्ऋक्षै राक्षसैर्मानुषैर्युतः ।। ४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लंबी ग्रीवावाले, लंबे नाखूनवाले, लंबे पैर, सिर तथा भुजावाले, पिंगाक्ष, नीलकण्ठ तथा हे सुव्रत ! स्वर्णकर्णवाले ।। ३५ ।।

कई वृकोदर के समान थे, कई अंजन (पर्वत) के समान थे; श्वेत नेत्रवाले, लाल गर्दनवाले तथा दूसरे पीली आँखोंवाले थे ।। ३६ ।।

हे विप्र ! कई काली भुजावाले थे, कई चित्रवर्ण थे; चामर तथा फूल की माला के समान श्वेतऔर लाल कान्तिवाले थे ।। ३७ ।।

अनेक वर्णवाले, सुवर्ण, मयूर के समान कान्तिवाले, हाथ में पाशवाले, कोई मुख फैलाये हुए तथा खर के समान मुखवाले थे ।। ३८ ।।

हाथ में शतघ्नी, चक्र तथा मुसल लिये हुए, कोई हाथ में तलवार, मुद्गर तथा दण्ड लिये हुए थे ।। ३९ ।।

हाथ में गदा, भुशुण्डी तथा तोमरवाले, महाशक्तिशाली महात्मा लोग अनेक भयंकर आयुधों से ।। ४० ।।

महाबली, महावेगवान, ऐसे असंख्य (राक्षस) निकल पड़े। घण्टाजाल से युक्त अंगवाले वे रणांगण में नाचने लगे ।। ४१ ।।

विकृत और कठोर वचन बोलनेवाले, असंख्य राक्षसों की सेनाओं के अधिपति, श्रीरामचन्द्र के प्रति "पकड़ो, मारो, दौड़ो, कुचल डालो" ऐसा बोलते हुए दौड़ने लगे ।। ४२ ।।

।। इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में रावण-पुत्र-निर्याण नाम
एकोनविंश सर्ग समाप्त ।। १९ ।।

विंश सर्ग

संकुलयुद्ध-वर्णन

तब धनुष्य को कंपायमान करता हुआ वह कुबेर का छोटा भाई (सहस्रवदन रावण) "यह कौन है ? किसलिए आया है ?" ऐसी चिन्ता करने लगा ।। १ ।।

उस समय आकाश से वाणी हुई— "हे महावीर्यवान् रावण ! ये रामचन्द्र आये हैं ।। २ ।।

ये राम हैं । धर्म-स्वरूपधारी अयोध्या के राजा जिसने (अपनी) पत्नी का हरण करनेवाले तेरे छोटे भाई रावण का लंका में वध किया है ।। ३ ।।

विभीषण को धन देनेवाले ये (राम) तेरा वध करने के लिए भाई, वानर, ऋक्ष, राक्षस तथा मनुष्यों के साथ यहाँ आये हैं" ।। ४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रुत्वा ह्यमानुषं वाक्यं रावणो लोकरावणः ।
क्रोधमाहारयामास द्विगुणं मुनिपुंगव ॥ ५ ॥
हन्यतां वध्यतामेष मानुषो रिपुसंज्ञितः ।
मम विश्वजितः साक्षाद्रणाय समुपस्थितः ॥ ६ ॥
इत्युक्त्वा बाणजालानि चक्रपर्वततोमरान् ।
चिक्षेप सहसा रक्षः पुष्पकोपरि सुव्रतः ॥ ७ ॥
राक्षसी सा चमूर्घोरा वानरानृक्षमानुषान् ।
चखादकांश्चिदपरान्पोथयामास दर्पितान् ॥ ८ ॥
सा च शाखामृगी सेना राघवस्य च मानुषी ।
रावणस्यानुगान्वीराञ्जघान बाणपर्वतैः ॥ ९ ॥
तेऽन्योन्यवधमिच्छन्तो युयुधुः सैनिकोत्तमाः ।
पेतुर्मम्लुश्च मुमुहू राक्षसा वानरा नराः ॥ १० ॥
ततो रामो महाबाहुर्भरतो लक्ष्मणस्तथा ।
शत्रुघ्नो हनुमान्वीरः सुग्रीवो जांबवांस्तथा ॥ ११ ॥
अन्ये च नलनीलाद्या विभीषणपुरोगमाः ।
युयुधुस्ते महाघोरं महाघोरे रणाजिरे ॥ १२ ॥
निर्जग्मुश्च विनेदुश्च चिक्रीडुश्चैव राक्षसाः ।
जहृषुश्च महात्मानः संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ १३ ॥
उत्कृष्टा स्फोटितैर्नादैश्चचालेव च मेदिनी ।
रक्षसां सिंहनादैश्च परिपूर्णं नभःस्थलम् ॥ १४ ॥
ते प्रायुध्यंत मुदिता राक्षसेंद्रा महाबलाः ।
प्रययुर्वानरानीकं समुद्यतशिलायुधम् ॥ १५ ॥
युयोध राक्षसं सैन्यं नरराक्षसवानरैः ।
हस्त्यश्वरथसंबाधं किंकिणीशतनादितम् ॥ १६ ॥
नीलजीमूतसंकाशैः समुद्यतशिलायुधैः ।
दीप्तानलरविप्रख्यैनैर्ऋतैः सर्वतो वृतम् ॥ १७ ॥
तद्वीक्ष्य राक्षसबलं संरब्धाश्च प्लवंगमाः ।
क्रुद्धं तद्राक्षसं सैन्यं जघ्नुर्द्रुमशिलायुधैः ॥ १८ ॥
ते पादपशिलाशैलैस्तां चक्रुर्वृष्टिमुत्तमाम् ।
वृक्षौघैर्वज्रसंकाशैर्हरयो भीमविक्रमाः ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह अमानुषी (दिव्य) वचन सुनकर यह लोकरावण दुगुना क्रोध करता हुआ कहने लगा ।। ५ ।।

शत्रु रूपी इस मनुष्य को मारो। उसका वध करो। विश्वविजेता मुझसे युद्ध करने यह (मनुष्य) यहाँ उपस्थित हुआ है ।। ६ ।।

हे सुव्रत ! ऐसा कहकर वह राक्षस सहसा पुष्पक के ऊपर बाणों के समूह, चक्र, पर्वत, तोमर (आदि) फेंकने लगा ।। ७ ।।

वह भयंकर राक्षसी सेना वानर, ऋक्ष तथा मनुष्यों को खाने लगी। दूसरे कई अभिमानियों का उसने नाश किया ।। ८ ।।

और वह रामचन्द्र की मानुषी तथा वानरी सेना रावण के अनुचर-वीरों को बाण और पर्वतों से नष्ट करने लगी ।। ९ ।।

एक-दूसरे का वध करने की इच्छावाले वे उत्तम सैनिक युद्ध करने लगे। राक्षस, वानर तथा मनुष्य गिरने, मलिन होने तथा मूच्छित होने लगे ।। १० ।।

तब महाबाहु राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, वीर हनुमान, सुग्रीव, जांबवान तथा अन्य नल-नील, विभीषण आदि उस भयंकर रणांगण में घोर युद्ध करने लगे ।। ११-१२ ।।

वे राक्षस निकलने लगे, गर्जना करने लगे तथा क्रीड़ा करने लगे। संग्राम से न लौटनेवाले महात्मा प्रसन्न होने लगे ।। १३ ।।

वे उत्कृष्ट (योद्धा) अपने स्फोट तथा नाद से मानो पृथ्वी को कंपायमान करने लगे। राक्षसों के सिंहनाद से आकाश (का स्थान) पूर्ण हो गया ।। १४ ।।

वे महाबलवान् राक्षसेन्द्र प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे। हाथ में शिला लिये हुए वे वानरों की सेना की ओर जाने लगे ।। १५ ।।

हाथी, घोड़े, रथ से युक्त तथा सैकड़ों किंकिणियों से नादित राक्षस का सैन्य नर, राक्षस तथा वानरों से युद्ध करने लगा ।। १६ ।।

नील मेघ के समान शिला रूपी आयुध उठाये, दीप्त अग्नि तथा सूर्य के समान (तेजस्वी) राक्षसों से चारों दिशाएँ आवृत हो गईं ।। १७ ।।

राक्षसों की उस सेना को देखकर वानर उत्तेजित हो गये। विवृक्ष तथा शिला रूपी आयुधों से उस क्रुद्ध राक्षस-सैन्य को मारने लगे ।। १८ ।।

वे वृक्ष, शिला तथा पर्वतों को उठा-उठाकर उनकी ज़ोरदार वर्षा करने लगे। वज्र के समान वृक्ष-समूहों से वानर भयंकर पराक्रम करने लगे ।। १९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखरैः शिखराभास्ते यातुधानानमर्दयन् ।
निर्जघ्नुः समरे क्रुद्धा हरयो राक्षसर्षभान् ।। २० ।।

केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिस्थितानपि ।
निर्जघ्नुः सहसाप्लुत्य यातुधानान्प्लवंगमाः ।। २१ ।।

शैलश्रृंगनिभास्ते तु मुष्टिनिष्क्रांतलोचनाः ।
वेपुः पेतुश्च नेदुश्च ततो राक्षसपुंगवाः ।। २२ ।।

ततः शूलैश्च वज्रैश्च विमुष्टैर्हरिपुंगवैः ।
मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितप्लुता ।। २३ ।।

विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च रक्षोभिरुपमर्द्दितैः ।
आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशेषाश्च वानराः ।। २४ ।।

रथेन रथिनं चापि राक्षसं राक्षसेन च ।
हयेन च हयं केचित्पिपिर्षुर्धरणीतले ।। २५ ।।

वानरान्वानरैरेव जघ्नुर्घोरा हि राक्षसाः ।
राक्षसान्राक्षसैरेव पिपिषुर्वानरा युधि ।। २६ ।।

आक्षिप्य च शिला जघ्नु राक्षसा वानरांस्तथा ।
तेषामाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नुस्तानपि वानराः ।। २७ ।।

निर्जघ्नुः शैलशिखरैर्विभिन्नाश्च परस्परम् ।
सिंहनादं विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ।। २८ ।।

छिन्नचर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैः कृताः ।
सुस्राव रुधिरं तेभ्यः स्रवतः पर्वतादिव ।। २९ ।।

तस्मिंस्तदा संयति संप्रवृत्ते कोलाहले राक्षसराजधान्याम् ।
संहृष्यमाणेषु च वानरेषु निपात्यमानेषु च राक्षसेषु ।। ३० ।।

प्रभज्यमानेषु महाबलेषु महर्षयो भूतगणाश्च नेदुः ।
तेनापि सर्वे हरयः प्रहृष्टा विनेदुराक्ष्वेडितसिंहनादैः ।। ३१ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे संकुलयुद्धं नाम
विंशः सर्गः ।। २० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखर के समान वे (वानर) शिखरों को (उखाड़-उखाड़कर) राक्षसों को मारने लगे। क्रुद्ध वानर युद्ध में राक्षस-श्रेष्ठों का हनन करने लगे ॥ २० ॥

कई वानर रथ, हाथी और घोड़े पर बैठे हुए राक्षसों को भी सहसा आक्रमण करके मारने लगे ॥ २१ ॥

पर्वत के शिखरों के समान मुष्टिप्रहार से जिनके नेत्र निकल पड़े हैं, ऐसे राक्षसश्रेष्ठ कंपित होकर गिरने तथा गर्जना करने लगे ॥ २२ ॥

(तब) वानरों के शूल, वज्र तथा मुष्टिप्रहारों से वह भूमि मुहूर्त-मात्र में खून से रँग गई ॥ २३ ॥

राक्षसों के द्वारा तोड़े हुए, बिकीर्ण पर्वत-शिखरों से कई वानर आक्षिप्त हुए तथा बाक़ी के वानर भग्न हो गये (अर्थात् राक्षसों ने बड़ी-बड़ी शिलाओं को वानरों पर फेंका। उसकी मार लगने से कई वानरों को गंभीर चोट लगी) ॥ २४ ॥

कई (वानर) रथ से रथी को, राक्षस से राक्षस को तथा घोड़े से घोड़े को धरणी-तल पर पीसने लगे ॥ २५ ॥

घोर राक्षस भी वानरों को वानरों से ही मारने लगे। (तथा) युद्ध में वानर राक्षसों को राक्षसों से ही पीसने लगे ॥ २६ ॥

शिलाएँ फेंक (-फेंक) कर राक्षस वानरों का हनन करने लगे। वानर भी उनके शस्त्रों को तोड़कर उन राक्षसों को मारने लगे ॥ २७ ॥

विभिन्न (राक्षस तथा वानर) एक-दूसरों को पर्वत-शिखरों से मारने लगे। रण में वानर तथा राक्षस सिंहनाद करने लगे ॥ २८ ॥

वानरों ने राक्षसों के चर्म के बख़्तरों को तोड़ डाला। पर्वतों से झरने के समान उनके (शरीर से) रुधिर बहने लगा ॥ २९ ॥

उस समय राक्षस की राजधानी में युद्ध में जब कोलाहल मचा हुआ था, वानर प्रसन्न हो रहे थे और राक्षस गिर रहे थे, ॥ ३० ॥

तथा महासेना भग्न हो रही थी, तब महर्षि लोग तथा भूतगण नाद करने लगे। उससे भी सारे वानर प्रसन्न हुए तथा भुजा फटकारते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण
के अद्‌भुतोत्तरकाण्ड में संकुलयुद्ध नाम
विंश सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकविंशः सर्गः

ततो रथं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।
स रावणो रामबलं प्रहृष्टो विवेश मीनो हि यथार्णवौघम् ॥ १ ॥

स वानरान्हीनबलान्निरीक्ष्य प्राणेन दीप्तेन रराज राजा ।
एकक्षणेनेंद्ररिपुर्महात्मा निहंतुमैच्छन्नरवानरांश्च ॥ २ ॥

मनसा चिंतयामास सहस्र कंधरः स्वराट् ।
एते क्षुद्राः समायाताः प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३ ॥

द्वीपांतरं महत्प्राप्य मम युद्धाभिकांक्षिणः ।
किं स्यान्मे महतैः क्षुद्रैर्नरराक्षसवानरैः ॥ ४ ॥

यस्माद्देशात्समायातास्तं देशं प्रापयाम्यहम् ।
क्षुल्लकेषु शराघातं न प्रशंसंति पंडिताः ॥ ५ ॥

इति संचित्य धनुषावायव्यास्त्रं युयोज ह ।
तेनास्त्रेण नरा ऋक्षा वानरा राक्षसा हि ते ॥ ६ ॥

यस्माद्यस्मात्समायातास्तं तं देशं प्रयापिताः ।
गलहस्तिकया विप्र चोरान्राजभटा इव ॥ ७ ॥

ते सर्वे स्वगृहं प्राप्ता अस्त्रवेगेन विस्मिताः ।
क्व स्थिताः क्व समायाता मन्यन्त स्वप्न एव तैः ॥ ८ ॥

प्रलयानिलवेगेन अस्त्रेण वंचिता भृशम् ।
भरतो लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नो हनुमांस्तथा ॥ ९ ॥

सुग्रीवनलनीलाद्या हरयोऽनिलरंहस ।
विभीषणपुरोगाश्च राक्षसाः क्रूरविक्रमाः ॥ १० ॥

वानराश्च नरा ऋक्षा राक्षसा अक्षता गृहम् ।
प्राप्यातिविस्मिताः सर्वे शोचन्तो राममेव हि ॥ ११ ॥

पुष्करे पुष्पकेतिष्ठन्ससीतो राघवः परम् ।
आस्ते स्म नास्त्रवेगोऽयं रामं चालयितुं क्षमः ॥ १२ ॥

महर्षयोऽपि तत्रासन्किमेतदिति विस्मिताः ।
सापि सीता महाभागा तत्रास्ते स्म शुचिस्मिता ॥ १३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकविंश सर्ग

राम की सेना में रावण द्वारा अव्यवस्था फैलाना

जिस प्रकार मछली (मत्स्य) सागर में प्रवेश करती है, ठीक उसी प्रकार तब पवन के समान वेग वाले रथ पर चढ़कर, तीक्ष्ण शक्ति को साथ में लेकर वह रावण राम के सैन्य में प्रविष्ट हुआ ।। १ ।।

वानरों को असमर्थ देखकर वह राजा दीप्त प्राणों (उत्साह) से सुशोभित होने लगा। वह इन्द्रशत्रु महात्मा एक ही क्षण में नर तथा वानरों को मारने की इच्छा करने लगा ।। २ ।।

वह सहस्रवदन राजा मन में सोचने लगा— ये क्षुद्र अपने प्राण तथा धन छोड़कर यहाँ आये (हुए) हैं ।। ३ ।।

और दूसरे, बड़े द्वीप में आकर मुझसे युद्ध करने की इच्छा करते हैं। इन अत्यन्त क्षुद्र नर— राक्षसों तथा वानरों को मारने से मुझे क्या मिलेगा ? ।। ४ ।।

ये जिस देश से आये हैं, उसी देश में मैं इन्हें पहुँचाता हूँ। पंडित (लोग) क्षुद्रों के प्रति बाण चलाने (के पराक्रम) की प्रशंसा नहीं करते ।। ५ ।।

ऐसा सोचकर उसने वायव्यास्त्र को चढ़ाया। उस शस्त्र से मनुष्य, रीछ, वानर, राक्षस जिस-जिस देश से आये थे उस-उस देश में पहुँच गये। हे विप्र ! जिस प्रकार राजसेवक चोरों को गलहस्त दे (की गर्दन पकड़) कर निकाल देते हैं, (उसी प्रकार) वे सब अस्त्रवेग (के प्रभाव) से अपने-अपने घर पहुँच गये। तथा वे सब आश्चर्य करने लगे कि 'हम कहाँ थे और कहाँ आ गये ! यह स्वप्न ही है' —ऐसा वे मानने लगे ।। ६-८ ।।

प्रलय के पवन के समान वेग वाले अस्त्र से भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा हनुमान अत्यन्त वंचित हुए ।। ९ ।।

पवन के समान वेग वाले सुग्रीव, नल, नील तथा विभीषणादि घोर पराक्रम वाले राक्षस भी (वंचित हुए) ।। १० ।।

वानर, नर, रीछ, राक्षस सब सुरक्षित अपने-अपने घर पहुँच गये, अतः अत्यन्त विस्मित हो गये और श्रीराम के बारे में ही विचार करने लगे ।। ११ ।।

पुष्पक (विमान) में सीता-सहित बैठे हुए राम पुष्कर में (ही) रहे। यह अस्त्रवेग श्रीराम को चलित करने में समर्थ नहीं हुआ ।। १२ ।।

वहाँ उपस्थित महर्षि भी 'यह क्या है' ऐसा सोचकर विस्मित हुए। वे महाभागा शुचिस्मिता (पवित्र स्मित करनेवाली) सीताजी भी वहीं (राम के साथ) स्थित रहीं ।। १३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गन्धर्वनगराकारं दृष्ट्वा रामबलं महत् ।
स्वस्तीतिवादिनः सौम्यशांति जेपुर्महर्षयः ।। १४ ।।
अन्तरिक्षचराः सर्वे हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
देवा अग्निमुखा विप्र किं कृतं रावणेन हि ।। १५ ।।
गरुडस्थो यदा विष्णुं रावणं हन्तुमागत ।
लीलया लवणांभोधौ क्षिप्तो विष्णुः सनातनः ।। १६ ।।
साट्टहासं विनद्योच्चै रक्षसा वामपाणिना ।
ततः प्रभृति देवाश्च गंधर्वाः किन्नरा नराः ।। १७ ।।
गन्धमस्य न गृह्णन्ति शार्दूलस्येव जंबुकाः ।
सोऽयं विष्णुर्दशरथाज्जातो देवः सनातनः ।। १८ ।।
अस्माकं भागधेयेन रामो जयतु रावणम् ।
परस्परं सुराः सर्वे वदन्तोऽन्तर्हिता स्थिताः ।। १९ ।।
ननर्द च सहस्रास्यः क्षुद्रं मत्वा स राघवम् ।
विसिष्मिये च रामोऽपि तद्दृष्ट्वा कर्म दुष्करम् ।। २० ।।
क्रोधमाहारयामास रावणस्य वधं प्रति ।
ततः किलकिलाशब्दं चक्रु राक्षसपुंगवाः ।। २१ ।।
स राघवः पद्मपलाशलोचनो
जज्वाल कोपेन द्विषज्जयेषणः ।
रामं प्रहर्तुं न शशाक मेदिनी
चकंपिरे वारिधयो ग्रहा अपि ।। २२ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तर काण्डे रामसैन्यविक्षेपणं नाम एकविंशः सर्गः ।। २१ ।।

द्वाविंशतिः सर्गः

विनर्दंतं रिपुं दृष्ट्वा रामः शत्रुनिबर्हणः ।
जज्वाल च स कोपेन रक्षसां सहजो रिपुः ।। १ ।।
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठं प्रलयानलसंनिभम् ।
वेगेन बाणांश्चिक्षेप रक्षसां मर्मसु प्रभुः ।। २ ।।
तिलशः खण्डयन्ति स्म बाणा राक्षसपुङ्गवान् ।
कदा धनुषि संधत्ते कदा विसृजति प्रभुः ।। ३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राम के गन्धर्व नगर के समान उस बड़े सैन्य को देखकर महर्षि लोग 'स्वस्ति-स्वस्ति' का उच्चारण करके सौम्यशांति (मंत्र) का जप करने लगे ॥ १४ ॥

सारे अन्तरिक्षचारी जीव हाहाकार करने लगे। हे विप्र! अग्निमुख वग़ैरः देव (बोलने लगे—) "रावण ने यह क्या कर दिया?" ॥ १५ ॥

जब गरुड़ पर स्थित होकर विष्णु रावण को मारने आये, (तब) लीला से ही (रावण ने) सनातन विष्णु को समुद्र में फेंक दिया ॥ १६ ॥

(उस) राक्षस ने ज़ोर से अट्टहास करते हुए बायें हाथ से ही (यह पराक्रम किया)। तब से देवता, गंधर्व, किन्नर, नर ॥ १७ ॥

जिस प्रकार जंबुक (सियार) शार्दूल (शेर) की गंध नहीं ग्रहण करते, वैसे वे (भी) उस (रावण) की गंध ग्रहण नहीं करते (अर्थात् उसके निकट जाने का साहस नहीं करते) ॥ १८ ॥

'हमारे भाग्य से राम रावण को जीतें —इस प्रकार अंतर्हित होकर सारे देवता आपस में बात करने लगे ॥ १९ ॥

और राम को क्षुद्र मानकर सहस्रवदन रावण गर्जना करने लगा। उसका यह दुष्कर कर्म देखकर राम को भी आश्चर्य हुआ ॥ २० ॥

(तथा) रावण का वध करने के लिए (उन्होंने) बड़ा क्रोध किया। तब राक्षसश्रेष्ठ 'किलकिल' शब्द करने लगे ॥ २१ ॥

तब कमल के समान लोचन वाले शत्रु को जीतने की इच्छा वाले राम क्रोध से जलने लगा। (जब वह रावण) राम को मारने में समर्थ न हुआ, तब पृथ्वी, समुद्र तथा ग्रह भी कंपित होने लगे ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में राम-सैन्य-विक्षेपण नामक
एकविंश सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी का मूर्छित होना

शत्रुओं का नाश करनेवाले, राक्षसों के स्वाभाविक शत्रु श्रीराम शत्रु को गर्जना करते हुए देखकर कोप से जल उठे ॥ १ ॥

(उन्होंने) प्रलय के अग्नि के समान श्रेष्ठ धनुष को खींचा तथा राक्षसों के मर्मस्थल पर प्रभु वेग से बाण फेंकने लगे ॥ २ ॥

बाण राक्षसश्रेष्ठों को तिल-तिल खंडित करने लगे। भगवान (राम) कब धनुष पर (बाण) चढ़ाते थे और कब छोड़ते थे, इसमें तनिक भी अंतर लक्षित नहीं होता था। किन्तु शत्रुओं का विनाश होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नान्तरं ददृशे कैश्चिच्छिन्नाः स्युररयः परम् ।
जघान राक्षसान्रामो रुद्र पशुगणानिव ।। ४ ।।
तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म कृतं रामेण रावणः ।
अनीकाग्रं समासाद्य युयुधे राघवेण हि ।। ५ ।।
रे रे राक्षससेनान्यः प्रेक्षका इव तिष्ठत ।
अहमेको हनिष्यामि नरमाकस्मिकं रिपुम् ।। ६ ।।
अद्य निर्मानवां पृथ्वीं निर्देवं त्रिदिवं तथा ।
करिष्यास्यहमेवैकः शोषयिष्यामि वारिधीन् ।। ७ ।।
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि पातयिष्यामि वै ग्रहान ।
इत्युक्त्वा राक्षसश्रेष्ठो रामं योद्धुमथाह्वयत् ।। ८ ।।
त्वामद्य खड्गेनाच्छिद्य तर्पयिष्यामि चानुगान् ।
नेयं लंकापुरी राम नाहञ्च दशकन्धरः ।। ९ ।।
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया रघुनन्दन ।
कपित्थमिव काकुत्स्थ करी मदकलः किल ।। १० ।।
इत्युक्त्वा रावणो युद्धं रामेण सह चारभत् ।
तदभूद्वैरथं युद्धं बलिवासवयोरिव ।। ११ ।।
रावणं प्राप्य रामोऽपि परं हर्षमुपागतम् ।
तदभूदद्भुतं युद्धं द्वयोर्वै रोमहर्षणम् ।। १२ ।।
रामस्य च महाबाहोर्बलिनो रावणस्य च ।
गांधर्वेण च गांधर्वं दैवं दैवेन राघवः ।। १३ ।।
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
अस्त्रयुद्धे च परमो रावणो राक्षसाधिपः ।। १४ ।।
ससर्ज परमक्रुद्धः पन्नगास्त्र स राघवे ।
ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः कांचनभूषिताः ।। १५ ।।
अभ्यवर्त्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ।
ते सर्पवदना घोरा वमन्तो ज्वलनं मुखैः ।। १६ ।।
राममेवाभ्यवर्त्तंत व्यादितास्या भयावहाः ।
तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ।। १७ ।।
दिशश्च विदिशश्चैव समंतादावृता भृशम् ।
रामः संपततो दृष्ट्वा पन्नगांस्तान्सहस्रशः ।। १८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस प्रकार रुद्र पशुगणों का संहार करते हैं, (ठीक) उसी प्रकार राम राक्षसों का हनन करते थे ।। ३-४ ।।

राम द्वारा किये गये उस दुष्कर कर्म को देखकर रावण सैन्य के अग्र भाग में आया और राम के साथ युद्ध करने लगा ।। ५ ।।

(रावण ने अपनी सेना को संबोधनपूर्वक कहा—) "हे राक्षस-सेना के अधिपतियो ! तुम (सब) प्रेक्षक (दर्शक) की तरह खड़े रहो। अकस्मात् उपस्थित (हो जानेवाले) इस नर रूपी राक्षस का वध मैं अकेला ही करूँगा ।। ६ ।।

आज मैं अकेला ही पृथ्वी को मनुष्य-रहित एवं स्वर्ग को देवताओं से शून्य कर दूँगा और समुद्र को सुखा डालूँगा ।। ७ ।।

पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण कर दूंगा, ग्रहों को गिरा दूँगा।" इस प्रकार कहकर राक्षस-श्रेष्ठ (रावण) ने राम को युद्ध के लिए आह्वान किया— ।। ८ ।।

"आज तुमको खड्ग से काटकर अपने अनुचरों को तृप्त करूँगा। हे राम ! न तो यह (प्रदेश) लंका पुरी है, न तो मैं दसमुख रावण हूँ ।। ९ ।।

जिस प्रकार मतवाला हाथी कपित्थ (फल) को पीस डालता है, वैसे हे रघुनन्दन, काकुत्स्थ ! तुम्हारे मस्तक को मैं गदा से नष्ट कर दूँगा" ।। १० ।।

ऐसा कहकर रावण ने राम के साथ युद्ध करना आरंभ किया। तब बलि तथा इन्द्र के युद्ध के समान द्वैरथ युद्ध होने लगा ।। ११ ।।

श्रीराम भी रावण (के साथ युद्ध का अवसर पाकर) को प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय उन दोनों का अद्भुत रोमहर्षक युद्ध होने लगा ।। १२ ।।

महाबाहु श्रीराम तथा बलवान रावण के बीच युद्ध हुआ। राघव ने गांधर्व (अस्त्र का) गांधर्व (अस्त्र से) तथा दैव का दैव (अस्त्र से नाश किया।) परम अस्त्रवेत्ता राम ने राक्षसराज के अस्त्र का नाश किया। राक्षसाधिपति श्रेष्ठ रावण ने अस्त्र-युद्ध में अतिशय क्रोधित होकर राघव के प्रति पन्नगास्त्र छोड़ा। रावण के धनुष से मुक्त होकर वे सुवर्णभूषित बाण महाविष (वाले) सर्प बनकर राम के ऊपर गिरने लगे। सर्पवदन वाले वे भयंकर (बाण) मुख से अग्नि का वमन करते थे ।। १३-१६ ।।

मुख फैलाये हुए वे भयानक (सर्प) राम के प्रति ही दौड़ने लगे। वासुकि के समान स्पर्शवाले, दीप्त भोगवाले उन महा विषैले सर्पों से दिशा-विदिशाएँ चारों ओर से व्याप्त हो गयीं। तब उन हज़ारों सर्पों को गिरते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुनः प्रावर्तयद्रणे ।
रामेण च शरा मुक्ता रुक्मपुंखाः शिलाशिताः ।। १९ ।।
सुपर्णाः कांचना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ।
ते ताञ्छत्रुशराञ्जघ्नुः सर्परूपान्महाविषान् ।। २० ।।
सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ।
अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।। २१ ।।
अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिश्चाश्मवृष्टिभिः ।
ततः शरसहस्रेण पुनरक्लिष्टकारिणम् ।। २२ ।।
रामबाणानभ्यहनद्घोराभिः शरवृष्टिभिः ।
विषेदुर्देवगंधर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ।। २३ ।।
राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।
रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा ।। २४ ।।
प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ।
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामहिते रतः ।। २५ ।।
सधूमः परिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ।
उत्पपात ततः क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ।। २६ ।।
नष्टरूपश्च परुषो मंदरश्मिर्दिवाकरः ।
अदृश्यत कबंधांकः समेतो धूमकेतुना ।। २७ ।।
ऋक्षाश्वरवनिर्घोषा गगने परुषाधमाः ।
औत्पातिकानि नर्दन्ति समंतात्परिचक्रमुः ।। २८ ।।
रामोऽपि बद्वा भ्रूकुटिं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
क्रोधं चकार सुभृशं निर्दहन्निव राक्षसम् ।। २९ ।।
तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकंपत मही तदा ।। ३० ।।
सिंहशार्दूलमाञ्छैलः प्रजज्वालाकुलद्रुमः ।
बभूव चातिक्षुभितः समुद्र इव पर्वसु ।। ३१ ।।
लंकायां रावणवधे यं प्रायुंक्त शरं प्रभुः ।
जग्राह तं शरं दीप्तं निःश्वसंतमिवोरगम् ।। ३२ ।।
यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महाबाणं यमाह युधि तद्वधे ।। ३३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए देखकर राम ने रण में घोर सौपर्ण अस्त्र प्रवर्तित किया। राम ने सुवर्ण के पंखवाले तथा पत्थर पर पैनाये हुए बाण छोड़े ॥ १७-१९ ॥

तब सर्प के शत्रु सुपर्ण (गरुड़) बनकर चारों ओर विचरने लगे। उन्होंने महाविषैले सर्प-रूप शत्रुओं के उन शरों का नाश कर दिया ॥ २० ॥

राम के काम रूपी सुपर्ण के रूपधारी बाणों ने (सर्प रूपी बाणों का नाश कर दिया) अस्त्र नष्ट हो जाने से क्रोधित होकर राक्षसाधिपति रावण ने ॥ २१ ॥

राम के प्रति घोर पत्थरों की वृष्टि की। तब अक्लिष्ट कर्म करनेवाले (राम) के प्रति (उसने) हज़ारों बाण (छोड़े) ॥ २२ ॥

(तथा) घोर बाण-वर्षा करके राम के बाणों का नाश किया। देव, गन्धर्व, चारण, पितृ (यह देखकर) दुःखी हुए ॥ २३ ॥

तथा परम सिद्ध ऋषिजन भी राम को व्याकुल देखकर दुःखी हुए। राम रूपी चन्द्रमा को रावण रूपी राहु से ग्रस्त देखकर प्रजा के अहित में रत बुध प्रजापति के नक्षत्र तथा चन्द्र की प्रिया रोहिणी पर आक्रमण करके स्थित हुआ ॥ २४-२५ ॥

सागर मानो जलने लगा। उसमें से धूमयुक्त तरंगें निकलने लगीं। तब क्रोधित होकर सूर्य को मानो स्पर्श करना चाहता हो वैसे (वह) कूदा ॥ २६ ॥

उस समय नष्ट-भ्रष्ट-सा, पुरुष, निस्तेज किरणोंवाला तथा केतु से ग्रसित सूर्य धूमकेतु के सहित दीखने लगा ॥ २७ ॥

आकाश में घोड़े की हिनहिनाहट जैसी नक्षत्रों की तीक्ष्ण ध्वनि उत्पन्न हो गई। चारों ओर हाहाकार पूर्ण उत्पात (के बादल) मँड़राने लगे ॥ २८ ॥

क्रोध से लाल नेत्रवाले राम ने भी भृकुटि चढ़ाकर राक्षस को मानो जलाते हुए अत्यन्त क्रोध किया ॥ २९ ॥

तब बुद्धिमान राम के क्रुद्ध मुख को देखकर प्राणीमात्र त्रस्त हुए तथा पृथ्वी काँपने लगी ॥ ३० ॥

सिंह शार्दूल के सहित तथा अस्त-व्यस्त वृक्षवाला पर्वत जलने लगा तथा वह पर्व के समय के समुद्र के समान अति क्षुभित होने लगा ॥ ३१ ॥

लंका में रावण के वध के लिए प्रभु ने जो बाण प्रयुक्त किया था, सर्प के समान उसी दीप्त बाण को उन्होंने निःश्वास छोड़ते हुए लिया ॥ ३२ ॥

प्रथम जो बाण भगवान अगस्त्य ऋषि ने उनको दिया था, (और) जो बाण ब्रह्मा का दिया हुआ था, उसी को उसके (रावण के) वध के लिए राम ने ग्रहण किया ॥ ३३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्णमिंद्राद्यमिततेजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रैलोक्यजयकांक्षिणः ।। ३४ ।।
यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ।। ३५ ।।
पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ।
धनदो वरुणश्चैव पाशहस्तस्तथांतकः ।। ३६ ।।
जाज्वल्यमानं वपुषा सपुंखं हेमभूषितम् ।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसा ।। ३७ ।।
सधूममिव कालाग्निं दीप्यमानं रविं यथा ।
रथनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ।। ३८ ।।
परिघाणां सहस्राणां गिरीणां चैव भेदनम् ।
नानारुधिरसिक्तांगं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ।। ३९ ।।
कालाभं सुमहानादं नानाशक्तिविनाशनम् ।
शत्रूणां त्रासजननं सपक्षमिव पन्नगम् ।। ४० ।।
काकगृध्रबकानां च गोमायुवृकरक्षसाम् ।
नित्यं भक्ष्यप्रदं युद्धे राक्षसानां भयावहम् ।। ४१ ।।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रकर्षकरमात्मनः ।
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः ।। ४२ ।।
वेदप्रोक्तेन विधिना कुण्डलीकृत्य कार्मुकम् ।
स रावणाय तं वेगाच्चिक्षेप शरमुत्तमम् ।। ४३ ।।
स सायको धनुर्मुक्तो हन्तुं रामेण रावणम् ।
धूमपूर्वं प्रजज्वाल प्राप्य वायुपथं महान् ।। ४४ ।।
तं वज्रमिव दुर्धर्षं वज्रपाणिविसर्जितम् ।
कृतांतकमिवावार्यं रावणो वीक्ष्य तत्पुरः ।। ४५ ।।
हुंकृत्य किल जग्राह बाणं वामेन पाणिना ।
ततस्तं जानुना कृष्य बभंज राक्षसाधिपः ।। ४६ ।।
भग्ने तस्मिञ्छरे रामो विमना इव तस्थिवान् ।
सहस्रकन्धरः क्रुद्धः क्षुरंप्रगृह्य सायकम् ।। ४७ ।।
विव्याध राघवं वक्षः सर्वप्राणेन राक्षसः ।
वक्षो निर्भिद्य स शरो रामस्य सुमहात्मनः ।। ४८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्र से अमित तेज द्वारा ब्रह्मा ने इसका निर्माण किया था। वह पहले त्रिलोकी के जय की इच्छावाले इन्द्र को दिया गया था ॥ ३४ ॥

जिसके पंख में पवन, फल में अग्नि और सूर्य थे, जिसका शरीर आकाशमय था तथा गुरुता में जो मेरु-मंदर के समान था, जिसके पर्वों (ग्रंथियों) में कुबेर, वरुण, हाथ में पाश लिये हुए यमराज (आदि) महा तेजस्वी लोकपाल स्थित थे ॥ ३५-३६ ॥

शरीर से प्रकाशमान, सुवर्ण के पंख से भूषित, सूर्य के समान तेज से सब लोक का प्रकाश करनेवाला, धूमयुक्त कालाग्नि के समान, प्रकाश में सूर्य के समान, रथ हाथी तथा अश्वों के समूह का भेदन करनेवाला ॥ ३७-३८ ॥

सहस्रों परिघ और पर्वतों को भेदनेवाला रुधिरसिक्त अनेक अंगोंवाला, मेद से लिप्त, घोर काल के समान (भयानक) बड़े (भीषण) नाद से अनेक शक्तियों का नाश करनेवाला, शत्रुओं को त्रास देनेवाला, पंखयुक्त सर्प के समान ॥ ३९-४० ॥

काक, गृध्र, बक, शृगाल, भेड़ियों तथा राक्षसों को नित्य भक्ष्य देनेवाला, राक्षसों को भय देनेवाला ॥ ४१ ॥

शत्रुओं की कीर्ति हरनेवाला, अपनी उन्नति करनेवाला जो बड़ा बाण था, उसे अभिमंत्रित करके महाबाहु श्रीराम ने ॥ ४२ ॥

वेदोक्त विधि से बाण को (धनुष पर) चढ़ाकर उस उत्तम बाण को रावण के प्रति वेग से फेंका ॥ ४३ ॥

राम द्वारा रावण का वध करने के लिए धनुष से मुक्त किया गया बाण वायुमार्ग को प्राप्त करके प्रथम धूमयुक्त होकर जलने लगा ॥ ४४ ॥

इन्द्र के हाथ से छोड़े हुए वज्र के समान दुर्धर्ष, आतंक फैलानेवाले, जिसका निवारण न किया जा सके ऐसे उस बाण को अपने सामने देखकर रावण ने ॥ ४५ ॥

हुंकार करते हुए बायें हाथ से उस बाण को पकड़ लिया तथा जानु से खींचकर उसे तोड़ डाला ॥ ४६ ॥

उस बाण के भग्न होने पर राम खिन्न होकर खड़े रहे। क्रोधित राक्षस सहस्रवदन ने तीक्ष्ण बाण लेकर (अपनी) सारी शक्ति लगाकर राम की छाती में मारा। महात्मा राम की छाती का भेदन करके वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भित्त्वा महीं च सहसा पाताल तलमाविशत् ।
ततो रामो महाबाहुः पपात पुष्पकोपरि ।। ४९ ।।
निःसंज्ञो निश्चलश्चासीद्धाहा भूतानि चक्रिरे ।
प्राकम्पत मही सर्वा सपर्वतवनाब्धिका ।
ऋषयः कांदिशीकास्ते हा राम इति वादिनः ।। ५० ।।
दशशतवदनो जितारिरुग्रोरणशिरसि प्रननर्त सानुयात्रः ।
गगनतलगता निपेतुरुल्काः प्रलयमिवापि च मेनिरे जनौघाः।।५१।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे रामस्वप्नायितं नाम
द्वाविंशः सर्गः ।। २२ ।।

त्रयोविंशः सर्गः

रामं तथाविधं दृष्ट्वा मुनयो भयविह्वलाः ।
हाहाकारं प्रकुर्वंतः शांतिं जेपुश्च केचन ।। १ ।।
तदा तु मुनिभिर्दृष्टा सीता प्रहसितानना ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे सीतां प्रोचुर्महर्षयः ।। २ ।।
सीते कथं श्रावितोऽयं रावणं राघवस्त्वया ।
समुत्पन्नो विपाकोऽयं घोरो जनकनंदिनि ।। ३ ।।
क्व गता भ्रातरः सर्वे क्व गता वानरर्षभाः ।
मंत्रिणः क्व गता भद्रे रामस्य किमुपस्थितम् ।। ४ ।।
श्रुत्वैतद्वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
रामं तथाविधं दृष्ट्वा शयानं पुष्पकोपरि ।। ५ ।।
पुंडरीकनिभे नेत्रे निमील्य रणमूर्द्धनि ।
आलिंग्य चोरसा सुप्तं प्रियामिव धनुः शरम् ।। ६ ।।
नर्दन्तं राक्षसं चापि महाबलपराक्रमम् ।
साट्टहासं विनद्योच्चैः सीता जनकनंदिनी ।। ७ ।।
स्वरूपं प्रजहौ देवी महाविकटरूपिणी ।
क्षुत्क्षामा कोटराक्षी चक्रभ्रमितलोचना ।। ८ ।।
दीर्घजंघा महारावा मुंडमालाविभूषणा ।
अस्थिकिंकिणिका भीमा भीमवेगपराक्रमा ।। ९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाण पृथ्वी को (आर-पार) भेदकर सहसा पाताल के तल में प्रविष्ट हुआ। तब महाबाहु राम पुष्पक से गिर पड़े ॥ ४७-४९ ॥

(वे) अचेतन तथा निश्चल हो गये। सब प्राणी 'हा-हा' करने लग गये। पर्वत, वन तथा सागरों के साथ समग्र पृथ्वी कंपित होने लगी। ऋषिजन 'हे राम!' इस प्रकार के शब्द करने लगे ॥ ५० ॥

शत्रु को जीतनेवाला उग्र सहस्रवदन रावण अपने अनुयायियों के साथ रणमैदान में नृत्य करने लगा। आकाश से उल्कापात हुआ तथा मानो 'प्रलय हो गया' —ऐसा लोग मानने लगे ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में रामस्वप्नायितं नाम
द्वाविंश सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

त्रयोविंश सर्ग

श्री जानकी जी द्वारा सहस्रमुखी रावण का वध

श्रीराम को उस हालत में देखकर भय से विह्वल मुनि हाहाकार करने लगे। अन्य कई शान्तिपाठ का जप करने लगे ॥ १ ॥

तब मुनियों ने हँसमुख सीता को देखा। वशिष्ठ आदि महर्षि सीता से कहने लगे— ॥ २ ॥

"हे सीते! तुमने राम को रावण की बात क्यों सुनाई? हे जनकनन्दिनि! यह घोर विपाक उपस्थित हुआ है ॥ ३ ॥

सब भाई कहाँ गये? सारे वानरश्रेष्ठ कहाँ गये? हे भद्रे! सारे मंत्रीजन कहाँ हैं? राम को यह क्या हो गया है?" ॥ ४ ॥

महात्मा मुनियों के इस वचन को सुनकर तथा पुष्पक के ऊपर श्रीराम को इस प्रकार सोये हुए देखकर रण के अग्र भाग में कमल के समान (अपने) नेत्रों को मूंदकर, धनु को प्रिया के समान छाती से लगाकर, सोये हुए राम को देखकर ॥ ५-६ ॥

(तथा) महाबली पराक्रमी राक्षस को शोर मचाते हुए (देखकर) जनकनंदिनी सीता ने ऊँचे स्वर से अट्टहास करके ॥ ७ ॥

अपना (वर्तमान) स्वरूप छोड़ दिया तथा (दिव्य स्वरूप धारण कर लिया जो) महाभयानक रूपवाली, क्षुधा से क्षीण शरीरवाली, कोटर के समान नेत्र वाली, चक्र के समान भ्रमित लोचन वाली ॥ ८ ॥

दीर्घ जंघा वाली, महाशब्द वाली, मुण्डमाला के आभूषणों से विभूषित, हड्डियों की छोटी-छोटी घंटिकाओं से सजी हुई, भयावनी, भयंकर वेग तथा पराक्रम वाली ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खरस्वरा महाघोरा विकृता विकृतानना ।
चतुर्भुजा दीर्घतुंडा शिरोऽलंकरणोज्ज्वला ॥ १० ॥
ललज्जिह्वा जटाजूटैर्मण्डिता चण्डरोमिका ।
प्रलयांभोदकालाभा घंटापाशविधारिणी ॥ ११ ॥
अवस्कंद्य रथात्तूर्णं खड्गखर्परधारिणी ।
श्येनीव रावणरथे पपात निमिषान्तरे ॥ १२ ॥
शिरांसि रावणस्याशु निमेषान्तरमात्रतः ।
खड्गेन तस्य चिच्छेद सहस्राणीह लीलया ॥ १३ ॥
अन्येषां योद्धवीराणां शिरांसि नखरेण हि ।
भिन्ना निपातयामास भूमौ तेषां दुरात्मनाम् ॥ १४ ॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि जानकी ।
खड्गेन चाच्छिनत्कांश्चित्क्रूरान्पादांश्च चिच्छिदे । १५ ॥
खण्डं खण्डं चकारान्यांस्तिलशः कांश्चिदेव हि ।
अन्त्राण्यन्यस्याचकर्ष पादाघातेन कांश्चन ॥ १६ ॥
पार्श्वेन निजघानान्यान्पार्ष्णिनान्यानपोथयत् ।
कांश्चिच्छरीरवातेन दृष्ट्वाप्यन्यानपातयत् ॥ १७ ॥
प्रलयं कुर्वती सीता राक्षसानां भयंकरी ।
निजघानाट्टहासेन कांश्चित्पृष्ठे द्विधाकरोत् ॥ १८ ॥
कांश्चित्केशान्समाकृष्य निष्पिपेष महीतले ।
सारथान्सगजान्साश्वान्सगदान्सहतोमरान् ॥ १९ ॥
कांश्चिद्योधान्समाकृष्य मज्जयामास वारिधौ ।
गले चोद्बद्ध्य केषांचित्प्राणाञ्जग्राह जानकी ॥ २० ॥
केषांचित्स्कंध आरुह्य शिरांस्युत्पाटितानि हि ।
हुंकारेणाट्टहासेन कांश्चित्प्राणानहापयत् ॥ २१ ॥
कांश्चित्प्रचूर्ण्य वदनं पशुमारममारयत् ।
तान्सर्वान्निवमिषेणै निहत्य जनकात्मजा ॥ २२ ॥
तेषामंत्रेण शिरसां मालाभिः कृतभूषणा ।
रावणस्य शिरांस्युग्राण्यादाय रणमूर्द्धनि ॥ २३ ॥
कंदुकक्रीडनं कर्तुं मनश्चक्रे मनस्विनी ।
एतस्मिन्नंतरे तस्यां रोमकूपेभ्य उद्गताः ॥ २४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीक्ष्ण शब्द वाली, महाघोर, विकृत, विकृत मुख वाली, चार भुजाओं वाली, दीर्घमुख वाली, शिरोभूषणों से उज्ज्वल (प्रकाशमान) दिखाई देनेवाली ।। १० ।।

चलायमान जीभ वाली, जटाजूट से मण्डित, चण्ड रोम वाली, प्रलय के बादल के समान कान्ति वाली, घंटापाश को धारण करनेवाली ।। ११ ।।

(पुष्पक) रथ से शीघ्र उतरकर खड्ग, खर्पर धारण किये वाजिनी के समान क्षण भर में रावण के रथ पर टूट पड़ी ।। १२ ।।

एक निमेष-मात्र में ही लीलापूर्वक रावण के सहस्र शिर खड्ग से शीघ्र काट डाले ।। १३ ।।

और भी वीर योद्धाओं के सिर नखों से उखाड़ दिये। उन दुरात्माओं के टूटे हुए (सिर) भूमि पर फेंक दिये ।। १४ ।।

कइयों के कोष्ठ श्रीजानकी ने नखों से चीर डाले। कई क्रूरों (राक्षसों) को खड्ग से काट डाला, कइयों के पैर आदि अंगों को काट डाला ।। १५ ।।

अन्यों को खंड-खंड और तिल-तिल के बराबर काट दिया। दूसरे कई राक्षसों की अँतड़ियों को पदाघात करके खींचने लगीं ।। १६ ।।

दूसरे अनेक राक्षसों को पार्श्वभाग से प्रहार करने लगीं। कई अन्य राक्षसों को लात से पीसने लगीं। कइयों को शरीर की वायु से और कइयों को (मात्र) दृष्टि से भी गिराने लगीं ।। १७ ।।

राक्षसों के लिए भय उत्पन्न करनेवाली श्री सीता प्रलय मचाती हुई कइयों को अट्टहास से नष्ट करने लगीं। और अनेकों के पृष्ठभाग को चीरकर उनके दो टुकड़े कर दिये ।। १८ ।।

कइयों को केश खींचकर उनके रथ, हाथी, घोड़े, गदा तथा तोमर के साथ भूमि पर पटक देती थीं ।। १९ ।।

कई योद्धाओं को खींचकर (वे) समुद्र में डुबोने लगीं। जानकी जी ने (दूसरे) अनेकों का गला घोंटकर उनके प्राणों का हरण कर लिया ।।२०।।

कई (योद्धाओं के) कंधों पर कूदकर (उनके) मस्तकों को कुचल दिया। कइयों के प्राण तो केवल हुंकार और अट्टहास करके ही ले लिये ।। २१ ।।

कइयों के वदन को चूर्ण कर उनको पशु की तरह पीटने लगीं। (इस प्रकार) उन सभी को श्री जानकी ने क्षण भर में मार डाला ।। २२ ।।

(फिर) उनकी अँतड़ियों तथा मुण्डों की माला से (स्वयं) भूषित होकर रणभूमि में रावण के उग्र मस्तकों को उठा-उठाकर ।। २३ ।।

उस मनस्विनी ने कंदुक-क्रीड़ा करने की इच्छा की। उस समय उसके रोमकूपों से निकलकर ।। २४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मातरो विकृताकाराः साट्टहासाः समाययुः ।
सह कंदुकलीलार्थे सीतया ताः सहस्त्रशः ।। २५ ।।

तासां कासांचिदाख्यास्ये नामानि शृणु सुव्रत ।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्चराचराः ।। २६ ।।

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोनसी तथा ।
श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ।। २७ ।।

अप्सुजाता च गोपाली बृहदंबालिका तथा ।
जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी ।। २८ ।।

वसुदामा सुदामा च विशोका नंदिनी तथा ।
एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्चटीतमा ।। २९ ।।

उत्तेजनी जया सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।
शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ।। ३० ।।

माधवी शुभ्रवस्त्रा च तीर्थसेनी जटोज्ज्वला ।
गीतप्रिया च कल्याणी कद्रुरोमामिताशना ।। ३१ ।।

मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वेगवती विद्युज्जिह्वा च भारती ।। ३२ ।।

पद्मावती सुनेत्रा च गंधरा बहुयोजना ।
सन्नालिका महाकाली कमला च महाबला ।। ३३ ।।

सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।
नृत्यप्रिया परानन्दा शतोलूखलमेखला ।। ३४ ।।

शतघंटा शतानंदा आनंदा भवतारिणी ।
वपुष्मती चन्द्रसीता भद्रकाली सटामला ।। ३५ ।।

झंकारिका निष्कुटिका रामा चत्वरवासिनी ।
सुमला सुस्तनवती वृद्धिकामा जयप्रिया ।। ३६ ।।

धनदा सुप्रसादा च भवदा च जनेश्वरी ।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ।। ३७ ।।

कंदूतिः कंदुका चैव वेदमित्रा सुदेविका ।
लम्बास्या केतकी चैव चित्रसेना चलाचला ।। ३८ ।।

कुक्कुटिका शृंखलिका तथा शंकुलिका हडा ।
कन्दालिका काकलिका कुंभिकाथ शतोदरी ।। ३९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकृत आकारवाली माताएँ हँसती हुई उपस्थित हुईं। वे सहस्र (मातृकाएँ) सीताजी के साथ कंदुक-क्रीड़ा करने लगीं। हे सुव्रत ! मैं उन (माताओं) में से कइयों के नाम बताता हूँ, वह सुनो ! जिन कल्याणियों से चराचर तीनों लोक व्याप्त हैं ॥ २५-२६ ॥

(उनके नाम इस प्रकार हैं—) प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोनसी, श्रीमती, बहुला, बहुपुत्रिका, ॥ २७ ॥

अप्सुजाता, गोपाली, बृहदंबालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयंकरी, ॥ २८ ॥

वसुदामा, सुदामा, विशोका, नंदिनी, एकचूड़ा, महाचूड़ा, चक्रनेमि, चटीतमा, ॥ २९ ॥

उत्तेजनी, जया, सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुंजया, क्रोधना, शलभी, खरी, ॥ ३० ॥

माधवी, शुभवस्त्रा, तीर्थसेनी, जटोज्ज्वला, गीतप्रिया, कल्याणी, कद्रूरोमा, अमिताशना, ॥ ३१ ॥

मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वेगवती, विद्युज्जिह्वा, भारती, ॥ ३२ ॥

पद्मावती, सुनेत्रा, गंधरा, बहुयोजना, सन्नालिका, महाकाली, कमला, महाबला, ॥ ३३ ॥

सुदामा, बहुदामा, सुपन्ना, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, परानन्दा, शतोलूखलमेखला, ॥ ३४ ॥

शतघंटा, शतानंदा, आनन्दा, भवतारिणी, वपुष्मती, चंद्रसीता, भद्रकाली, सटामला, ॥ ३५ ॥

झंकारिका, निष्कुटिका, रामा, चत्वरवासिनी, सुमला, सुस्तनवती, वृद्धिकामा, जयप्रिया, ॥ ३६ ॥

घनदा, सुप्रसादा, भवदा, जनेश्वरी, एडी, भेडी, समेडी, वेतालजननी, ॥ ३७ ॥

कंदूति, कन्दुका, वेदमित्रा, सुदेविका, लंबास्या, केतलकी, चित्रसेना, चलाचला, ॥ ३८ ॥

कुक्कुटिका, शृंखलिका, शंकुलिका, हड़ा, कंदालिका, काकलिका, कुंभिका, शतोदरी, ॥ ३९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्क्राथिनी जवेला च महावेगा च कंकिनी ।
मनोजवा कटकिनी प्रघसा पूतना तथा ।। ४० ।।
खेशया चातिद्रढिमा क्रोशनाथ तडित्प्रभा ।
मंदोदरी च तुंडी च कोटरा मेघवाहिनी ।। ४१ ।।
सुभगा लंबिनी लंबा बहुचूडा विकत्थिनी ।
ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिंगाक्षी लोहमेखला ।। ४२ ।।
पृथुवक्त्रा मधुलिहा मधुकुंभा तथैव च ।
यक्षाणिका मत्सारिका जरायुर्जर्जरानना ।। ४३ ।।
ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा द्विज ।
खंडखंडा पृथुश्रोणी पूषणामणिकुट्टिका ।। ४४ ।।
अम्लोचा चैव निम्लोचा तथा लंबपयोधरा ।
वेणुवीणाधरा चैव पिंगाक्षी लोहमेखला ।। ४५ ।।
शशोलूकमुखी हृष्टा खरजंघा महाजरा ।
शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ।। ४६ ।।
जटालीका कामचरी दीर्घजिह्वाबलोत्कटा ।
कालाहिकाया मालीका मुकुटामुकुटेश्वरी ।। ४७ ।।
लोहिताक्षी महाकाया हविष्पिंडा च पिंडिका ।
एकत्वचा सुकूर्मा च कुल्लाकर्णी च कर्णिका ।। ४८ ।।
सुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ।
चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना ।। ४९ ।।
खरकर्णी महाकर्णा भेरीस्वनमहास्वना ।
शंखकुंभश्रवा चैव भगदा च महाबला ।। ५० ।।
गणा च सुगणा चैव कामदाप्यथ कन्यका ।
चतुष्पथरथा चैव भूतितीर्थान्यगोचरा ।। ५१ ।।
पशुदा विभुदा चैव सुखदा च महायशा ।
पयोदा गोमहिषदा सुविशाला चतुर्भुजा ।। ५२ ।।
प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुलोचना ।
नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मंथिनी तथा ।। ५३ ।।
एकवक्त्रा मेघरवा मेघवामा द्विरोचना ।
एताश्चान्याश्च बहवो मातरः कोटिकोटिशः ।। ५४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्क्राथिनी, जवेला, महावेगा, कंकिनी, मनोजवा, कटकिनी, प्रघसा, पूतना, ।। ४० ।।

खेशया, अतिद्रढ़िमा, क्रोशना, तडित्प्रभा, मंदोदरी, तुंडी, कोटरा, मेघवाहिनी, ।। ४१ ।।

सुभगा, लंबिनी, लंबा, बहुचूडा, विकत्थिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिंगाक्षी, लोहमेखला, ।। ४२ ।।

पृथुवक्त्रा, मधुलिहा, मधुकुंभा, यक्षाणिका, मत्सरिका, जरायु, जर्जरानना, ।। ४३ ।।

ख्याता, दहदहा, धमधमा, खंडखंडा, पृथुश्रोणी, पूषणा, मणि-कुट्टिका, ।। ४४ ।।

अम्लोचा, निम्लोचा, लंबपयोधरा, वेणुवीणाधरा, पिंगाक्षी, लोह-मेखला, ।। ४५ ।।

शशोलूकमुखी, हृष्टा, खरजंघा, महाजरा, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, ।। ४६ ।।

जटालीका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा, कालाहिका, मालीका, मुकुरा, मुकुटेश्वरी, ।। ४७ ।।

लोहिताक्षी, महाकाया, हविर्ष्पिडा, पिंडिका, एकत्वचा, सुकूर्मा, कुल्लाकर्णी, कर्णिका, ।। ४८ ।।

सुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्रावरणी, चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना, ।। ४९ ।।

खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वना, महास्वना, शंखकुंभश्रवा, भगदा, महाबला, ।। ५० ।।

गणा, सुगणा, कामदा, कन्यका, चतुष्पथरता, भूतितीर्था, अन्यगोचरा, ।। ५१ ।।

पशुदा, विभुदा, सुखदा, महायशा, पयोदा, गोमहिषदा, सुविशाला, चतुर्भुजा, ।। ५२ ।।

प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सुलोचना, नौकर्णी, मुखकर्णी, विशिरा, मंथिनी, ।। ५३ ।।

एकवक्त्रा, मेघरवा, मेघवामा —द्विरोचना, ये और अन्य भी करोड़ों माताएँ थीं ।। ५४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असंख्याताः समाजग्मुः क्रीडितुं सीतया सह ।
दीर्घवक्ष्यो दीर्घदंत्यो दीर्घतुंड्यो द्विजोत्तम ।। ५५ ।।
सरसा मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ।। ५६ ।।
निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा कांचनसंनिभाः ।
कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च द्विजपुङ्गव ।। ५७ ।।
अरुणाभा महाभागा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः ।
ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिंगाक्ष्यो लंबमेखलाः ।। ५८ ।।
लंबोदर्यो लम्बकर्ण्यस्तथा लम्बपयोधराः ।
ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथापराः ।। ५९ ।।
शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदास्ता भवन्त्यपि ।
कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ।। ६० ।।
शिरांसि रक्षसां गृह्य गंडशैलोपमान्यपि ।
चिक्रीडुः सीतया सार्द्धं तस्मिन्रणधरातले ।। ६१ ।।
मुंडमालाधराश्चैव काश्चिन्मुण्ड विभूषणाः ।
रणांगणे महाघोरे गृध्रकंकशिवान्विते ।। ६२ ।।
मांसासृक्पंकिले घोरे तत्र तत्र पुरोपमे ।
ननर्त जानकी देवी घोरकाली महाबला ।। ६३ ।।
तदा चकंपे पृथिवी नौरिवानिलचालिता ।
चेलुश्च भूधराः सर्वे समुद्राश्च चकंपिरे ।। ६४ ।।
स्वर्गिणां च विमानानि खात्पेतुर्भयतो द्विज ।
सूर्यस्य दुद्रुवुर्भीता वाजिनो मुक्तरश्मयः ।। ६५ ।।
यदा न सेहे जानक्याः भारं सोढुं वसुंधरा ।
गन्तुमैच्छत पातालं सीतापादाग्रपीडिता ।। ६६ ।।
अट्टाहासेन सीताया मातृणां हुंकृतेन च ।
प्रलयं मेनिरे लोकाः किमेतदिति विह्वलाः ।। ६७ ।।
धरापातालगमनं वितर्क्य सुरसत्तमैः ।
संप्रार्थितो महादेवः स्वयमायाद्रणाजिरम् ।। ६८ ।।
जानक्याः पादविन्यासे शवरूपधरो हरः ।
आत्मानं स्तंभयामास धरणीधृतिहेतवे ।। ६९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे असंख्य (माताएँ) श्रीजानकी के साथ क्रीड़ा करने आ गईं। दीर्घ वक्षस्थल वाली, दीर्घदाँत वाली दीर्घनासिका वाली ॥ ५५ ॥

सरस, मधुर, यौवनवती, सुअलंकृता, माहात्म्य वाली तथा कामरूप-धारिणी ॥ ५६ ॥

निर्मांस गात्र वाली, श्वेत तथा सुवर्ण के समान, अन्य कृष्णमेघ के समान तथा दूसरी (कई) धूमवर्ण वाली, हे द्विजश्रेष्ठ ॥ ५७ ॥

अरुण के समान (प्रदीप्त) कांति वाली, महाभागा, लंबे बालों वाली, श्वेतवस्त्रधारी, ऊर्ध्ववेणी धारण करनेवाली, पिंगाक्षी, लंबी मेखला वाली ॥ ५८ ॥

लंबे उदर वाली, लंबे कान वाली तथा लंबे स्तन वाली, ताम्रवर्ण के नेत्र वाली, ताम्र वर्ण वाली, हरित नेत्र वाली ॥ ५९ ॥

शत्रुओं के विग्रह में ये नित्य भय उत्पन्न करनेवाली होती हैं। कामरूप धारण करनेवाली तथा वायु के समान वेग वाली ॥ ६० ॥

राक्षसों के पर्वतशिखर के समान मस्तकों को भी (हाथों में उठा) उठाकर उस रणभूमि में सीताजी के साथ वे खेलने लगीं ॥ ६१ ॥

मुण्डमाला धारण करनेवाली, कई मुण्डों से बने आभूषण पहननेवाली महाघोर तथा गृध्र, कंक और गीदड़ों से युक्त रणांगण में ॥ ६२ ॥

तथा मांस-रुधिर के कीचड़ से लथपथ उस घोर नगर के समान रणस्थल में महाकाली, महाबला जानकीदेवी नृत्य करने लगीं ॥ ६३ ॥

पवन से चालित नौका के समान पृथ्वी उस समय कंपित होने लगी। सारे पर्वत कंपायमान होने लगे। तथा समुद्र (भी) कंपित हो गये ॥ ६४ ॥

हे द्विज ! डर के मारे देवताओं के विमान आकाश से गिरने लगे। सूर्य के घोड़े लगाम से मुक्त होकर, भयभीत होकर दौड़ने लगे ॥ ६५ ॥

जब पृथ्वी से जानकी जी का भार न सहा गया तब (उन) सीताजी के चरणाग्र से पीड़ित होकर वह पाताल में जाने की इच्छा करने लगी ॥ ६६ ॥

सीताजी के अट्टहास से तथा मातृकाओं के हुंकार से 'यह क्या हुआ ?' —इस प्रकार विह्वल होकर प्रलय (हो गया है, ऐसा) मानने लगे ॥ ६७ ॥

धरा को पाताल में जाते देखकर, देवताओं से प्रार्थना करने पर स्वयं महादेवजी रणभूमि में (उतर) आये ॥ ६८ ॥

तब पृथ्वी को स्थिर करने के हेतु से शिव ने शव के समान रूप धारण करके जानकी के पादविन्यास में अपने को स्थिर किया ॥ ६९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वभारसहो देवः सीतापादतले स्थितः ।
शवरूपो विरूपाक्षः सुस्थिताभूद्धरा तदा ।। ७० ।।
तथाप्युपरिगा लोका न स्थातुं सेहिरे क्षणम् ।
सीतायाः पादशब्देन शिरसा हुंकृतेन च ।
निःश्वासवातसंघातैर्दुःस्थिता भूर्भुवादयः ।। ७१ ।।
धरणितनयया यद्भीमनृत्यं धरण्यां कृतमिह
मनसा तच्चिंतयंतो द्विजेन्द्राः ।
जयति जयति सीतेत्याहुरिंद्रादिदेवाः
सपदि भुवनभंगे मन्यमाना विषेदुः ।। ७२ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे सहस्रवदनरावणवधो
नाम त्रयोविंशः सर्गः ।। २३ ।।

चतुर्विंशः सर्गः

संरंभवेगं सीताया वीक्ष्य ब्रह्मपुरोगमाः ।
सलोकपालास्त्रिदशा ऋषिभिः पितृभिः सह ।। १ ।।
प्रसादयितुमुद्युक्ताः सीतां ते तुष्टुवुः सुराः ।
कृताञ्जलिपुटा देवाः प्रणम्य च पुनःपुनः ।। २ ।।
ब्रह्माद्याः स्तोतुमारब्धाः सीतां राक्षसनाशिनीम् ।
या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा ।। ३ ।।
अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता रामवल्लभा ।
स्वाभाविकी च त्वन्मूला प्रभा भानोस्तथामला ।। ४ ।।
एका सा वैष्णवी शक्तिी रणे कोपाधिवेगतः ।
परापरेण रूपेण क्रीडन्ती रामसन्निधौ ।। ५ ।।
सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत् ।
न कार्यं चापि करणमीश्वरस्येति निश्चयः ।। ६ ।।
चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः ।
अधिष्ठानवशादस्या जानक्या रामयोषितः ।। ७ ।।
शांतिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः ।
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः ।। ८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संपूर्ण भार सहन करनेवाले शव-रूप विरूपाक्ष देव सीता के पाद-तल में स्थित हुए। उस समय धरती (भी) स्थिर हो गई ।। ७० ।।

फिर भी ऊपर के लोग एक क्षण के लिए भी स्थिर न रह पाये। सीताजी के चरणों के शब्द से, मुख से निकलनेवाले हुंकार से तथा निःश्वास से उत्पन्न पवन-संघात से भूः, भुवः, स्वः आदि लोक अस्वस्थ हो गये ।।७१।।

धरणीतनया (सीताजी) ने जो भयंकर नृत्य (इस) धरती पर किया, उसका विचार करके द्विजेन्द्र तथा इन्द्रादि देवता 'सीताजी की जय हो, जय हो' —ऐसा कहने लगे। तथा शीघ्र ही संसार का नाश होगा, ऐसा मानकर (तरह-तरह से) विवाद करने लगे ।। ७२ ।।

।। इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में सहस्रवदनरावण-वध नाम
त्रयोविंश सर्ग समाप्त ।। २३ ।।

चतुर्विंश सर्ग

श्रीरामचन्द्र जी को देवताओं द्वारा आश्वासन

सीताजी के उस प्रकार के क्रोध और वेग को देखकर ब्रह्मा आदि देवता, लोकपाल, ऋषि तथा पितरों के साथ ।। १ ।।

(उन) सीताजी को प्रसन्न करने के लिए तत्पर बने हुए वे सीताजी की स्तुति करने लगे। देवता हाथ जोड़-जोड़कर बारंबार प्रणाम करके, राक्षसनाशिनी सीताजी की स्तुति करना ब्रह्मादि देवताओं ने आरम्भ कर दिया कि— वह जो ज्ञानरूपा, अतिलालसायुक्त माहेश्वरी शक्ति है, ।। २-३ ।।

वे अनन्या रामवल्लभा निष्कल तत्त्व में संस्थित हैं। आपसे उत्पन्न होनेवाली शक्ति स्वाभाविकी तथा सूर्य की कान्ति के समान निर्मल है ।। ४ ।।

वह एक ही वैष्णवी शक्ति रण में बड़े वेग से और क्रोध से परात्पर रूप से राम के निकट क्रीड़ा करती है ।। ५ ।।

वही सब कुछ करती है। यह जगत उसका कार्य है। कार्य किंवा करण, ईश्वर का नहीं है, यह निश्चित है ।। ६ ।।

श्रीराम की पत्नी देवी जानकी जी की चार शक्तियां अधिष्ठान के वश से स्वरूप में स्थित हैं ।। ७ ।।

वे हैं शांति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति। अतः देव परमेश्वर चतुर्व्यूहरूप कहे जाते हैं ।। ८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनया परया देवः स्वात्मानंदं समश्नुते ।
यत्त्वस्त्यनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत् ॥ ९ ॥

त्वत्संबंधादवाप्तं तद्रामेण परमात्मना ।
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका ॥ १० ॥

त्वयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ।
सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी ॥ ११ ॥

वैश्वरूपं महेशस्य सर्वदा संप्रकाशयेत् ।
अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्त्वया देवि विनिर्मिताः ॥ १२ ॥

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ।
सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः ॥ १३ ॥

एका शक्तिः शिवोप्येकः शक्तिमानुच्यते शिवः ।
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ १४ ॥

शक्तयो जानकी देवी शक्तिमन्तो हि राघवः ।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे तत्त्ववादिभिः ॥ १५ ॥

भोग्या विश्वेश्वरी देवी रघूत्तमपतिव्रता ।
प्रोच्यते भगवान्भोक्ता रघुवंशविवर्द्धनः ॥ १६ ॥

मन्ता रामो मतिः सीता मन्तव्या च विचारतः ।
एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ १७ ॥

योगिनस्तत्प्रपश्यंति तव देव्याः परं पदम् ।
अनंतमजरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् ॥ १८ ॥

योगिनस्तत्प्रपश्यंति तव देव्याः परं पदम् ।
सा त्वं धात्रीव परमा आनंदनिधिमिच्छताम् ॥ १९ ॥

संसारतापानखिलान्हरसीश्वरसंश्रयात् ।
नेदानीं भूतसंहारस्त्वया कार्यो महेश्वरि ॥ २० ॥

रावणो सगणं हत्वा जगतां सुखमाहितम् ।
किं पुनर्नृत्यकलया जगत्संह्रियते त्वया ॥ २१ ॥

एतच्छ्रुत्वा विशालाक्षी ब्रह्मणोऽभ्यर्थनं वचः ।
प्रीता सीता तदा प्राह ब्रह्माणं सहदैवतम् ॥ २२ ॥

पतिर्मे पुंडरीकाक्षः पुष्पकोपरि राघवः ।
विद्धः क्षुरप्रेण हृदि शेते मृतकवत्प्रभुः ॥ २३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी पराशक्ति से देव स्वात्मानन्द प्राप्त करते हैं। उनका जो अनादि-संसिद्ध महान अतुल ऐश्वर्य है, ।। ९ ।।

वह परमात्मा श्रीराम ने आपके सम्बन्ध से प्राप्त किया है। यह सर्वेश्वरी देवी सब भूतों को प्रवर्तित करनेवाली हैं ।। १० ।।

तुमसे ही मायावी पुरुषोत्तम इस (जगत) को भ्रमण करा सकते हैं। यह मायात्मिका शक्ति सर्वाकारा सनातनी है ।। ११ ।।

यह सदा महेश्वर के विश्वरूप को प्रकाशित करती है। हे देवि ! और भी (अनेक) मुख्य शक्तियों का निर्माण तुम्हीं ने किया है ।। १२ ।।

ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, प्राणशक्ति इन तीनों शक्तियों को तथा उनके शक्तिमानों को (तुमने ही) निर्मित किया है ।। १३ ।।

शक्ति एक ही है तथा शिव भी एक ही है। अतः शिव शक्तिमान कहे जाते हैं। तत्त्वदृष्टा योगी इनमें अभेद देखते हैं ।। १४ ।।

शक्तियाँ जानकीदेवी हैं तथा शक्तिमान श्रीराम हैं। तत्त्ववादियों ने पुराण में यह विशेष बात बताई है ।। १५ ।।

रघुश्रेष्ठ की पतिव्रता पत्नी विश्वेश्वरी देवी (सीता) भोग्या हैं। रघुवंश की वृद्धि करनेवाले भगवान (राम) भोक्ता कहलाते हैं ।। १६ ।।

श्रीराम 'मन्ता' हैं। तथा विचारपूर्वक (निश्चय करके) सीता को 'मति' मानना चाहिए। एक सर्वव्यापी, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल, ध्रुव ।। १७ ।।

ऐसे आपके पद को हे देवि ! योगीजन देखते हैं। वह अनन्त, अचर, ब्रह्म, निष्कल तथा पर है ।। १८ ।।

आपके उस परमपद को योगी देखते हैं। आनन्द-रूप निधि की इच्छा करनेवालों की वह परमधात्री तुम ही हो ।। १९ ।।

ईश्वर के संश्रय से तुम संसार के समग्र तापों को दूर करती हो। हे महेश्वरी ! इस समय तुमको प्राणियों का संहार नहीं करना चाहिए ।।२०।।

(तुमने) रावण को उसके गणों-सहित मारकर जगत को सुखी किया है। फिर अब नृत्य से जगत का संहार क्यों करती हो ? ।। २१ ।।

वह विशाल नेत्रों वाली सीताजी ब्रह्मा के प्रार्थनावचन को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक देवताओं-सहित ब्रह्मा को (इस प्रकार) कहने लगीं— ।।२२।।

"मेरे पति पुण्डरीकाक्ष श्रीराम पुष्पक (विमान) पर तीक्ष्ण बाण से घायलहृदय होकर मृतक के समान सोए (हुए) हैं ।। २३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तस्मिन्नेवं स्थिते देवाः कमिच्छामि जगद्धितम् ।
ग्रासमेकं करिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ।। २४ ।।
श्रुत्वैतद्वचनं देव्याः संरंभसहितं सुराः ।
हाहाकारं प्रचक्रुस्ते संचचाल च मेदिनी ।। २५ ।।
ततो ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं पुष्पकं रथमास्थितम् ।
श्रीरामं ग्राहयामास स्मृतिं स्पृष्ट्वा स्वपाणिना ।। २६ ।।
उत्तस्थौ च महाबाहू रामः कमललोचनः ।
रे रावण सुदुष्टस्त्वमद्य मद्बाणभेदितः ।। २७ ।।
द्रक्ष्यस्याशु यमस्यास्यं भ्रुकुटीभीषणाकृतिः ।
ब्रुवन्नेवं धनुर्गृह्यल्ह्यपश्यत्त्रिदशान्पुरः ।। २८ ।।
नापश्यज्जानकीं तत्र प्राणोभ्योपि गरीयसीम् ।
नृत्यन्तीं चापरां कालीमपश्यच्च रणांगणे ।। २९ ।।
चतुर्भुजां चलज्जिह्वां खड्गखर्परधारिणीम् ।
शवरूपमहादेवहृत्संस्थां च दिगंबराम् ।। ३० ।।
पिबन्तीं रुधिरं भीमां कोटराक्षीं क्षुधातुराम् ।
जगद्ग्रासे कृतोत्साहां मुण्डमालाविभूषणाम् ।। ३१ ।।
भीमाकाराभिरन्याभिः क्रीडंतीं रणमूर्द्धनि ।
मुण्डै राक्षसराजस्य खेलंतीं कंदुकं मुदा ।। ३२ ।।
प्रलयध्वांतधाराभां सदा घर्घरनादिनीम् ।
अन्त्रमुण्डकरोट्यक्षकृतमालां चलत्पदाम् ।। ३३ ।।
कबंधान्राक्षसानां च तया सह विनृत्यतः ।
रथवाजिगजानां च शकलानि व्यलोकयत् ।। ३४ ।।
नैकोपि राक्षसो यत्र करपादशिरोयुतः ।
कबन्धा ये च नृत्यन्ति तेषां पादाः प्रतिष्ठिताः ।। ३५ ।।
कबंधं रावणस्यापि नृत्यन्तं च व्यलोकयत् ।
तद्दृष्ट्वा सुमहाघोरं प्रेतराजपुरोपमम् ।। ३६ ।।
कालीं च वीक्ष्य नृत्यन्तीं मातृभिः सहितां द्विज ।
पपात हस्ताद्रामस्य वेपतः सशरं धनुः ।। ३७ ।।
भयाच्च निमिमीलाशु रामः पद्मविलोचने ।
इत्येवं विस्मितं दृष्ट्वा ब्रह्मोवाच रघूत्तमम् ।। ३८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे देव ! उनकी इस प्रकार की स्थिति हो जाने पर जगत के हित की मैं किस प्रकार कामना कर सकती हूँ" ।। २४ ।।

देवी के इन संरंभयुक्त वचनों को सुनकर देवता लोग हाहाकार करने लगे तथा पृथ्वी चलायमान हो गई ।। २५ ।।

तब ब्रह्मा जी ने देवताओं-सहित पुष्पक रथ में स्थित राम को अपने हाथ से स्पर्श करके स्मृति दिलवाई ।। २६ ।।

तब कमललोचन महाबाहु राम उठे (तथा बोले)— हे रावण ! तुम दुष्ट हो। मेरे बाण से विद्ध होकर शीघ्र ही भृकुटी से भीषण आकृति वाले यम का मुख देखोगे। ऐसा बोलते हुए जब धनुष लिया तब उन्होंने (अपने) सामने देवताओं को देखा ।। २७-२८ ।।

(परंतु) वहाँ उन्होंने (अपने) प्राणों से भी (अधिक) प्यारी जानकी को न देखा। युद्धस्थल में नृत्य करती हुई दूसरी महाकाली को देखा ।। २९ ।।

चार भुजाओं वाली, चंचल जिह्वा वाली, खड्ग और खप्पर को धारण करनेवाली, शवरूप महादेव के हृदय पर संस्थित तथा दिगंबर ।। ३० ।।

रुधिर का पान करती हुई, भयावनी, कोटराक्षी, क्षुधातुर जगत को ग्रस लेने के लिए उत्साहयुक्त, मुण्ड की माला से विभूषित, ।। ३१ ।।

रणभूमि में अन्य भयंकर मूर्ति धारण करनेवालियों से क्रीडा करती हुई, राक्षसराज के मस्तकों से आनन्दपूर्वक कंदुक का खेल खेलती हुई ।। ३२ ।।

प्रलयकाल के अंधकार के समान कान्ति वाली, सदा घर्घर नाद करती हुई, अँतड़ियों, सिर तथा खोपड़ी एवं अक्ष की माला धारण करनेवाली, पैर चलाती हुई, ।। ३३ ।।

(यही नहीं) उसके साथ मृत राक्षसों के कबंधों को (भी) नृत्य करते देखा। रथ, घोड़े तथा हाथियों के टुकड़े (श्रीराम ने) देखे, ।। ३४ ।।

जहाँ एक भी राक्षस हाथ, पैर, सिर से युक्त न था। जो कबन्ध नृत्य करते थे, उनके पैर (धरती पर) स्थित थे।। ३५।।

(उन्होंने) रावण के कबन्ध को भी नृत्य करते देखा। महा भयंकर यमराज के पुर के समान उस (रणभूमि को देखकर) ।। ३६ ।।

तथा हे द्विज ! मातृकाओं के साथ नृत्य करती हुई काली को देख कर काँपते हुए श्रीराम के हाथ से बाण-सहित धनुष गिर पड़ा ।। ३७ ।।

भय से श्रीराम ने शीघ्र ही अपने कमल के समान नेत्रों को बन्द कर दिया। इस प्रकार राम को विस्मित हुए देखकर ब्रह्मा ने कहा—।। ३८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्वां दृष्ट्वा विह्वलं सीता क्रुद्धं चापि च रावणम् ।
रथादवस्कन्द्य सती पपात रणमूर्द्धनि ।। ३९ ।।

भीमां च मूर्तिमालम्ब्य रोमकूपाच्च मातृकाः ।
निर्माय ताभिः सहिता हत्वा रावणमग्रतः ।। ४० ।।

रक्षसां निधनं कृत्वा नृत्यन्तीयं व्यवस्थिता ।
अनया सहितो राम सृजस्यवसि हंसि च ।। ४१ ।।

नानया रहितो राम किंचित्कर्तुमपि क्षमः ।
इति बोधयितुं सीता चकार तदनिंदिता ।। ४२ ।।

पश्यैतां जानकीं राम त्यज भीतिं महाभुज ।
निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ।। ४३ ।।

इत्येतद्द्रुहिणवचो निशम्य रामः
श्रुतिसुखमात्महितं पराभिमर्दि ।
शुचमनुविजहौ विचार्य किंचित्
जनकसुतामनुपश्यति स्म पश्चात् ।। ४४ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे रामाश्वासनं नाम
चतुर्विंशः सर्गः ।। २४ ।।

पंचविंशः सर्गः

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा रामः कमललोचनः ।
प्रोन्मील्य शनकैरक्षि वेपमानो महाभुजः ।। १ ।।

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चापि विह्वलः ।
भीतः कृतांजलिपुटः प्रोवाच परमेश्वरीम् ।। २ ।।

का त्वं देवि विशालाक्षि शशांकावयवांकिते ।
न जाने त्वां महादेवि यथावद् ब्रूहि पृच्छते ।। ३ ।।

रामस्य वचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी ।
व्याजहार रघुव्याघ्रं योगिनामभयप्रदा ।। ४ ।।

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयम् ।
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ।। ५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"आपको विह्वल तथा रावण को क्रुद्ध देखकर सती सीता रथ में से रणभूमि में कूद पड़ीं ।। ३९ ।।

और भयावना रूप लेकर (अपने) रोमकूपों से मातृकाओं का निर्माण करके उनके साथ पहले रावण का वध किया और यह नृत्य करती हुई स्थित हुईं । हे राम ! तुम इसके साथ सर्जन करते हो, रक्षा करते हो तथा नाश करते हो ।। ४०-४१ ।।

हे राम ! इसके बिना आप कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं । इसका बोध कराने के लिए अनिंदिता श्री सीता ने यह (अभूतपूर्व पराक्रम) किया है ।। ४२ ।।

हे राम ! आप इस जानकी को देखिए ! हे महाभुज ! डर छोड़िए ! यह साक्षात् निर्गुण-सगुण तथा सद्-असद् व्यक्ति से रहित है" ।। ४३ ।।

इस प्रकार ब्रह्माजी के कर्णप्रिय तथा आत्महितकारी वचन सुनकर शत्रु का मर्दन करनेवाले श्रीराम ने शोक का त्याग कर दिया तथा कुछ विचार करके बाद में सीताजी को देखा ।। ४४ ।।

।। इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तरकाण्ड में
'देवताओं द्वारा रामचन्द्रजी को आश्वासन' नाम
चतुर्विंश सर्ग समाप्त ।। २४ ।।

पंचविंश सर्ग

श्रीरामचन्द्र द्वारा सहस्रनाम से जानकी जी की स्तुति

ब्रह्मा जी के वचन सुनकर महाबाहु कमललोचन श्रीराम कंपित होते हुए धीरे-धीरे, नेत्र खोलकर, भूमि पर सिर झुकाकर प्रणाम करके, तेज से विह्वल होकर, भयभीत होकर, हाथ जोड़कर परमेश्वरी (सीताजी) से (इस प्रकार) बोले— ।। १-२ ।।

"हे देवि ! विशाल नेत्र वाली ! चन्द्रखण्ड से अंकित हे महादेवि ! मैं तुम्हें नहीं जानता । मुझ पूछनेवाले को (तुम अपना सच) सच (परिचय) बताओ" ।। ३ ।।

श्रीराम का वचन सुनकर वह परमेश्वरी (जो) योगियों को (भी) अभय देनेवाली (हैं) राम से कहने लगीं— ।। ४ ।।

महेश्वर के आश्रित परमशक्ति (के रूप में) मुझे जानो जिस अनन्य तथा अव्यय एक रूप को मुमुक्षु जन देखते हैं ।। ५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहं वै सर्वभावानामात्मा सर्वांतरा शिवा ।
शाश्वती सर्वविज्ञाना सर्वमूर्तिप्रवर्तिका ॥ ६ ॥
अनंतानंतमहिमा संसारार्णवतारिणी ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे पदमैश्वरम् ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वा विररामैषा रामोऽपश्यच्च तत्पदम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विष्वक्तेजोनिराकुलम् ॥ ८ ॥
ज्वालावलीसहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ।
दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमंडितम् ॥ ९ ॥
त्रिशूलवरहस्तं च घोररूपं भयावहम् ।
प्रशाम्यत्सौम्यवदनमनंतैश्वर्यसंयुतम् ॥ १० ॥
चन्द्रावयवलक्ष्म्याढ्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।
किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ।
शंखचक्रकरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ॥ १२ ॥
अन्तःस्थं चांडबाह्यस्थं बाह्यरभ्यंतरतः परम् ।
सर्वशक्तिमयं शांतं सर्वाकारं सनातनम् ॥ १३ ॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगींद्रैरीड्यमानपदांबुजम् ।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ १४ ॥
सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श पदमैश्वरम् ।
दृष्ट्वा च तादृशं रूपं दिव्यं माहेश्वरं पदम् ॥ १५ ॥
तयैव च समाविष्टः स रामो हृतमानसः ।
आत्मन्याधाय चात्मानमोंकारं समनुस्मरन् ॥ १६ ॥
नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् ।
ॐ सीतोमा परमा शक्तिरनंता निष्कलामला ॥ १७ ॥
शांता माहेश्वरी नित्या शाश्वती (१०) [1]परमाक्षरा ।
अचिन्त्या केवलानंता शिवात्मा परमात्मिका ॥ १८ ॥
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा (२०) सर्वगोचरा ।
एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला ॥ १९ ॥
महामाहेश्वरी शक्ता महादेवी निरंजना ।
काष्ठा (३०) सर्वांतरस्था च चिच्छक्तिरति लालसा ॥ २० ॥

[1] सीता जी के १००८ नामों की संख्या १०, २०, ३०, इस प्रकार दी गई है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैं सब भावों की आत्मा, सबके अन्त में स्थित शिवा हूँ। मैं ही निरन्तर रहनेवाली, सब विज्ञान और सब मूर्तिओं को प्रवृत्त करनेवाली हूँ ॥ ६ ॥

मैं अनंत-अनंत महिमा वाली तथा संसार-सागर से तारनेवाली हूँ। मैं तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करती हूँ। मेरा ऐश्वर्ययुक्त पद देखो ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर वह मौन हो गई। राम ने उस पद को देखा— "करोड़ों सूर्यों के समान, चारों ओर से तेज से परिपूर्ण ॥ ८ ॥

हज़ारों ज्वाला-समूहों से युक्त, सैकड़ों कालानल के समान, दंष्ट्रा से घोर, दुर्धर्ष, जटामंडल से मंडित ॥ ९ ॥

हाथ में सुंदर त्रिशूल लिये, घोर रूपधारी, भय उत्पन्न करनेवाला, प्रशांत करता हुआ, सौम्य वदन वाला, अनंत ऐश्वर्य से युक्त ॥ १० ॥

चन्द्र के खण्ड तथा लक्ष्मी से युक्त, करोड़ों चन्द्र के समान तेजस्वी, किरीट धारण करनेवाला, हाथ में गदा लिये नूपुरों से शोभायमान ॥ ११ ॥

दिव्य माला तथा अंबर धारण करनेवाला, दिव्य गंध के अनुलेपन से युक्त, हाथ में शंख तथा चन्द्र धारण करनेवाला, सुन्दर, तीन नेत्रों वाला, हस्तिचर्म का वस्त्र पहने ॥ १२ ॥

अन्तर में स्थित तथा अण्डकोश के बाह्य में स्थित, बाहर-भीतर से परे, सर्वशक्तिमान, शांत, सर्वाकार, सनातन ॥ १३ ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु तथा योगीन्द्रों से प्रार्थित चरण-कमल वाला, चारों ओर हाथ, पैर तथा नेत्र, सिर और मुख वाला ॥ १४ ॥

सबको आवृत करके स्थित उस प्रकार का रूप तथा उस दिव्य माहेश्वर पद को देखकर ॥ १५ ॥

उसी (सीता) से समाविष्ट राम हृतमानस हो गये। आत्मा को आत्मा में स्थिर करके, ओंकार का स्मरण करके ॥ १६ ॥

एक हज़ार आठ नाम से परमेश्वरी की स्तुति करने लगे— "ॐ सीता, उमा, परमा शक्ति, अनंता, निष्कला, अमला, ॥ १७ ॥

शांता, माहेश्वरी, नित्या, शाश्वती, (१०) परमाक्षरा, अचिन्त्या, केवला, अनन्ता, शिवात्मा, परमात्मिका, ॥ १८ ॥

अनादि, अव्यया, शुद्धा, देवात्मा, (२०) सर्वगोचरा, एक होते हुए अनेक विभागों में स्थित, मायातीता, सुनिर्मला, ॥ १९ ॥

महामाहेश्वरी, शक्ता, महादेवी, निरंजना, काष्ठा, (३०) सर्वान्तरस्थ, चित् शक्ति, अतिलालसा, ॥ २० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानकी मिथिलानंदा राक्षसांतविधायिनी ।
रावणांतकरी रम्या रामवक्षःस्थलालया ॥ २१ ॥
उमा सर्वात्मिका (४०) विद्या ज्योतीरूपाऽयुताक्षरी ।
शांतिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा ॥ २२ ॥
व्योममूर्तिर्व्योममयी व्योमाधारा (५०) ऽच्युतालता ।
अनादिनिधना योषा कारणात्मा कलाकुला ॥ २३ ॥
नंदप्रथमजा नाभिरमृतस्यांतसंश्रया ।
प्राणेश्वरप्रिया (६०) मातामही महिषवाहना ॥ २४ ॥
प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ।
सर्वशक्तिः कला काष्ठा
ज्योत्स्नेन्दो (७०) र्महिमास्पदा ॥ २५ ॥
सर्वकार्यनियंत्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी ।
अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी ॥ २६ ॥
आकाशयोनिर्योगस्था सर्वयोगेश्वरेश्वरी (८०) ।
शवासना चितांतःस्था महेशी वृषवाहना ॥ २७ ॥
बालिकातरुणी वृद्धा वृद्धमाता जरातुरा ।
महामाया (९०) सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ २८ ॥
संसारयोनिःसकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ।
संसारसारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्यादुरासदा (१००) ॥ २९ ॥
प्राणशक्तिः प्राणविद्यायोगिनीपरमाकला ।
महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा ॥ ३० ॥
अनाद्यनन्तविभवा परात्मा पुरुषो बली (११०) ।
सर्गस्थित्यंतकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया ॥ ३१ ॥
शब्दयोनिश्शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा ।
प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ॥ ३२ ॥
पुराणी (१२०) चिन्मयी पुंसामादिः पुरुषरूपिणी ।
भूतांतरात्मा कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता ॥ ३३ ॥
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता ।
व्यापिनी चानवच्छिन्ना (१३०) प्रधाना सुप्रवेशिनी ॥ ३४ ॥
क्षेत्रज्ञा शक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता ।
अनादिमायासंभिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुणाः (१४०) ॥ ३५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानकी, मिथिलानन्दा, राक्षसांतविधायिनी, रावणान्तकरी, रम्या, रामवक्षःस्थलालया, ।। २१ ।।

उमा, सर्वात्मिका, (४०) विद्या, ज्योतिरूपा, अयुताक्षरी , शांति, सबकी प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृत देनेवाली, ।। २२ ।।

व्योममूर्ति, व्योममयी, व्योमाधारा, (५०) अच्युता, लता, अनादि, अन्तरहिता, योषा, कारणात्मा, कलाकुला, ।। २३ ।।

नन्द के यहाँ प्रथम उत्पन्न होनेवाली, नाभि, अमृत के अन्दर आश्रय वाली, प्राणेश्वरप्रिया, (६०) मातामही, महिषवाहना, ।। २४ ।।

प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधानपुरुषेश्वरी, सर्वशक्ति, कला, काष्ठा, चन्द्र की ज्योत्स्ना (७०) महिमा का स्थान, ।। २५ ।।

सर्वकार्य की नियंत्री, सर्वभूतेश्वरों की ईश्वरी, अनादि, अव्यक्त-गुणा, महानन्दा, सनातनी, ।। २६ ।।

आकाश से उत्पन्न होनेवाली, सर्वयोगेश्वरों की ईश्वरी, (८०) शवासना, चिता के अन्त में स्थित, महेशी, वृषवाहना, ।। २७ ।।

बालिका, तरुणी, वृद्धा, वृद्धमाता, जरा से आतुर, महामाया, (९०) सुदुष्पुरा, मूल-प्रकृति, ईश्वरी, ।। २८ ।।

संसार की योनि, सकला, सर्वशक्ति से उत्पन्न होनेवाली, संसार का सार, दुर्वारा, दुर्निरीक्ष्या, दुरासदा, (१००) ।। २९ ।।

प्राणशक्ति, प्राणविद्या, योगिनी, परमा, कला, महाविभूति, दुर्धर्षा, मूल प्रकृति से उत्पन्न, ।। ३० ।।

अनादि, अनंत, ऐश्वर्य वाली, परमात्मा, पुरुष, बलवती, (११०) सृष्टि की स्थिति तथा अन्त करनेवाली, अत्यन्त दुर्वाच्या तथा दुरत्यया, ।। ३१ ।।

शब्द से उत्पन्न होनेवाली, शब्दमयी, नाद नाम वाली, नाद शरीर वाली, प्रधान-पुरुष से परे, प्रधान-पुरुषात्मिका, ।। ३२ ।।

पुराणी, (१२०) चिन्मयी, पुरुषों में आदि-पुरुषरूपिणी, भूतांतरात्मा, कूटस्था, 'महापुरुष' संज्ञावाली, ।। ३३ ।।

जन्म, मृत्यु तथा जरा से अतीत, सर्वशक्तिव्यापिनी, अनवच्छिन्ना, (१३०) प्रधाना, सुप्रवेशिनी, ।। ३४ ।।

क्षेत्रज्ञा, शक्ति, अव्यक्त लक्षण वाली, मल से रहित, अनादि माया से संभिन्न, तीन तत्त्वों वाली, प्रकृति, गुणस्वरूपा, (१४०) ।। ३५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषं ध्रुवा ।
व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्तशुक्ला प्रसूतिका ।। ३६ ।।
स्वकार्या (१५०) कार्यजननी ब्रह्मास्या ब्रह्मसंश्रया ।
व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी ।। ३७ ।।
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्ति (१६०) हृदिस्थिता ।
जयदा जित्वरी जैत्री जयश्रीर्जयशालिनी ।। ३८ ।।
सुखदा शुभदा सत्या शुभा (१७०) संक्षोभकारिणी ।
अपां योनिः स्वयंभूतिर्मानसी तत्त्वसंभवा ।। ३९ ।।
ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्द्धशरीरिणी ।
भवानी चैव रुद्राणी (१८०) महालक्ष्मीरथांबिका ।। ४० ।।
माहेश्वरी समुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
सर्वेश्वरी सर्ववर्णा नित्या मुदितमानसा ।। ४१ ।।
ब्रह्मेंद्रोपेंद्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी (१९०) ।
ईश्वरार्द्धासनगता रघूत्तमपतिव्रता ।। ४२ ।।
सकृद्विभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी ।
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी ।। ४३ ।।
गुणाढ्या योगदा (२००) योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकाशिनी ।
सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनंतोरसी स्थिता ।। ४४ ।।
सरोजनिलया शुभ्रा योगनिद्रा (२१०) सुदर्शना ।
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमंगला ।। ४५ ।।
वासवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका (२२०) ।
वागीश्वरी सर्वविद्या महाविद्यासुशोभना ।। ४६ ।।
गुह्यविद्यात्मविद्या च सर्वविद्यात्मभाविता ।
स्वाहा विश्वंभरी (२३०) सिद्धिः
स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ।। ४७ ।।
नाभिः सुनाभिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी (२४०) ।
पूजा विभावरी सौम्या भगिनी भोगदायिनी ।। ४८ ।।
शोभा वंशकरी लीला मानिनी परमेष्ठिनी (२५०) ।
त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी ।। ४९ ।।
महानुभावमध्यस्था महामहिषमर्दिनी ।
पद्ममाला पापहरा विचित्रमुकुटानना ।। ५० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महामाया से उत्पन्न, तामसी, ध्रूवा, व्यक्त-अव्यक्तात्मिका, कृष्णा, शुक्ला, प्रसूतिका, ।। ३६ ।।

स्वकार्या, (१५०) कार्य की जननी, ब्रह्मरूप मुख वाली, ब्रह्म की आश्रय-भूता, व्यक्ता, प्रथम उत्पन्न होनेवाली, ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी, ।।३७।।

वैराग्य, ऐश्वर्य तथा धर्म की आत्मभूता, ब्रह्ममूर्ति, (१६०) हृदय में स्थित, जय देनेवाली, शीघ्र जीतनेवाली, जैत्री, जयश्री, जयशालिनी, ।।३८।।

सुख देनेवाली, शुभदा, सत्या, शुभा, (१७०) संक्षोभ करनेवाली, जलों की योनि, स्वयंभूति, मानसी, तत्त्वसंभवा, ।। ३९ ।।

ईश्वराणी, शर्वाणी, शंकर की अर्धांगिनी, भवानी, रुद्राणी, (१८०) महालक्ष्मी, अम्बिका, ।। ४० ।।

माहेश्वरी, प्रगट होनेवाली, भुक्ति-मुक्ति का फल देनेवाली, सर्वेश्वरी, सर्ववर्णा, नित्या, मुदित मन वाली, ।। ४१ ।।

ब्रह्मा-इन्द्र-उपेन्द्र से नमित, शंकर की इच्छा के अनुसार वर्तनेवाली, (१९०) ईश्वर के अर्धासन में बैठी हुई, रघुश्रेष्ठ की पतिव्रता, ।। ४२ ।।

एक बार सबको विभावित करनेवाली, समुद्र को शोषनेवाली, पार्वती, हिमालय की पुत्री, परमानन्द देनेवाली, ।। ४३ ।।

गुणों से युक्त, योग देनेवाली, (२००) योग्या, ज्ञानमूर्तिका, विकास करनेवाली, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, अनन्त के हृदय में स्थित, ।।४४।।

कमल के आवासवाली, शुभ्रा, योगनिद्रा, (२१०) सुदर्शना, सरस्वती, सर्वविद्या, जगद्श्रेष्ठा, सुमंगला, ।। ४५ ।।

वासवी, वरदा, वाच्या, कीर्ति, सर्व अर्थ सिद्ध करनेवाली, (२२०) वागीश्वरी, सर्वविद्या, महाविद्या, सुशोभना, ।। ४६ ।।

गुह्यविद्या, आत्मविद्या, सर्वविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वंभरी, (२३०) सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति, ।। ४७ ।।

नाभि, सुनाभि, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, (२४०) पूज्या, विभावरी, सौम्या, भगिनी, भोगदायिनी, ।। ४८ ।।

शोभा, वंशकरी, लीला, मानिनी, परमेष्ठिनी, (२५०) त्रैलोक्यसुन्दरी, रम्या, सुन्दरी, कामचारिणी, ।। ४९ ।।

महानुभाव के मध्य में स्थित, महामहिष का मर्दन करनेवाली, पद्ममाला, पाप हरनेवाली, विचित्र मुकुट मुख वाली, ।। ५० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांता (२६०) चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।
हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्द्धिनी ॥ ५१ ॥
निर्यंत्रा मन्त्रवाहस्था नंदिनी भद्रकालिका ।
आदित्यवर्णा (२७०) कौमारी मयूरवरवाहिनी ॥ ५२ ॥
वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता ।
अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा (२८०) विवाहना ॥ ५३ ॥
विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी ।
महाफलानवद्यांगी कामपूरा विभावरी ॥ ५४ ॥
विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतर्द्धिविवर्द्धिनी (२९०) ।
कौशिकी कर्षिणी रात्रिस्त्रिदशार्त्तिविनाशिनी ॥ ५५ ॥
विरूपा च सुरूपा च भीमा मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तार्तिनाशिनी भव्या (३००) भवभावविनाशिनी ॥ ५६ ॥
निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा ।
यशस्विनी सामगीतिर्भवांगनिलयालया ॥ ५७ ॥
दीक्षा (३१०) विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी ।
सर्वातिशायिनी विद्या सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ ५८ ॥
सर्वेश्वरप्रिया तार्क्षी समुद्रान्तरवासिनी ।
अकलंका निराधारा (३२०) नित्यसिद्धा निरामया ॥ ५९ ॥
कामधेनुर्वेदगर्भा धीमती मोहनाशिनी ।
निःसंकल्पा निरातंका विनया विनयप्रदा (३३०) ॥ ६० ॥
ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोन्मनी ।
उर्वी गुर्वी गुरुः श्रेष्ठा सगुणा षड्गुणात्मिका ॥ ६१ ॥
महाभगवती (३४०) भव्या वसुदेवसमुद्भवा ।
महेंद्रोपेंद्रभगिनी भक्तिगम्या परायणा ॥ ६२ ॥
ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदांतविषया गतिः ।
दक्षिणा (३५०) दहना बाह्या सर्वभूतनमस्कृता ॥ ६३ ॥
योगमाया विभावज्ञा महामोहा महीयसी ।
सत्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रया (३६०) मतिः ॥ ६४ ॥
बीजांकुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः ।
ख्यातिः प्रतिज्ञा चित्संविन्महायोगेंद्रशायिनी ॥ ६५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कान्ता, (२६०) चित्राम्बर धारण करनेवाली, दिव्य आभरणों से भूषित, हंस नाम वाली, व्योम में रहनेवाली, जगत की सृष्टि बढ़ानेवाली, ॥ ५१ ॥

निर्यंत्रा, मंत्रवाहस्था, नन्दिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, (२७०) कौमारी, मयूरवाहिनी, ॥ ५२ ॥

वृषासन पर स्थित, गौरी, महाकाली, सुरार्चिता, अदिति, नियता, रौद्री, पद्मगर्भा, (२८०) विवाहना, ॥ ५३ ॥

विरूपाक्षी, चाटनेवाली, महाअसुरों का नाश करनेवाली, महाफला, अनवद्यांगी, कामपूरा, विभावरी, ॥ ५४ ॥

विचित्ररत्नमुकुटा, भक्तों की ऋद्धि बढ़ानेवाली, (२९०) कौशिकी, कर्षिणी, रात्रि, देवताओं के दुःख का नाश करनेवाली, ॥ ५५ ॥

विरूपा, सुरूपा, भीमा, मोक्ष देनेवाली, भक्तों के दुःख नष्ट करनेवाली, भव्या, (३००) भवभावविनाशिनी, ॥ ५६ ॥

निर्गुणा, नित्य विभाव वाली, निःसारा, लज्जारहित, यशस्विनी, सामगीति, भवांगनिलया, लया, ॥ ५७ ॥

दीक्षा, (३१०) विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्र-विनिपातिनी, सर्वातिशायिनी, विद्या, सर्वशक्तिप्रदायिनी, ॥ ५८ ॥

सर्वेश्वरप्रिया, तार्क्षी, समुद्र के अन्तर में निवास करनेवाली, अकलंका, निराधारा, (३२०) नित्यसिद्धा, निरामया, ॥ ५९ ॥

कामधेनु, वेदगर्भा, धीमती, मोहनाशिनी, निःसंकल्पा, निरातंका, विनया, विनयप्रदा, (३३०) ॥ ६० ॥

ज्वाला रूपी सहस्र मालाओं से युक्त, देवदेवी, मनोन्मनी, उर्वी, गुर्वी, गुरु, श्रेष्ठा, सगुणा, षड्गुणात्मिक, ॥ ६१ ॥

महाभगवती, (३४०) भव्या, वसुदेव-समुद्भवा, महेन्द्र-उपेन्द्र-भगिनी, भक्ति-गम्या, परायणा, ॥ ६२ ॥

ज्ञानज्ञेया, जरातीता, वेदांतविषया, गति, दक्षिणा, (३५०) दहना, वाह्या, सर्वभूतनमस्कृता, ॥ ६३ ॥

योगमाया, विभावज्ञा, महामोहा, महीयसी, सत्या, सबको उत्पन्न करनेवाली, ब्रह्म रूपी वृक्ष का आश्रय करनेवाली, (३६०) ॥ ६४ ॥

बीज तथा अंकुर की उत्पत्ति का कारण, महाशक्ति, महामति, ख्याति, प्रतिज्ञा, चित्संवित्, महायोगेन्द्रशायिनी, ॥ ६५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकृतिः (३७०) शांकरी शास्त्री गंधर्वयक्षसेविता ।
वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया ॥ ६६ ॥
महारात्री शिवानन्दा शची (३८०) दुःस्वप्ननाशिनी ।
पूज्याऽपूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेयस्वरूपिणी ॥ ६७ ॥
गुहांबिका गुहोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ।
हव्यवाहांतरा (३९०) गार्गी हव्यवाहसमुद्भवा ॥ ६८ ॥
जगद्योनिर्जगन्माता जगन्मृत्युर्जरातिगा ।
बुद्धिर्माता बुद्धिमती पुरुषांतरवासिनी (४००) ॥ ६९ ॥
तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता ।
सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता ॥ ७० ॥
संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया ।
ब्रह्माणी बृहती (४१०) ब्राह्मी ब्रह्मभूता भयावनिः ॥ ७१ ॥
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका ।
सुमालिनी सुरूपा च तारिणी भाविनी (४२०) प्रभा ॥ ७२ ॥
उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी ।
तपिनी तापिनी विश्वा भोगदा धारिणी धरा (४३०) ॥ ७३ ॥
सुसौम्या चंद्रवदना तांडवासक्तमानसा ।
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी ॥ ७४ ॥
जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया (४४०) ।
निराश्रया निराहारा निरंकुशरणोद्भवा ॥ ७५ ॥
चक्रहस्ता विचित्रांगी स्रग्विणी पद्मधारिणी ।
परापरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा ॥ ७६ ॥
विद्येश्वरप्रिया (४५०) ऽविद्या विद्युज्जिह्वाजितश्रमा ।
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रश्रवणात्मजा ॥ ७७ ॥
सहस्ररश्मिपद्मस्था महेश्वरपदाश्रया ।
ज्वालिनी (४६०) सद्मना व्याप्ता तैजसी पद्मरोधिका ॥ ७८ ॥
महादेवाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ।
व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितान्यमितप्रभा (४७०) ॥ ७९ ॥
विश्वेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ।
अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी ॥ ८० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकृति, (३७०) शांकरी, शासन करनेवाली, गंधर्व तथा यक्ष से सेवित, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया, ।। ६६ ।।

महारात्रि, शिवानन्दा, शची, (३८०) दुःस्वप्ननाशिनी, पूज्या, अपूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेयस्वरूपिणी, ।। ६७ ।।

गुहांबिका, गुहोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहांतरा, (३९०) गार्गी, हव्यवाहसमुद्भवा, ।। ६८ ।।

जगद्योनि, जगन्माता, जगत् की मृत्यु, वृद्धावस्था से परे, बुद्धि, माता, बुद्धिमती, पुरुषांतरवासिनी, (४००) ।। ६९ ।।

तपस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, स्वर्ग में स्थित, सर्व इन्द्रियों तथा मन की माता, प्राणी-मात्र के हृदय में रहनेवाली, ।। ७० ।।

संसार से तारनेवाली, विद्या ब्रह्मवादिनी, मनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, (४१०) ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भयावनी, ।। ७१ ।।

हिरण्मयी, महारात्री, संसार का परिवर्तन करनेवाली, सुमालिनी, सुरूपा, तारिणी, भाविनी, (४२०) प्रभा, ।। ७२ ।।

उन्मीलनी, सर्वसहा, सारे प्रत्ययों की साक्षी, तपिनी, तापिनी, बिश्वा, भोगदा, धारिणी, धरा (४३०), ।। ७३ ।।

सुसौम्या, चन्द्रवदना, तांडव में आसक्त मन वाली, सत्त्वशुद्धि करने वाली, शुद्धि, तीनों मल का नाश करनेवाली, ।। ७४ ।।

जगत्प्रिया, जगन्मूर्ति, अमृत का आश्रय, (४४०) निराश्रया, निराहारा, निरंकुशा, रणोद्वा ।। ७५ ।।

चक्रहस्ता, विचित्रांगी, स्रग्विणी, पद्मधारिणी, परापर विधान को जाननेवाली, महापुरुषों से पूर्व उत्पन्न होनेवाली, ।। ७६ ।।

विद्येश्वरप्रिया, (४५०) अविद्या, विद्युज्जिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी, सहस्राक्षी, सहस्र श्रवण की आत्मजा, ।। ७७ ।।

सहस्ररश्मि, पद्मस्था, महेश्वरपदाश्रया, ज्वालिनी, (४६०) सधना, व्याप्ता, तेजसी, पद्मरोधिका, ।। ७८ ।।

महादेव का आश्रय करनेवाली, मान्या, महादेव के मन को रमाने वाली, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकितानि, अमितप्रभा, (४७०) ।। ७९ ।।

विश्वेश्वरी, विमान में स्थित, शोकरहिता, शोक का नाश करनेवाली, अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मवासिनी, ।। ८० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शतानन्दा सतांकीर्तिः (४८०) सर्वभूताशयस्थिता ।
वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलावती॥ ८१ ॥
ब्रह्मर्षिर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया ।
व्योमशक्तिः क्रियाशक्ति (४९०) र्जनशक्तिः परागतिः॥८२॥
क्षोभिका रौद्रिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ।
अभिन्ना भिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी (५००) ॥ ८३ ॥
गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी ।
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी ॥ ८४ ॥
सर्ववित्सर्वतोभद्रा (५१०) गुह्यातीता गुहावलिः ।
प्रक्रिया योगमाता च गंधा विश्वेश्वरेश्वरी ॥ ८५ ॥
कपिला कपिलाकांता कनकाभा कलांतरा (५२०) ।
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरंदरपुरःसरा ॥ ८६ ॥
पोषणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा ।
पंचब्रह्मसमुत्पत्तिः परमात्मात्मविग्रहा ॥ ८७ ॥
नर्मोदया (५३०) भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा ॥
बीजरूपा रजोरूपा वशिनी योगरूपिणी ॥ ८८ ॥
सुमंत्रा मंत्रिणी पूर्णा (५४०) ह्लादिनी क्लेशनाशिनी।
मनोहरिर्मनोरक्षी तापसी वेदरूपिणी ॥ ८९ ॥
वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्या प्रकाशिनी ।
योगेश्वरेश्वरी (५५०) माला महाशक्तिर्मनोमयी ॥ ९० ॥
विश्वावस्था वीरमुक्तिर्विद्युन्माला विहायसी ।
पीवरी सुरभी बंधा (५६०) नंदिनी नंदवल्लभा ॥ ९१ ॥
भारती परमानन्दा परापरविभेदिका ।
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी ॥ ९२ ॥
अचिंत्याऽचिंत्यमहिमा (५७०) दुर्लेखा कनकप्रभा ।
कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गंधदायिनी ॥ ९३ ॥
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिरोहया ।
सुदुर्लभा (५८०) धनाध्यक्षा धन्या पिंगललोचना ॥ ९४ ॥
भ्रांतिः प्रभावती दीप्तिः पंकजायतलोचना ।
आद्या हृत्कमलोद्भूता परा माता (५९०) रणप्रिया ॥ ९५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शतानन्दा, सत्पुरुषों की कीर्ति, (४८०) सब प्राणियों में रहनेवाली, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलावती, ।। ८१ ।।

ब्रह्मर्षि, ब्रह्महृदया, ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव की प्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, (४९०) जनशक्ति, परागति, ।। ८२ ।।

क्षोभिका, रौद्रिका, भेद्या, भेद-अभेद से वर्जित, अभिन्न, भिन्न संस्थान वाली, वंशिनी, वंशहारिणी, (५००) ।। ८३ ।।

गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वत्र सुख वाली, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालकारिणी, ।। ८४ ।।

सब कुछ जाननेवाली, सर्वतोभद्रा (५१०) गुह्य से अतीत, गुहावलि, प्रक्रिया, योगमाता, गन्धा, विश्वेश्वरेश्वरी, ।। ८५ ।।

कपिला, कपिलाकान्ता, कनकाभा, कलान्तरा, (५२०) पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरंदरपुरःसरा, ।। ८६ ।।

पोषणी, परमैश्वर्य तथा भूति देनेवाली, विभूति से भूषित, पंचब्रह्म से उत्पन्न होनेवाली, परमात्मा, आत्मविग्रहा, ।। ८७ ।।

नर्मोदया, (५३०) भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा, बीजरूपा, रजोरूपा, वशिनी, योगरूपिणी, ।। ८८ ।।

सुमंत्रा, मंत्रिणी, पूर्णा, (५४०) ह्लादिनी, क्लेशनाशिनी, मनोहरी, मनोरक्षी, तापसी, वेदरूपणी, ।। ८९ ।।

वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्या, प्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी, (५५०) माला, महाशक्ति, मनोमयी, ।। ९० ।।

विश्वावस्था, वीरमुक्ति, विद्युन्माला, विहायसी, पीवरी, सुरभी, वन्द्या, (५६०) नन्दिनी, नन्दवल्लभा, ।। ९१ ।।

भारती, परमानन्दा, पर-अपर का भेद करनेवाली, सब प्रहरणों से युक्त, काम्या, कामेश्वरेश्वरी, ।। ९२ ।।

अचिन्त्या, अचिन्त्य-महिमा, (५७०) दुर्लेखा, कनकप्रभा, कूष्माण्डी, धनरत्नों से युक्त, सुगंध, गंधदायिनी, ।। ९३ ।।

त्रिविक्रम के पद से उद्भूत, हाथ में धनुष वाली, शिरोहया, सुदुर्लभा, (५८०) धनाध्यक्षा, धन्या, पिंगल-लोचना, ।। ९४ ।।

भ्रांति, प्रभावती, दीप्ति, पंकजायतलोचना, आद्या, हृदयकमल से उद्भूत, परामाता, (५९०) रणप्रिया, ।। ९५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्क्रिया गिरिजा नित्यशुद्धा पुष्पनिरंतरा ।
दुर्गा कात्यायनी चंडी चर्चिका शांतविग्रहा (६००)॥ ९६ ॥
हिरण्यवर्णा रजनी जगन्मंत्रप्रवर्तिका ।
मंदराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी ॥ ९७ ॥
रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी (६१०) ।
पद्मासना पद्मनिभा नित्यतुष्टाऽमृतोद्भवा ॥ ९८ ॥
धुन्वती दुष्प्रकंपा च सूर्यमाता दृषद्वती ।
महेन्द्रभगिनी माया (६२०) वरेण्या वरदर्पिता ॥ ९९ ॥
कल्याणी कमला रामा पञ्चभूतवरप्रदा ।
वाच्या वरेश्वरी नन्द्या दुर्जया (६३०)दुरतिक्रमा ॥१००॥
कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रहितप्रिया ।
भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी ॥१०१॥
कराला पिंगलाकारा नामवेदा (६४०) महानदा ।
तपस्विनी यशोदा च यथाध्वपरिवर्तिनी ॥१०२॥
शंखिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्तिका ।
चैत्री संवत्सरा (६५०) रुद्रा जगत्संपूरणीन्द्रजा ॥१०३॥
शुंभारिः खेचरी स्वस्था कंबुग्रीवा कलिप्रिया ।
खरध्वजा खरारूढा (६६०) पराध्र्या परमालिनी ॥१०४॥
ऐश्वर्यरत्ननिलया विरक्ता गरुडासना ।
जयंती हृद्गुहा रम्या सत्त्ववेगा गणाग्रणीः ॥१०५॥
संकल्पसिद्धा(६७०) साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ।
कलिकल्मषहंत्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ॥१०६॥
नित्यदृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः(६८०)क्रियावती ।
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता ॥१०७॥
लोहिता सर्वमाता च भीषणा वनमालिनी (६९०) ।
अनन्तशयनाऽनाद्या नरनारायणोद्भवा ॥१०८॥
नृसिंही दैत्यमथिनी शंखचक्रगदाधरा ।
संकर्षणसमुत्पत्तिरंबिकोपांतसंश्रया ॥१०९॥
महाज्वाला महामूर्तिः(७००)सुमूर्तिः सर्वकामधुक् ।
सुप्रभा सुतरां गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ॥११०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्क्रिया, गिरिजा, नित्यशुद्धा, पुष्पनिरंतरा, दुर्गा, कात्यायनी, चंडी, चर्चिका, शांतविग्रहा, (६००) ॥ ९६ ॥

हिरण्यवर्णा, रजनी, जगन्मंत्रप्रवर्तिका, मंदर पर्वत पर निवास करने वाली, शारदा, स्वर्णमालिनी, ॥ ९७ ॥

रत्नमाला, रत्नगर्भा, पृथ्वी, विश्व को नष्ट करनेवाली, (६१०) पद्मासना, पद्मनिभा, नित्यतुष्टा, अमृतोद्भवा, ॥ ९८ ॥

धुन्वती, दुष्प्रकंपा, सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, माया, (६२०) वरेण्या, वरदर्पिता, ॥ ९९ ॥

कल्याणी, कमला, रामा, पञ्चभूतवरप्रदा, वाच्या, वरेश्वरी, नन्द्या, दुर्जया, (६३०) दुरतिक्रमा, ॥ १०० ॥

कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रहितप्रिया, भद्रकाली, जगन्माता, भक्तों को कल्याण प्रदान करनेवाली, ॥ १०१ ॥

कराला, पिंगलाकारा, नामवेदा, (६४०) महानदा, तपस्विनी, यशोदा, यथाध्वपरिवर्तिनी, ॥ १०२ ॥

शंखिनी, पद्मिनी, सांख्या, सांख्ययोगप्रवर्तिका, चैत्री, संवत्सरी, (६५०) रुद्रा, जगत्संपूरणी, इन्द्रजा, ॥ १०३ ॥

शुंभारि, खेचरी, खस्था, कंबुग्रीवा, कलिप्रिया, खरध्वजा, खरारूढा, (६६०) पराध्यर्या, परमालिनी, ॥ १०४ ॥

ऐश्वर्यरत्ननिलया, विरक्ता, गरुडासना, जयंती, हृद्गुहा, रम्या, सत्त्ववेगा, गणाग्रणी, ॥ १०५ ॥

संकल्पसिद्धा, (६७०) साम्यस्था, सर्वविज्ञान को देनेवाली, कलिकलमष का नाश करनेवाली, गुह्य उपनिषद् रूपा तथा उत्तमा, ॥ १०६ ॥

नित्य-दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, (६८०) क्रियावती, सर्व अमरेश्वरों की ईश्वरी, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता, ॥ १०७ ॥

लोहिता, सर्वमाता, भीषणा, वनमालिनी, (६९०) अनन्तशयना, आद्या, नरनारायणोद्भवा, ॥ १०८ ॥

नृसिंही, दैत्यमथनी, शंखचक्रगदाधरा, संकर्षण-समुत्पत्ति, अम्बिका के निकट निवास करनेवाली, ॥ १०९ ॥

महाज्वाला, महामूर्ति, (७००) सुमूर्ति, सर्वकामधुक्, सुप्रभा, अत्यन्त गोरी, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देनेवाली, ॥ ११० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रूमध्यनिलयाऽपूर्वा प्रधानपुरुषा बली ।
महाविभूतिदा (७१०) मध्या सरोजनयनासना ॥१११॥
अष्टादशभुजा नाट्या नीलोत्पलदलप्रभा ।
सर्वशक्त्या समारूढा धर्माधर्मानुवर्जिता ॥११२॥
वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका (७२०) निरिंद्रिया ।
विचित्रगहना धीरा शाश्वतस्थानवासिनी ॥११३॥
स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी ।
अशेषदेवतामूर्तिर्देवतापरदेवता (७३०) ॥११४॥
गणात्मिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी ।
अवर्णा वर्णरहिता निर्वर्णा बीजसम्भवा ॥११५॥
अनन्तवर्णाऽनन्यस्था शंकरी (७४०) शान्तमानसा ।
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणान्तरा ॥११६॥
गोश्रीर्गव्यप्रिया गौरी गणेश्वरनमस्कृता ।
सत्यमात्रा (७५०) सत्यसन्ध्या त्रिसन्ध्या संधिवर्जिता ॥११७॥
सर्ववादाश्रया सांख्या सांख्ययोगसमुद्भवा ।
असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा (७६०) ॥११८॥
बिंदुनादसमुत्पत्तिः शंभुवामा शशिप्रभा ।
विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी ॥११९॥
महाश्रीः श्रीसमुत्पत्ति (७७०) स्तमः पारे प्रतिष्ठिता ।
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया ॥१२०॥
शांत्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया ।
शिवाख्या चित्रनिलया (७८०) शिवज्ञानस्वरूपिणी ॥१२१॥
दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकर्णिका ।
शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका ॥१२२॥
नारायणी नवोद्भूता कौमुदी (७९०) लिंगधारिणी ।
कामुकी ललिता तारा परापरविभूतिदा ॥१२३॥
परान्तजातमहिमा वडवा वामलोचना ।
सुभद्रा देवकी (८००) सीता वेदवेदांगपारगा ॥१२४॥
मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा ।
अमृत्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुप्लुता ॥१२५॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भौंहों के मध्य में रहनेवाली, अपूर्वा, प्रधान-पुरुषा, बली, महाविभूति की देनेवाली, (७१०) मध्या, कमलनेत्रा आसना, ।। १११ ।।

अठारह भुजाओं वाली, नाटया, नीलकमल के समान कांति वाली, सर्व शक्तियों से युक्त, धर्म-अधर्म से वर्जित, ।। ११२ ।।

वैराग्य ज्ञान में निरत, निरालोका, (७२०) निरिंद्रिया, विचित्रगहना, धीरा, शाश्वत स्थान में निवास करनेवाली, ।। ११३ ।।

स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूल-श्रेष्ठ को धारण करनेवाली, समग्र देवताओं की मूर्ति, देवता, परदेवता, (७३०) ।। ११४ ।।

गणात्मिका, पर्वत की पुत्री, निशुम्भ का नाश करनेवाली, अवर्णा, वर्णरहिता, निर्वर्णा, बीजसंभवा, ।। ११५ ।।

अनन्तवर्णा, अन्यस्था, शङ्करी, (७४०) शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, रक्षा करनेवाली, गुह्यरूपवाली, गुणान्तरा, ।। ११६ ।।

गोश्री, गव्यप्रिया, गौरी, गणेश्वर द्वारा नमस्कृता, सत्यमात्रा, (७५०) सत्यसन्धा, त्रिसंध्या, सन्धिवर्जिता, ।। ११७ ।।

सर्ववादों का आश्रय, सांख्या, सांख्य-योग से उत्पन्न, असंख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा, (७६०) ।। ११८ ।।

बिन्दु नाद से प्रगट होनेवाली, शंभुवामा, शशिप्रभा, विसंगा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, ।। ११९ ।।

महाश्री, श्रीसमुत्पत्ति, (७७०) तम के पार स्थित, तीन तत्त्वों की माता, त्रिविधा, सूक्ष्म पद में आश्रय करनेवाली, ।। १२० ।।

शांति से अतीत, मल से परे, निर्विकारा, निराश्रया, शिवाख्या, चित्रनिलया, (७८०) शिवज्ञानस्वरूपिणी, ।। १२१ ।।

दैत्य-दानवों की निर्मात्री, काश्यपी, कालकर्णिका, शास्त्रयोनि, क्रियामूर्ति, चारों वर्गों को दिखानेवाली, ।। १२२ ।।

नारायणी, नवोद्भूता, कौमुदी, (७९०) लिंगधारिणी, कामुकी, ललिता, तारा, परापरविभूति को देनेवाली, ।। १२३ ।।

शत्रु के अन्त से महिमा वाली, वडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी, (८००) सीता, वेदवेदांग-पारगता, ।। १२४ ।।

मनस्विनी, मन्युमाता, महाक्रोध से उत्पन्न, मृत्युरहित, अमृत के आस्वाद वाली, पुरुहूता, पुरुप्लुता, ।। १२५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोच्या (८१०) भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया ।
हिरण्या राजती हैमी हेमाभरण भूषिता ॥१२६॥
विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा ।
महानिद्रा (८२०) समुद्‌भूतिर्बलींद्रा सत्यदेवता ॥१२७॥
दीर्घा ककुद्मिनी विद्या शांतिदा शांतिर्वर्द्धिनी ।
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका ॥१२८॥
त्रिशक्तिजननी (८३०) जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता ।
स्वाहा च कर्मकरणी युगान्तदलनात्मिका ॥१२९॥
संकर्षणा जगद्धात्री कामयोनिः किरीटिनी ।
ऐंद्री (८४०) त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी ॥१३०॥
प्रद्युम्नदयिता दान्ता युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना ।
महोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा (८५०) चण्डविक्रमा ॥१३१॥
वृषावेशा वियन्मात्रा विंध्यपर्वतवासिनी ।
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी ॥१३२॥
चाणूरहन्त्री तनया नीतिज्ञा कामरूपिणी (८६०) ।
वेदविद्या व्रतरता धर्मशीलाऽनिलाशना ॥१३३॥
अयोध्यानिलया वीरा महाकालसमुद्‌भवा ।
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः ॥१३४॥
आप्यायन्ती (८७०) वहंती च पावनी पोषणी खिला ।
मातृका मन्मथोद्‌भूता वारिजा वाहनप्रिया ॥१३५॥
करीषिणी स्वधा वाणी (८८०) वीणावादनतत्परा ।
सेविता सेविका सेवा सिनीवाली गरुत्मती ॥१३६॥
अरुंधती हिरण्याक्षी मणिदा श्रीवसुप्रदा (८९०) ।
वसुमती वसोर्धारा वसुंधरासमुद्‌भवा ॥१३७॥
वरारोहा वराही च वपुः सङ्गसमुद्‌भवा ।
श्रीफली श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा (९००) हरिप्रिया ॥१३८॥
श्रीधरी श्रीकरी कंपा श्रीधरा ईशवीरणी ।
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया (९१०) ॥१३९॥
निहन्त्री दैत्यसिंहानां सिंहिका सिंहवाहिनी ।
सुसेना चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छिन्नसंशया ॥१४०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोच्या, (८१०) भिन्नविषया, सुवर्ण और चाँदी में प्रियता रखने-वाली, हिरण्या, राजती, हैमी, सुवर्ण के आभूषणों से भूषित, ।। १२६ ।।

विशेष रूप से शोभायमान, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोम का फल देनेवाली, महानिद्रा से उत्पन्न, (८२०) बलियों में श्रेष्ठ, सत्यदेवता, ।। १२७ ।।

दीर्घा, ककुद्मिनी, बिद्या, शांतिदा, शांतिवर्धिनी, लक्ष्मी आदि शक्तियों को उत्पन्न करनेवाली, शक्तिचक्र को प्रवृत्त करनेवाली, ।। १२८ ।।

तीनों शक्तियों को उत्पन्न करनेवाली, (८३०) जन्या, छः ऊर्मियों से वर्जित, स्वाहा, कर्म करनेवाली, युगांत-दलन करनेवाली, ।। १२९ ।।

संकर्षणा, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, (८४०) त्रिलोकी द्वारा नमस्कृता, वैष्णवी, परमेश्वरी, ।। १३० ।।

प्रद्युम्नप्रिया, दांता, युग्मदृष्टि, त्रिलोचना, महोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा, (८५०) चण्डविक्रमा, ।। १३१ ।।

वृषावेशा, वियन्माला, विंध्यपर्वतवासिनी, हिमालय तथा मेरु पर निवास करनेवाली, कैलास-पर्वत में रहनेवाली, ।। १३२ ।।

चाणूर को मारनेवाली, तनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी, (८६०) वेदविद्या, व्रतरता, धर्मशीला, अनिल का सेवन करनेवाली, ।। १३३ ।।

अयोध्या में निवास करनेवाली, वीरा, महाकाल से उत्पन्न होनेवाली, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधर को निराकृत करनेवाली, ।। १३४ ।।

तृप्त करनेवाली, (८७०) बहनेवाली, पावन करनेवाली, पोषण करनेवाली, खिला, मातृका, मन्मथ के जल से उत्पन्न होनेवाली, वाहनप्रिया, ।। १३५ ।।

करीषिणी, स्वधा, वाणी, (८८०) वीणा बजाने में तत्पर, सेविता, सेविका, सेवा, सिनी वाली, गरुत्मती, ।। १३६ ।।

अरुंधती, हिरण्याक्षी, मणि देनेवाली, श्री, धन देनेवाली, (८९०) वसुमती, वसुकीधारा, वसुंधरा से उत्पन्न होनेवाली, ।। १३७ ।।

सुंदर नितम्ब वाली, श्रेष्ठ योग्यता से युक्त, शरीर के संग से (उत्पन्न) होनेवाली, श्रीफली, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवास, (९००) हरिप्रिया, ।। १३८ ।।

श्रीधरी, श्रीकरी, कंपा, श्री धारण करनेवाली, ईशवीरणी, अनन्त दृष्टि वाली, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनद की प्रिया, (९१०) ।। १३९ ।।

दैत्य श्रेष्ठों का वध करनेवाली, सिंहिका, सिंह के वाहन वाली, सुन्दर सेना वाली, चन्द्र में निवास करनेवाली, सुन्दर कीर्ति वाली, संदेहरहिता, ।। १४० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलज्ञा बलदा वामा (९२०) लेलिहानाऽमृतास्रवा ।
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुकाऽमृतजीविनी ॥१४१॥
वज्रदंष्ट्रा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा (९३०) ।
मंगल्या मंगला माला मलिना मलहारिणी ॥१४२॥
गन्धर्वी गारुडी चान्द्री कंबलाश्वतरप्रिया ।
सौदामिनी (९४०) जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना ॥१४३॥
कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी ।
युगंधरा युगावर्त्ता त्रिसन्ध्याहर्षवर्धिनी ॥१४४॥
प्रत्यक्षदेवता (९५०) दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा ।
शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना ॥१४५॥
इष्टा विशिष्टा (९६०) शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता ।
शतरूपा शतावर्त्ता विनीता सुरभिः सुरा ॥१४६॥
सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना (९७०) सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता ।
समीक्षा सत्प्रतिष्ठा च निर्वृत्तर्ज्ञानपारगा ॥१४७॥
धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना ।
धर्माधर्मविनिर्मात्री (९८०) धार्मिकाणां शिवप्रदा ॥१४८॥
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ।
धर्मान्तरा धर्ममध्या धर्मपूर्वा धनप्रिया ॥१४९॥
धर्मोपदेशा (९९०) धर्मात्मा धर्मलभ्या धराधरा ।
कपाली शाकलामूर्तिः कलाकलितविग्रहा ॥१५०॥
सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया ।
सर्वा सर्वेश्वरी (१०००) सूक्ष्मा सुसूक्ष्मज्ञानरूपिणी ॥१५१॥
प्रधानपुरुषेशाना महापुरुषसाक्षिणी ।
सदा शिवा वियन्मूर्तिदेवमूर्तिरमूर्तिका (१००८) ॥१५२॥
एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव रघुनंदनः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा सीतां हृष्टतनूरुहाम् ॥१५३॥
भरद्वाज महाभाग यश्चैतस्तोत्रमद्भुतम् ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमं पदम् ॥१५४॥
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिब्रह्म प्राप्तोनि शाश्वतम् ।
शूद्रः सद्गतिमाप्नोति धनधान्यविभूतयः ॥१५५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

बल का ज्ञान रखनेवाली, बल देनेवाली, वामा, (९२०) चाटनेवाली, अमृत का स्रवन करनेवाली, नित्य उदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, अमृतजीविनी, ।। १४१ ।।

वज्र के दाँत वाली, वज्र-सी जिह्वा वाली, वैदेही, वज्रवत् शरीर वाली, (९३०) मंगलरूपा, मंगला, माला, मलिना, मल हरनेवाली, ।।१४२।।

गान्धर्वी, गारुड़ी, चान्द्री, कम्बल अश्वतर की प्रिया, विद्युत्रूपा, (९४०) जनों को आनन्द देनेवाली, भृकुटी से कुटिल मुख वाली, ।।१४३।।

कर्णिकार के समान हाथ वाली, कक्षा, कंस के प्राण हरनेवाली, युग को धारण करनेवाली, युग का आवर्तन करनेवाली, (गायत्री, सावित्री तथा सरस्वती) त्रिसंध्या-रूप और हर्ष को बढ़ानेवाली, ।। १४४ ।।

प्रत्यक्ष देवता, (९५०) दिव्या, दिव्यगंधा, सूर्य के समान तेजस्विनी, इन्द्र के आसन पर बैठी हुई, शक्र की शक्तिरूपा, साध्वी, नारी, शव का आसन वाली, ।। १४५ ।।

इष्टा, विशिष्टा, (९६०) शिष्टों की इष्टरूपा, शिष्ट एवं अशिष्टों से पूजित, शतरूपा, शतावती, विनीता, सुरभि, सुरा, ।। १४६ ।।

सुरेन्द्र की माता, सुद्युम्ना, (९७०) सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्षा, सत् में प्रतिष्ठित, निर्वृतिस्वरूपा, ज्ञान की पारगामिनी, ।। १४७ ।।

धर्मशास्त्र के अर्थ में कुशल, धर्म को जाननेवाली, धर्म का वहन करनेवाली, धर्म तथा अधर्म का निर्माण करनेवाली, (९८०) धार्मिक (लोगों) को कल्याण प्रदान करनेवाली, ।। १४८ ।।

धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी, धर्मान्तरा, धर्ममध्या, धर्मपूर्वा, धनप्रिया, ।। १४९ ।।

धर्मोपदेशा, (९९०) धर्मात्मा, धर्मलक्ष्या, धराधरा, कपाली, शाकलामूर्ति, कला-कलित शरीर वाली, ।। १५० ।।

सर्वशक्तियों से पृथक्, सर्वशक्तियों के आश्रय के भी आश्रयरूपा, सर्वरूप, सर्वेश्वरी, (१०००) सूक्ष्मा, अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञानस्वरूपा, ।। १५१ ।।

प्रधान पुरुषा, ईशाना, महापुरुष की साक्षिणी, सदा कल्याणरूपा, आकाशमूर्ति, रेवमूर्ति, मूर्तिरहित (१००८) (तुम हो) ।। १५२ ।।

इस प्रकार रघुनन्दन ने हाथ जोड़कर सहस्र नामों से आनन्द से पुलकित गात्रों वाली सीता की स्तुति की ।। १५३ ।।

हे भाग्यशाली भरद्वाज ! जो इस अद्भुत स्तोत्र (का पाठ करता है या) इसे पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह परमपद को प्राप्त कर लेता है ।। १५४ ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य योनि (के लोगों) को शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। शूद्र को सद्गति तथा धन-धान्य की विपुलता प्राप्त होती है ।। १५५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भवन्ति स्तोत्रमाहात्म्यादेतत्स्वस्त्ययनं महत् ।
मारीभये राजभये तथा चोराग्निजे भये ॥१५६॥
व्याधीनां प्रभवे घोरे शत्रूत्थाने च संकटे ।
अनावृष्टिभये विप्र सर्वशांतिकरं परम् ॥१५७॥
यद्यदिष्टतमं यस्य तत्सर्वंस्तोत्रतो भवेत् ।
यत्रैतत्पठ्यते सम्यक् सीतानामसहस्रकम् ॥१५८॥
रामेण सहिता देवी तत्र तिष्ठत्यसंशयम् ।
महापापातिपापानि विलयं यान्ति सुव्रत ॥१५९॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तर-
काण्डे सीतासहस्रनामस्तोत्रकथनं नाम
पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः

एवं नामसहस्रेण स्तुत्वाऽसौ रघुनंदनः ।
भूयः प्रणम्य प्रीतात्मा प्रोवाचेदं कृतांजलिः ॥ १ ॥
यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि ।
भीतोऽस्मि सांप्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत्प्रदर्शय ॥ २ ॥
एवमुक्ताथ सा देवी तेन रामेण मैथिली ।
संहृत्य दर्शयामास स्वं रूपं परमं पुनः ॥ ३ ॥
कांचनांबुरुहप्रख्यं पद्मोत्पलसुगंधिकम् ।
सुनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् ॥ ४ ॥
रक्तपादांबुजतलं सुरक्तकरपल्लवम् ।
श्रीमद्विशालसद्वृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम् ॥ ५ ॥
भूषितं चारुसर्वांगं भूषणैरभिशोभितम् ।
दधानं सुरसां मालां विशालां हेमनिर्मिताम् ॥ ६ ॥
ईषत्स्मितं सुबिंबोष्ठं नूपुरांबरसंयुतम् ।
प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस स्तोत्र के माहात्म्य से परम मंगल होता है। महामारी के भय में, राज-भय में तथा चोर और अग्नि से उत्पन्न होनेवाले भय में ॥ १५६ ॥

घोर व्याधियों के उत्पन्न हो जाने पर, शत्रुओं के कारण आ पड़ने वाले संकटों में तथा अनावृष्टि के (प्राकृतिक) भय (की स्थिति) में यह स्तोत्र परम शांतिदायक है ॥ १५७ ॥

उसे जो जो इष्ट है, वह सब स्तोत्र के पाठ से (सिद्ध) हो जाता है। जहाँ (-जहाँ) इस सीता-सहस्रनाम का पाठ सम्यक् रूप से किया जाता है, ॥ १५८ ॥

वहाँ (-वहाँ) राम-सहित सीतादेवी स्थित होती हैं, यह निःसंशय है। (तथा) हे सुव्रत ! महापाप और घोर पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १५९ ॥

॥ इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तरकाण्ड में 'श्रीरामचंद्र द्वारा सहस्रनाम से जानकी जी की स्तुति' नाम पञ्चविंश सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

षड्विंश सर्ग

श्रीराम-विजय-वर्णन

श्री सीताजी की सहस्रनामोच्चारण के रूप में यह स्तुति करके श्रीराम पुनः प्रणामपूर्वक प्रसन्नता के साथ इस प्रकार बोलने लगे—॥१॥

"हे परमेश्वरी ! तुम्हारे इस घोर रूप को देखकर इस समय मैं भयभीत हो रहा हूँ। अब अपने दूसरे (सौम्य और सुन्दर) रूप को प्रगट (करने की कृपा) करो !" ॥ २ ॥

जब श्रीरामचंद्र ने श्री मैथिली से ये वचन कहे, तब देवी ने अपना वह परम (घोर, भयप्रद) रूप समेट लिया और अपना वह सौम्य रूप पुनः प्रगट करके दिखाया, ॥ ३ ॥

जो सुवर्ण के कमल के समान (तेजस्वी), पद्मदल के समान सौरभ वाला, सुन्दर नेत्रों वाला, दो भुजाओं वाला, नीली अलकों से शोभायमान, सौम्य, ॥ ४ ॥

लाल कमल-से पदतल वाला, सुन्दर रक्त कमल के समान हाथ वाला, श्रीयुक्त, विशाल और गोल ललाट पर अंकित तिलक से प्रकाशमान और अलंकृत, और जिसके सब अंग सुन्दर हैं, सर्व प्रकार के आभूषणों से जो विभूषित है, जो सुवर्णनिर्मित विशाल सुरमाला धारण किये हुए हैं, ॥५-६॥

(जो) तनिक (मृदु) हास्य से युक्त, सुन्दर बिंबाफल के समान (लाल-लाल) होंठों वाला (और) प्रसन्नवदन वाला था तथा दिव्य अनन्त महिमा का धाम था ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तदीदृशं समालोक्य रूपं रघुकुलोत्तमः ।
भीतिं संत्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम् ॥ ८ ॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।
यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा ॥ ९ ॥
त्वया सृष्टं जगत्सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ।
त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परागतिः ॥ १० ॥
वदन्ति केचित्त्वामेव प्रकृतिं विकृतेः परम् ।
अपरे परमात्मज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये ॥ ११ ॥
त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वरः ।
अविद्या नियतिर्माया कालाद्याः शतशोऽभवन् ॥ १२ ॥
त्वं हि सा परमा शक्तिरनंता परमेष्ठिनी ।
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा ॥ १३ ॥
त्वामधिष्ठाय योगेशि पुरुषः परमेश्वरीम् ।
प्रधानाद्यं जगत्कृत्स्नं करोति विकरोति च ॥ १४ ॥
त्वयैव संगतो देवः स्वमानन्दं समश्नुते ।
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी ॥ १५ ॥
त्वमेव परमं व्योम महाज्योतिर्निरंजनम् ।
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ १६ ॥
त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामपि ।
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शंकरः ॥ १७ ॥
आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनां चैव पावकः ।
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामपि ॥ १८ ॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः ।
माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामपि ॥ १९ ॥
ॐकार सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः ।
आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः ॥ २० ॥
पुंसां त्वमेव पुरुषः सर्वभूत हृदि स्थितः ।
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे ॥ २१ ॥
ईशनं चासि भूपानां युगानां कृतमेव च ।
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवि सरस्वती ॥ २२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जानकी का ऐसा (दिव्य, सुन्दर) रूप देखकर रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम भयमुक्त हो (गये और) प्रसन्न होकर परमेश्वरी को कहने लगे— ॥ ८ ॥

आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरा तप सफल हो गया, क्योंकि तुम अव्यक्त (होने पर भी) साक्षात् (प्रगट होकर) मेरी दृष्टि को गोचर हुई हो ॥ ९ ॥

तुमने सारे जगत का निर्माण किया है। यह प्रधान आदि तुममें स्थित हैं। हे देवि ! (आखिर में) ये तुममें ही लीन होते हैं। तुम ही (संपूर्ण विश्वसृष्टि की) परागति हो ॥ १० ॥

कई लोग तुम्हीं को विकृति से परे 'प्रकृति' कहते हैं। हे शिवसंश्रये ! परमात्मा को जाननेवाले अन्य जन तुम्हें शिवा कहते हैं ॥ ११ ॥

तुममें प्रधान, पुरुष, महान् ब्रह्मा, ईश्वर, अविद्या, नियति, माया तथा काल आदि सैकड़ों (तत्त्व) होते हैं ॥ १२ ॥

तुम ही वह अनंता परमेष्ठिनी परमशक्ति हो। जो सब भेदों से निर्मुक्त, सर्वभेदों की आश्रयस्वरूपा, निजस्वरूपा हो, हे योगेश्वरी ! तुम परमेश्वरी को अधिष्ठान करके प्रधान आदि (तत्त्व) समग्र जगत का निर्माण (करते हैं) तथा संहार करते हैं ॥ १३-१४ ॥

तुम्हारे संग से ही देव अपने आनंद को प्राप्त करते हैं। तुम ही परमानंद हो, तुम ही आनंद देनेवाली हो, ॥ १५ ॥

तुम ही परमाकाश महाज्योति, निरञ्जन हो, शिव, सर्वव्यापी, सूक्ष्म, परमब्रह्म सनातन हो, ॥ १६ ॥

तुम सब देवताओं के इन्द्र तथा ब्रह्मविदों के ब्रह्म, सांख्यवादियों के कपिलदेव (और) रुद्रों के शंकर (स्वरूप) हो ॥ १७ ॥

आदित्यों में तुम उपेन्द्र हो, वसुओं में पावक हो, वेदों में सामवेद (तुम हो) तथा छन्दों में गायत्री (भी तुम्हीं) हो ॥ १८ ॥

विद्या में अध्यात्मविद्या, गतियों में परमगति, सर्वशक्तियों में माया तथा कलित करनेवालों में काल (भी) तुम्हीं हो ॥ १९ ॥

सब रहस्यों में तुम ॐकार हो, वर्णों में द्विजोत्तम हो, आश्रमों में गृहस्थाश्रम हो तथा ईश्वरों में महेश्वर हो ॥ २० ॥

पुरुषों में तुम ही प्राणीमात्र के हृदय में स्थित पुरुष हो। हे देवि ! सब उपनिषदों में तुम गुह्य उपनिषद् कहलाती हो ॥ २१ ॥

राजाओं में ईशता, युगों में कृतयुग, सब मार्गों में आदित्य, वाणियों में हे देवि ! तुम सरस्वती हो ॥ २२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामपि ।
अरुंधती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि ।। २३ ।।

सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठं साम च सामसु ।
सावित्री ह्यसि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम् ।। २४ ।।

पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामसि ।
सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेवहि ।। २५ ।।

रूपं तवाशेषकलाविहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ।। २६ ।।

यदेवं पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदांतविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।
आनन्दमात्रं परमाभिधानं तदेव रूपं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।। २७ ।।

अशेषसूत्रांतरसन्निविष्टं प्रधानसंयोगवियोगहेतुः ।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ।।२८।।

आद्यंतहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव नमानि रूपं पुरुषाभिधानम् ।। २९ ।।

सर्वाश्रयं सर्वजगन्निधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।
नतोऽस्मि ते रूपमणुप्रभेदमाद्यं महत्त्वे पुरुषानुरूपम् ।। ३० ।।

प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजमैश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः ।
समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपं द्विसप्तलोकात्मकमंबुसंस्थम् ।।३१।।

विचित्रभेदं पुरुषैकनाथमनंतभूतैर्विनिवासितं ते ।
नतोऽस्मि रूपं जगदंडसंज्ञमशेषवेदात्मकमेकमाद्यम् ।। ३२ ।।

स्वतेजसा पूरितलोकभेदं नमामि रूपं रविमंडलस्थम् ।
सहस्रमूर्द्धानमनंतशक्ति सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम् ।
शयानमंतः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ।। ३३ ।।

दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवंद्यं युगान्तकालानलकल्परूपम् ।
अशेषभूतांडविनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसंज्ञम् ।। ३४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुन्दर रूप वालों में तुम लक्ष्मी हो ! मायावियों में तुम विष्णु हो, सतियों में अरुन्धती तथा पक्षियों में गरुड़ हो ॥ २३ ॥

सूक्तों में तुम पुरुष-सूक्त हो । सामों में ज्येष्ठ साम, जप में सावित्री, यजुओं में तुम शतरुद्रिय हो ॥ २४ ॥

तुम पर्वतों में महामेरु, सर्पों में अनन्त, (और) सबकी परब्रह्म हो । यह सारा (जगत्) तुममय है ॥ २५ ॥

तुम्हारा रूप समग्र कलाओं से विहीन, अगोचर, निर्मल, एकरूप है । तुम आदि, मध्य और अन्त (तीनों) से रहित हो; तमस् से परे सत्त्वरूप तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥

वेदान्त के विज्ञान से निश्चित अर्थवाले होकर जो इस जगत् की प्रसूतिरूप तुमको देखते हैं, उसी आनन्दमात्र परमरूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥

समग्र सूत्रांतर में सन्निविष्ट, समग्र प्रकृति से संयोग तथा वियोग के हेतु, तेजोमय, जन्म तथा विनाश से रहित, प्राणरूप तुमको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

आदि तथा अन्त से रहित, जगत् की आत्मारूप, भिन्न-भिन्न संस्थावान्, प्रकृति से परे, तुम्हारा शरीर कूटस्थ, अव्यक्त है । पुरुष नाम वाले ऐसे तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

सबका आश्रय, सारे जगत् का निधान, सर्वत्र जानेवाले, जन्म तथा विनाश से रहित अणु-रूप सूक्ष्म, आद्य, महत्त्व में पुरुष अनुरूप तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥

प्रकृति की अवस्था वाला त्रिगुणात्मक बीज, ऐश्वर्य, विज्ञान, वैराग्य आदि धर्मों से युक्त, चौदह लोकात्मक जल में स्थित आपके रूप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३१ ॥

विचित्र प्रकार के, पुरुष रूपी एक नाथ वाले, अनेक भूतों से निवासित, 'जगदंड' संज्ञा वाले समग्र वेदात्मक एक, आद्य तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥

अपने तेज से लोक को भर देनेवाले, रवि-मंडल में स्थित तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ । सहस्र मस्तक वाले, पुराणपुरुष, जल के भीतर सोनेवाले, 'नारायण' नामधारी तुम्हारे ही रूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥

कराल दंष्ट्रा वाले, देवताओं द्वारा पूजित, प्रलय के कालाग्नि के समान रूप वाले, समग्र प्राणीमात्र के अंड के विनाश के हेतु, 'काल' संज्ञा वाले तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

फणासहस्रेण विराजमानं भुवस्तलेऽधिष्ठितमप्रमेयम् ।
अशेषभारोद्वहने समर्थं नमामि ते रूपमनंतसंज्ञम् ॥ ३५ ॥
अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मात्मतानंदरसज्ञमेकम् ।
युगांतशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम् ॥ ३६ ॥
प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं सुरा सुरैरर्चितपादयुग्मम् ।
सुकोमलं देवि विशालशुभ्रं नमामि ते रूपमिदं नमामि ॥ ३७ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं रघुराजकुलोद्वहः ।
संप्रेक्षमाणो वैदेहीं प्रांजलिः पार्श्वतोऽभवत् ॥ ३८ ॥
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतीपतेः ।
सस्मितं प्राह भर्तारं शृणुष्वैकं वचो मम ॥ ३९ ॥
गृहीतं यन्मया रूपं रावणस्य वधाय हि ।
तेन रूपेण राजेन्द्र वसामि मानसोत्तरे ॥ ४० ॥
प्रकृत्या नीलरूपस्त्वं लोहितो रावणार्दितः ।
नीललोहितरूपेण त्वया सह वसाम्यहम् ॥ ४१ ॥
गृहाण च वरं राम मत्तो यदभिकांक्षितम् ।
तच्छ्रुत्वा राघवो वीरः प्रतिश्रुत्य गिरौ स्थितिम् ॥ ४२ ॥
भरद्वाजांशभागेन ययाचे परमेश्वरीम् ।
देवि सीते महाभागे दर्शितं रूपमैश्वरम् ॥ ४३ ॥
हृदयान्नापगच्छेत्तदिति मे दीयतां वरः ।
भ्रातरो मम कल्याणि वानरोः सविभीषणाः ॥ ४४ ॥
सेनान्यो मम वैदेहि अयोध्यायोधमुख्यकाः ।
पुनस्ते संगताः सन्तु मया रावणतर्जिताः ॥ ४५ ॥
एतस्मिन्नंतरे चाभूदाकाशे दुंदुभिस्वनः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च रामसीतोपरि द्विज ॥ ४६ ॥
प्रहस्य सीता पुनराह रामं
तथेति रामोऽपि विरिंचिमुख्यान् ।
स तान्विसृज्य प्रतिगृह्य सीतां
गन्तुं स्वकं देशमसावियेष ॥ ४७ ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामविजयो नाम
षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहस्र फणों से शोभायमान, अंतरिक्ष-लोक में स्थित, अप्रमेय, समग्र भार का उद्वहन करने में समर्थ, अनंत संज्ञा वाले तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ३५ ।।

अव्याहत ऐश्वर्य वाले, अयुग्म नेत्रों वाले, ब्रह्मात्मैक्यता के आनंद का रस जाननेवाले एक, युगांत में शेष रहनेवाले, स्वर्ग में नृत्य करनेवाले तुम्हारे रुद्र नामधारी रूप को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ३६ ।।

शोकरहित, विमल, पवित्र, सुर-असुरों से अर्चित चरणकमल वाले, अत्यन्त कोमल, विशाल, शुभ्र ऐसे तुम्हारे इस रूप को मैं प्रणाम करता हूं ।। ३७ ।।

इस प्रकार के वचन बोलकर वैदेही को देखते हुए, रघुनंदन राम (सीता के) पार्श्वभाग में स्थित हुए ।। ३८ ।।

तब उस जगत-पति के वचन सुनकर वह (सीता) हँसकर पति से कहने लगीं— "मेरी एक बात सुनिए ।। ३९ ।।

रावण के वध के लिए मैंने जो रूप धारण किया उसी रूप से हे राजेन्द्र ! मैं मानसोत्तर में निवास करती हूँ ।। ४० ।।

प्रकृति से तुम नीले रूप वाले (वर्ण वाले) हो । रावण से पीड़ित होने के कारण लोहितवर्ण हो गये हो ! नील-लोहित (वर्ण के) रूप में मैं तुम्हारे साथ निवास करती हूँ ।। ४१ ।।

हे राम ! (तुम्हें) जिस वरदान की इच्छा हो वह (मुझसे) माँगो।" यह सुनकर वीर राम ने पर्वत पर की स्थिति का स्वीकार करके ।। ४२ ।।

हे भरद्वाज ! अंशभाग से वे परमेश्वरी से याचना करने लगे— "हे देवि सीते ! महाभागे ! तुमने अपना ईश्वरीय रूप दिखाया है ।। ४३ ।।

मेरे हृदय से (आपका) यह (रूप कभी) न जाय, ऐसा वरदान मुझे दीजिए । हे कल्याणि ! मेरे भाई, सारे वानर, विभीषण-सहित मेरे सेनापति तथा अयोध्या के मुख्य योद्धा जो रावण से तर्जित हुए हैं, वे सब हे कल्याणि ! पुनः मेरा संग प्राप्त करें ।। ४४-४५ ।।

उस समय आकाश में दुन्दुभि की ध्वनि हुई तथा हे द्विज ! राम और सीता के ऊपर पुष्पवृष्टि हुई ।। ४६ ।।

सीता ने पुनः राम से हँसते हुए कहा—'तथास्तु' । राम ने भी ब्रह्मा आदि सबको विसर्जित किया और सीता को साथ ले के अपने देश जाने की इच्छा की ।। ४७ ।।

।। इति श्रीवाल्मीकिविरचित आदिकाव्य रामायण के
अद्भुतोत्तरकाण्ड में 'श्रीरामविजय' नाम
षड्विंश सर्ग समाप्त ।। २६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सप्तविंशः सर्गः

रामस्तु पुष्पकारूढः सीतामालिंग्य बाहुना ।
अयोध्यामगमद्वीरः काकुत्स्थकुलनन्दनः ॥ १ ॥
रथनेमिस्वनं श्रुत्वा रामदर्शनलालसाः ।
भ्रातरो भरताद्यास्ते योधमुख्याश्च ते तथा ॥ २ ॥
राममागतमाज्ञाय ससीतं सऋषिव्रजम् ।
प्रणेमुः सहसागत्य आनन्दाश्रुकणाकुलाः ॥ ३ ॥
वानरान्राक्षसान्सर्वानानाय्य स्वपुरं हि सः ।
सर्वं तत्कथयामास रामः कमललोचनः ॥ ४ ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मिताः सर्वे साधुसाध्विवति वादिनः ।
सीतां तत्त्वेन विज्ञाय रामं च मधुसूदनम् ॥ ५ ॥
तदेव चिंतयन्तस्ते स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा ।
विसृष्टा रामभद्रेण सान्त्वपूर्वं महात्मना ॥ ६ ॥
ऋषयश्चाभिनंद्यैनं ससीतं रघुनंदनम् ।
आशीर्भिर्वर्धयामासुर्ययुश्चापि यथागतम् ॥ ७ ॥
रामोऽपि सीतया सार्द्धं भ्रातृभिश्च महात्मभिः ।
चक्रे निष्कंटकां पृथ्वीं देवानां च महद्धितम् ॥ ८ ॥
यज्ञान् बहुविधांश्चक्रे सरयूतीर उत्तमे ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
किंचिदभ्यधिकं चैव रामो राज्यमकारयत् ॥ ९ ॥
देवकिन्नरगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
रामं नमन्ति सततं गुणारामं रमापतिम् ॥ १० ॥
एतत्ते कथितं भद्र भरद्वाज महामते ।
तेषु किंचिदिहाश्चर्यमुक्तं रामकथाश्रयम् ॥ ११ ॥
सर्वं न वक्तुमिच्छामि पुनरुक्तिभयाद्द्विज ।
ब्रह्मणा गोपितं तच्च अतोपि न तदुक्तवान् ॥ १२ ॥
अद्भुतोत्तरकाण्डे तत्कथितं वेदसंमितम् ।
श्रृणोत्यधीते यश्चैतत्स ब्रह्म परमाप्नुयात् ॥ १३ ॥
श्लोकमेकं तदर्धं वा श्रृणुयाद्यश्च मानवः ।
प्रातर्मध्याह्नयोगे वा स याति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सप्तविंश सर्ग

श्रीराम का अयोध्या में आगमन

काकुत्स्थकुलनंदन राम पुष्पक में आरूढ़ होकर बाहु से सीता का आलिंगन करते हुए अयोध्या गये ॥ १ ॥

पुष्पक की आवाज़ सुनकर राम के दर्शन की लालसा से प्रेरित और आनंदाश्रुभरे (नेत्रों वाले) भरत आदि भाई तथा वे मुख्य योद्धागण सीता तथा ऋषिगणों-सहित श्रीराम के आगमन की सूचना पाकर प्रणाम करने लगे ॥ २-३ ॥

अपने नगर में सब वानरों को तथा राक्षसों को लाकर कमललोचन श्रीराम ने वह सारा वृत्तान्त सुनाया ॥ ४ ॥

यह सुनकर सब विस्मयपूर्वक बोल उठे— साधु-साधु। सीता तथा श्रीरामचंद्र को तात्त्विकरूप से (उन्होंने) जाना, तब उसी का विचार करते हुए (वे सब) अपने-अपने स्थान में गये। महात्मा श्रीराम ने सबको आश्वस्त करके बिदा दी ॥ ५-६ ॥

ऋषिजनों ने भी सीता-सहित राम का अभिनंदन करके आशीर्वचनों से (उनको) बधाई दी तथा अपने-अपने स्थान में गये ॥ ७ ॥

श्रीराम ने भी सीता तथा (अपने) महात्मा भाइयों की सहायता से पृथ्वी को निष्कंटक किया एवम् देवों का परम हित साधा ॥ ८ ॥

उत्तम सरयू के तीर पर (श्रीराम ने) अनेक प्रकार के यज्ञ किये। इस प्रकार ग्यारह सहस्र वर्षों से भी अधिक समय राम ने राज्य किया ॥९॥

देव, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, सर्प सदैव गुणों के भंडार ऐसे श्रीराम को नमन करते हैं ॥ १० ॥

हे महामते भरद्वाज ! मैंने रामकथा के आधार पर कुछ आश्चर्यजनक बातें बतायीं ॥ ११ ॥

पुनरुक्ति-दोष से बचने की भावना से मैं सब कुछ विस्तारपूर्वक कहना नहीं चाहता। ये सब बातें ब्रह्माजी ने गुप्त रखी थीं। इसी कारण मैंने भी (पहले यह प्रसंग नहीं सुनाया था) ॥ १२ ॥

यह वेद-सम्मत चरित्र अद्भुतोत्तरकाण्ड में वर्णित है। जो इसे पढ़ता है या सुनता है, वह परम ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

जो मनुष्य इसका एक या आधा श्लोक भी प्रातःकाल में या मध्याह्न में सुनता है, उसे परम गति की प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पञ्चविंशतिसाहस्त्रं रामायणमधीत्य यत् ।
फलमाप्नोति पुरुषस्तदस्य श्लोकमात्रतः ॥ १५ ॥

न श्रुतं नाप्यधीतं वा येनाश्रुतमिदं द्विज ।
स गर्भान्निःसृतो नैव यथा भ्रूणस्तथैव सः ॥ १६ ॥

रामायणमिदं श्रुत्वा न मातुर्जठरे विशेत् ।
वेदाश्चत्वार एकत्र तुलया चेदमेकतः ॥ १७ ॥

विधात्रा तुलितं शास्त्रं सर्वदेवाग्रतो द्विज ।
इदं तु सर्ववेदेभ्यो गौरवादतिरिच्यते ॥ १८ ॥

शक्राय स्वर्नदीतीरे पुरा पृष्टोऽहमब्रुवम् ।
तदेव तव चाख्यातमद्भुतोत्तरकाण्डकम् ॥ १९ ॥

रामायणं महारत्नं ब्राह्महृत्क्षीरधावभूत् ।
नारदान्तः समासाद्य क्रमान्मम हृदि स्थितम् ॥ २० ॥

तत्सर्वं ब्रह्मणो लोके निःशेषमवतिष्ठते ।
किंचिदुर्व्यां च पाताले त्रिदिवे शक्रसन्निधौ ॥ २१ ॥

विरिंचिर्नारदोऽहं च त्रय एवास्य पारगाः ।
चतुर्थो नोपपद्येत बुद्ध्वेदं सुस्थिरो भव ॥ २२ ॥

यदुक्तमद्भुते काण्डे पुनस्ते कथयाम्यहम् ।
श्रीरामजन्मवृत्तान्तः श्रीमतीचरितं महत् ॥ २३ ॥

दण्डकारण्यकस्थानां शोणितेन महात्मनाम् ।
नारदस्य च शापेन लक्ष्म्याश्चैवापराधतः ॥ २४ ॥

मंदोदरीगर्भनिष्ठा वैदेहीजन्म चोक्तवान् ।
रामस्य विश्वरूपं च भार्गवेण च वीक्षितम् ॥ २५ ॥

ऋष्यमूके हनुमता चतुर्बाहू रघूत्तमः ।
दृष्टो भिक्षुस्वरूपेण सुग्रीवसख्यमुक्तवान् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणांगजतापेन शोषणं वारिधेः पुनः ।
प्राप्तराज्यस्य रामस्य मुनीनां सन्निधौ तथा ॥ २७ ॥

सीतायाः कथनं श्रुत्वा सहस्रास्यस्य रक्षसः ।
मानसोत्तरशैलेन्द्रे स्थितिं ज्ञात्वा रघूद्वहः ॥ २८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य को पचीस सहस्र (श्लोकों वाली इस) रामायण के पढ़ने पर जो फल मिलता है, वही फल इसके केवल एक श्लोक से प्राप्त हो जाता है ।। १५ ।।

जिस (मनुष्य) ने (अपने जीवन में कभी भी) इसको पढ़ा या सुना नहीं, वह (माँ के) गर्भ से जन्म लेकर (इस संसार में) नहीं आया, वह तो मात्र भ्रूण के समान (मिथ्या) ही है ।। १६ ।।

जो व्यक्ति इस रामायण को (एक बार) सुन लेता है, उसे पुनः माता के गर्भ में प्रवेश नहीं करना पड़ता । हे द्विज ! विधाता ने सब देवताओं के सामने तुला के एक पलड़े में चार वेदों को और दूसरे पलड़े में इस रामायण को तौल के यह प्रमाणित किया है कि रामायण सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । यही नहीं, सभी देवताओं से अधिक गौरवशाली यह रामायण है (यह निर्विवाद सिद्ध हो गया) ।। १७-१८ ।।

स्वर्ग की नदी के किनारे पर इन्द्र के प्रश्न करने पर इसके पहले भी मैंने यह कथा सुनाई थी । उसी अद्भुतोत्तरकाण्ड की कथा आज मैंने तुम्हें बताई ।। १९ ।।

ब्रह्मा के हृदय रूपी क्षीरसागर में रामायण रूपी यह महारत्न सुरक्षित था । वही नारद के अन्तर में प्राप्त होकर क्रम से मेरे हृदय में स्थित हुआ ।। २० ।।

यह संपूर्ण (चरित्र) ब्रह्मलोक में स्थित है, (इसका) कुछ (अंश) पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्ग में इन्द्र के पास स्थित है ।। २१ ।।

ब्रह्मा, नारद तथा मैं —हम तीन ही इसके पारंगत हैं, चौथा कोई नहीं है, यह जानकर तुम स्थिर हो जाओ ।। २२ ।।

रामजन्म का वृत्तान्त तथा श्रीमती का महान चरित्र, जो अद्भुत-काण्ड में कहा गया है, वह मैं पुनः तुमको सुनाता हूँ ।। २३ ।।

दण्डकारण्य में निवास करनेवाले महात्माओं के रुधिर से, नारद के शाप से तथा लक्ष्मी के अपराध से मंदोदरी के गर्भ से जानकी के जन्म की कथा मैंने तुम्हें कही, भार्गव द्वारा राम के विश्वरूप का दर्शन ।। २४-२५ ।।

ऋष्यमूक पर्वत पर चार बाहु वाले रघुश्रेष्ठ का हनुमान द्वारा दर्शन करते हुए उन्हें भिक्षु-रूप में देखना और सुग्रीव के साथ उनकी मैत्री का मैंने वर्णन किया है ।। २६ ।।

और भी— लक्ष्मण के शरीर से उत्पन्न अग्नि से समुद्र का शोषण तथा राज्य प्राप्त किये हुए राम के पास मुनियों का (जाना) ।। २७ ।।

सहस्रमुख, रावण के बारे में सीता का कथन सुनकर तथा मानसोत्तर पर्वत पर उस (रावण) की स्थिति जानकर राम ।। २८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जगाम पुष्करद्वीपं भ्रातृभिः सहवानरैः ।
सीताया ऐश्वरं रूपं रावणस्य वधस्तथा ।। २९ ।।
अयोध्यागमनं रामस्यैष वृत्तान्त संग्रहः ।
वृत्तान्तसंग्रहं चापि पठित्वा रामभक्तिमान् ।
जायते मुनिशार्दूल नात्र कार्या विचारणा ।। ३० ।।
पठेच्च यो रामचरित्रमेतत्पुनाति पापात्सुकृतं लभेत ।
तीर्थाभिषेकं समरे जयं च स सर्वयज्ञस्य महत्फलं च ।। ३१ ।।
भजेत यो राममचिंत्यरूपमेकेन भावेन च भूमिपुत्रीम् ।
एतत्सुपुण्यं शृणुयात्पठेद्वा भूयो भवेन्नो जठरे जनन्याः ।। ३२ ।।

।। इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीसीतारामयोरयोध्यागमनं नाम सप्तविंशः सर्गः ।। २७ ।।

भाइयों तथा वानरों के साथ पुष्कर-द्वीप गये । सीता का ईश्वरीय रूप तथा रावण का वध(करके) ।। २९ ।।

(श्रीराम तथा सीता आदि का) अयोध्यागमन —यह (सब) राम के वृत्तान्त का संग्रह है । (इस) वृत्तान्त-संग्रह का पाठ करके (मनुष्य) राम के प्रति भक्तिपरायण हो जाता है । हे मुनिशार्दूल ! इस (विषय) में किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए ।। ३० ।।

जो इस रामचरित्र को पढ़ेगा वह पाप से (मुक्त होकर) पवित्र हो जाता है और पुण्य प्राप्त करता है । (वह) तीर्थ का अभिषेक, युद्ध में जय तथा सर्वयज्ञ का महाफल (भी) प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है ।। ३१ ।।

जो अचिन्त्यरूप राम तथा भूमिपुत्री (सीता) का अनन्य भाव से भजन करता है, इस पवित्र (ग्रन्थ) को सुनता या पढ़ता है, वह फिर से माता के गर्भ में स्थित नहीं होता ।। ३२ ।।

।। इति श्री वाल्मीकिविरचित आर्ष आदिकाव्य रामायण के अद्भुतोत्तरकाण्ड में श्रीसीताराम का अयोध्या में आगमन नाम सप्तविंश सर्ग समाप्त ।। २७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री जानकी जी की स्तुति

जय जनकनन्दिनी जगतवन्दिनी जन-अनन्दिनी जानकी ।
रघुवीर-नयन-चकोर-चन्दिनी वल्लभा प्रिय-प्रान की ।।
तव कंज पद मकरन्द स्वादित योगिजन-मन अलि किये ।
करि पान गिनत न आन हिय निर्वाण सुख आनँद हिये ।।
सुखखानि मंगल जानि जन जिय जानि शरण जो जातु हैं ।
तव नाथ सब सुख साथ करि तेहि रीझि हाथ बिकातु हैं ।।
ब्रह्मादि शिव सनकादि सुरपति आदि निज मुख भाषहीं ।
तव कृपा-नयन-कटाक्ष-चितवनि दिवस निशि अभिलाषहीं ।।
तनु पाइ तुमहिं विहाइ जड़मति आन देव जो सेवहीं ।
हतभाग सुरतरु त्यागि करि अनुराग रेड़हिं सेवहीं ।।
यह आस 'रघुवरदास' के सुखराशि पूरण कीजिए ।
निज चरण कमल सनेह जनक विदेहजा वर दीजिए ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।।'

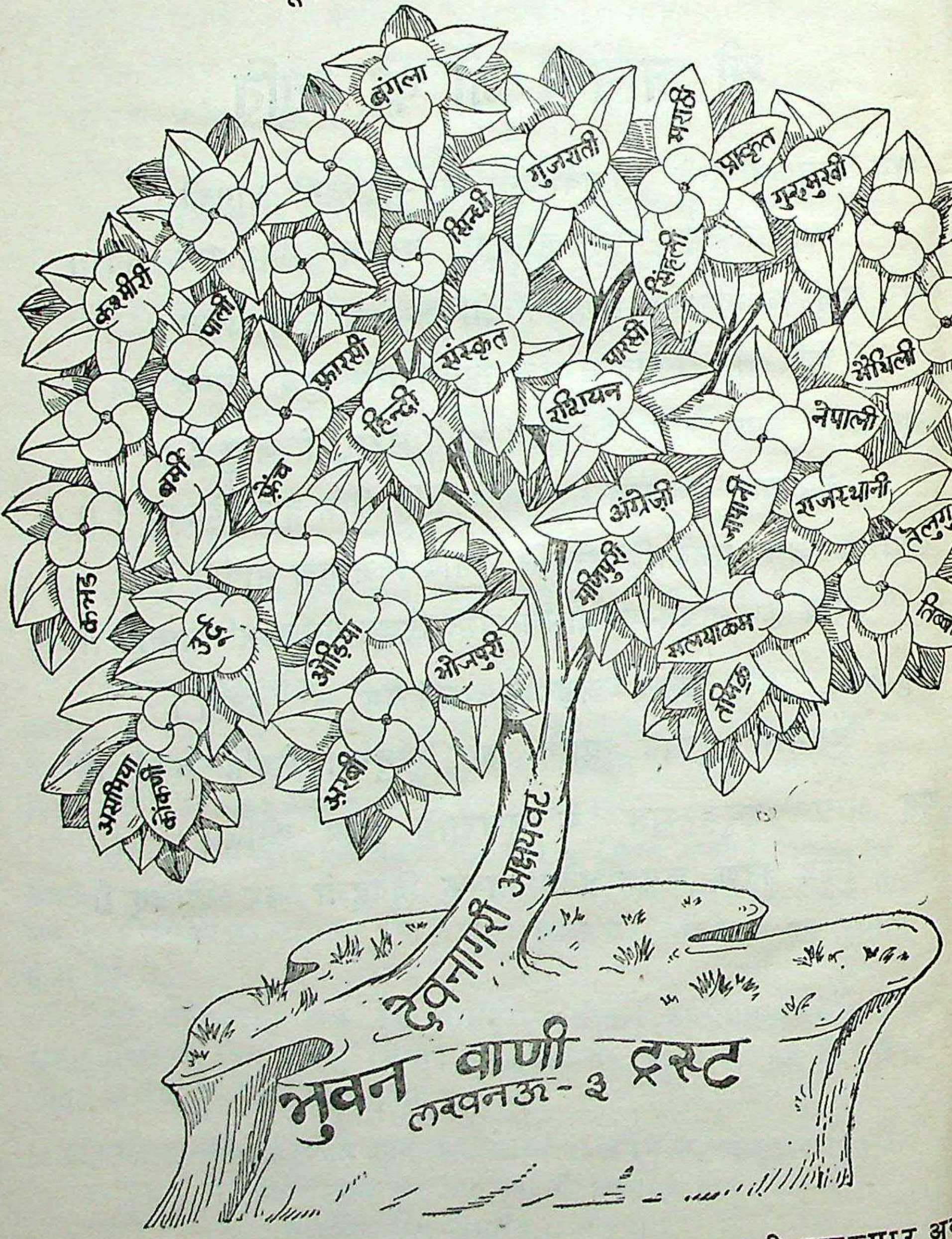

प्रतिष्ठाता— पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत जगत् में

मानस भारती का अवतरण

शासन एवं संस्थाओं से पुरस्कृत !

गोस्वामी तुलसीदास जी
के लोकप्रख्यात "रामचरित मानस" का
मूल पाठ बायीं ओर देते हुए, सामने दाहिने पृष्ठ पर
अत्यन्त ललित और सरल संस्कृत-पद्यानुवाद
पंक्ति अनुपंक्ति (जवाबी लाइनों में)
दिया गया है। ७४० पृष्ठों के
इस अनमोल ग्रन्थ का
मूल्य ५०·०० मात्र
है।

भुवन वाणी ट्रस्ट
'प्रभाकर निलयम्', ४०५।१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

१—(बँगला) कृत्तिवासरामायण-पाँचकांड नागरी लिप्य०, अवधी पद्यानुवाद मूल्य २५.००
२—(बँगला) कृत्तिबास रामायण लंकाकाण्ड ,, गद्यानुवाद ,, २०·००
३—(मलयाळम) एळुत्तच्छन्कृत महाभारत हिन्दी अनु० नागरी लिप्य० ,, ६०·००
४—(,,) ,, अध्यात्मरामायण, उत्तररामायण ,, ,, ४०.००
५—(कश्मीरी) रामावतारचरित—प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत ,, ,, ३०·००
६—(,,) ललद्यद—हिन्दी, संस्कृत अनुवाद सहित ,, १०·००
७—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र) नागरी लिपि में ,, ८·००
८—(,,) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर ,, २०·००
९—(गुरमुखी) श्रीगुरूग्रन्थ साहिब चार खण्ड (सम्पूर्ण) ,, १६०·००
१०—(,,) श्री दशम गुरूग्रंथ साहिब—गुरु गोविंदसिंह-कृत प्रथम खंड ,, ५०·००
११—(,,) जपुजी तथा सुखमनी साहिब—ख्वाज: दिलमुहम्मद पद्यानु० ,, १०·००
१२—(,,) सुखमनी साहिब मूल गुटका ,, ४·००
१३—(फ़ारसी) सिर्र अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य,ऐतरेय,तत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसी व्याख्या हिन्दी में ,, २०·००
१४—(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन ज़ाद सफ़र (इस्लामी हदीस) प्र० खण्ड ,, १५·००
१५—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् नागरी में मूल, हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद ,, २०·००
१६— ,, कम्ब रामा० बालकां० ४०·०० अयो० अरण्य ७०·०० किष्कि० सुंदर ,, ७०·०० युद्धकाण्ड (पूर्वार्ध) ७०·०० (उत्तरार्ध) ७०·०० (सम्पूर्ण) ३२०·००
१७—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर कृत, हिन्दी अनुवाद सहित ,, ३०·००
१८—(,,) श्रीहरि-विजय—श्रीधर कृत ,, ७०·००
१९—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत सानुवाद ,, २०·००
२०—(तलुगु) मोल्ल रामायण सानुवाद लिप्यन्तरण ,, २०·००
२१—(,,) रंगनाथ रामायण ,, ,, ,, ६०·००
२२—(,,) पोतन भागवतमु १-४ स्कन्ध ,, ७०·००
२३—(कन्नड) रामचन्द्र चरित पुराणं—जैनसाहित्य (अभिनव पम्प नागचन्द्र कृत) ,, ४०·००
२४—(राजस्थानी) रुक्मिणी मंगल—पदम भगत कृत ,, १५·००
२५—(गुजराती) गिरधर रामायण हिन्दी अनुवाद सहित (नागरी लिप्य०) ,, ६०·००
२६—(रामचरितमानस) ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िआ गद्य-पद्या० ,, ६०·००
२७—(संस्कृत) मानस-भारती—संस्कृत पद्या० सहित रामचरितमानस ,, ५०·००
२८—(,,) अद्भुतरामायण सटीक २०·००
२९—(सिंधी) स्वामी, शाह, सचल की त्रिवेणी ,, २०·००
३०—(असमिया) माधवकंदली रामायण ,, ६०·००
३१—(ओड़िआ) वैदेहीशविळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत ,, ३०·००
३२—(वाणी सरोवर)—बहुभाषाई-त्रैमासिक पत्र—वार्षिक ,, १०·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

३३—(अरबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित मूल्य ४६·००
३४—(,,) केवल मूलपाठ मूल्य २३·०० केवल अनुवाद ,, २३·००
३५—(,,) क़ौरानिक कोश क़ुर्आन के पठनक्रम से शब्दार्थ ,, १०·००
३६—(,,) क़ुर्आन शरीफ़ तफ़्सीर माजिदी पार: १ से ५ ,, ४०·००